

महाभारत



गाम्य अर्थ-शास्त्र

(युक्तप्रान्त के हाईस्कूल और इंटरमीडियेट बोर्ड की हाईस्कूल-परीक्षा
के अर्थशास्त्र के लिये स्वीकृत)

— * ◯ * —

लेखक

पंडित दयाशंकर दुबे, एम० ए०, एल० एल० बी०
अर्थशास्त्र अध्यापक, प्रयाग विश्वविद्यालय

श्री शंकरसहाय सक्सेना एम० ए०, बी० काम०
प्रिंसिपल, महाराणा कालेज, उदयपुर

और

श्री महेशचंद, एम० ए०, बी० एस-सी० आनर्स० विशारद
अर्थशास्त्र अध्यापक, प्रयाग विश्वविद्यालय



प्रकाशक

नेशनल प्रेस

इलाहाबाद

सातवीं संस्करण]

१९४६

[मूल्य २/]

मुद्रकः—रहमशरन अग्रवाल, प्रगति प्रेस
कल्याणी देवी, प्रयाग
१ म ८४६

भूमिका

मैं उन व्यक्तियों में से हूँ जो अर्थशास्त्र के ज्ञान का प्रचार छोटे दर्जे के विद्यार्थियों में भी चाहते हैं। इसलिये मैंने अर्थशास्त्र सम्बन्धी कई विषयों पर पाठ अपनी 'बालबोध' पुस्तक में दिये। यह पुस्तक चार भागों में प्रकाशित हुई और कई वर्षों तक युक्तप्रान्त के प्रारम्भिक पाठशालाओं के लिये पाठ्यग्रंथ के रूप में स्वीकृत रही। मुझे यह सूचित करते दर्प होता है कि इस पुस्तक के अर्थशास्त्र-सम्बन्धी पाठों को अध्यापकों और विद्यार्थियों ने बहुत पसन्द किया। इससे यह भी सिद्ध हो गया कि अर्थशास्त्र ऐसा सरल विषय है, जिसका ज्ञान छोटे बच्चों को भी प्रारम्भिक पाठशालाओं में आसानी से कराया जा सकता है।

अर्थशास्त्र का विषय सरल और महत्वपूर्ण होने पर भी उसे प्रारम्भिक पाठशालाओं के पाठ्यग्रंथों में अभी तक स्थान नहीं मिला। सन् १९१७ तक तो, जिस वर्ष मैंने बी० ए० परीक्षा उत्तीर्ण की, अर्थशास्त्र को बी० ए० से नीचे दर्जे की परीक्षा के पाठ्य विषयों में स्थान नहीं दिया गया था। उन दिनों अर्थशास्त्र के विषय का पढ़ना बी० ए० क्लास से ही आरम्भ होता था। इंटरमीडियट तक पढ़ने वालों को तो इस विषय के ज्ञान प्राप्त करने का अवसर ही नहीं मिलता था। कुछ वर्ष बाद अर्थशास्त्र को इंटरमीडियट के पाठ्य विषयों की सूची में स्थान मिला और सन् १९४० से ग्राम्य अर्थशास्त्र को युक्तप्रान्त की हाईस्कूल-परीक्षा के पाठ्य विषयों की सूची में भी स्थान मिल गया है। इस ग्राम्य अर्थशास्त्र के पाठ्यक्रम के अनुसार ही यह पुस्तक तैयार की गई है। इसका प्रस्तुत सातवाँ संस्करण इसकी उपयोगिता

तथा प्रचार का द्योतक है। इसमें यथोचित सुधार तथा संशोधन किया गया है।

इसमें जमींदारी प्रथा की बुराइयों को रोकने तथा अंत में उसका अंत कर देने के लिये सरकार की जो योजनाएँ हैं उनका यथा स्थान उल्लेख कर दिया गया है। सहकारी समिति सम्बन्धी अध्यायो में भी उचित सुधार किया गया है।

महाराणा कालेज ऊदयपुर के प्रिंसिपल श्रीशङ्करसहाय जी सक्सेना के सहयोग से यह पुस्तक तैयार की गई है। हम लोग आशा करते हैं कि इस पुस्तक से हाईस्कूल के विद्यार्थियों को ग्राम्य अर्थशास्त्र का विषय समझने में पहले से अधिक सहायता मिलेगी।

यदि कोई सज्जन इस पुस्तक की त्रुटियों की तरफ सेरा ध्यान आकर्षित करेंगे या इसको और अधिक उपयोगी बनाने के उपाय बतलावेगे तो मैं उनका बहुत आभारी होऊँगा।

श्री दुवे निवास
दारागज (प्रयाग)
१५ फरवरी १९४६

}

दयाशंकर दुवे
अर्थशास्त्र अध्यापक
प्रयाग विश्वविद्यालय

विषय सूची

पहला अध्याय

अर्थ शास्त्र के विभाग

मनुष्य की आवश्यकतायें—प्रकृति देने वाली हैं—अर्थ शास्त्र—अर्थ-शास्त्र के विभाग-अर्थशास्त्र क्या है ?—उत्पत्ति—उपभोग—विनिमय—वितरण—सारांश—अर्थ-शास्त्र के अध्ययन से लाभ—अभ्यास के प्रश्न १—१४

दूसरा अध्याय

परिभाषाएँ

धन या संपत्ति—केवल रुपया पैसा ही धन नहीं—सम्पत्ति वृद्धि—सम्पत्ति और सुख—उपयोगिता—सीमान्त उपयोगिता—मूल्य—कीमत—आय—अभ्यास के प्रश्न १४—२४

तीसरा अध्याय

उत्पत्ति

उपयोगिता वृद्धि—भूमि—श्रम—श्रम की उपयोगिता—श्रम विभाग—पूँजी—प्रबन्ध—साहम या जोखिम—अभ्यास के प्रश्न २४—३६

चौथा अध्याय

खेती

भारतीय गाँवों की खास पैदावारें, भारतीय भूमि की पैदावार की कमी—पैदावार की कमी के कारण—खेतों का छोटे-छोटे और दूर दूर होना—खेती में क्या करना पड़ता है ?—ग्रामीण उद्योग-धन्धे— ३६—४७

पाँचवाँ अध्याय

घरेलू तथा स्थानीय उद्योग-धन्धे

घरेलू उद्योग धन्धे की आवश्यकता—हमारे स्थानीय उद्योग-धन्धे—बरतन बनाना—चटाई और टोकरी बनाना—गुड़ बनाना—चर्खा कातना और कपड़ा बुनना—पशु-पालन—दूध का काम—मक्खन और घी—रस्सी

बनाना, लकड़ी का काम, लोहार का काम, तेली का काम, जूते बनाना, फल फूल और सरकारी पैदा करना, शहद का धन्धा, अन्य उद्योग धन्धे, घरेलू उद्योग धन्धे और सरकार, अभ्यास के प्रश्न— ४८—६१

छठवाँ अध्याय

आवश्यकताएँ

आवश्यकता का महत्व, आवश्यकता और इच्छा, आवश्यकता और उद्योग, आवश्यकता के लक्षण, आवश्यकता के भेद, आवश्यकता की पूर्ति, आय-व्यय, बचत, अभ्यास के प्रश्न— ६१—७३

सातवाँ अध्याय

भारतीय रहन-सहन का दर्जा

रहन-सहन का दर्जा, भारतीय रहन-सहन का दर्जा, रहन सहन का दर्जा ऊँचा करने का उपाय, पारिवारिक बजट-किसान का खर्च, गाँव के मजदूर और उनका खर्च, गाँव के कारीगर का व्यय, अभ्यास के प्रश्न— ७३—८२

आठवाँ अध्याय

भोजन कितना और कैसा हो ?

भोजन की आवश्यकता, चर्बी, प्रोटीन, चीनी, और विटामिन, भोजन के भेद, उपयुक्त भोजन की मात्रा, अभ्यास के प्रश्न ८२—८७

नवाँ अध्याय

विनिमय

वस्तुओं की अदला-बदली, माल की खरीद और बिक्री, बाजार, बाजार का क्षेत्र, वस्तु की कीमत किस प्रकार निश्चित होती है ?-खेती से उत्पन्न पदार्थों की कीमत, अभ्यास के प्रश्न— ८७—९६

दसवाँ अध्याय

ग्रामीण फसल की बिक्री

प्राक्कथन, बिक्री की बातें, मंडी में फसल की बिक्री, गाँव में बनी वस्तुओं की बिक्री, ग्रामीण सड़क, सहकारी संस्थाएँ और बिक्री, ग्रामीण

बाजार—हाट—गाँव का मेला—हाट और मेले का महत्व—हाट और मेले का संगठन—अभ्यास के प्रश्न— ६६—१०८

ग्यारहवाँ अध्याय

वितरण

वितरण क्या है ?—खेती में वितरण—लगान—मजदूरी—सद—मुनाफा—अभ्यास के प्रश्न— १०८—११६

बारहवाँ अध्याय

औद्योगिक मजदूर

गंदी बस्तियाँ—औद्योगिक सुख सुविधा—ड्रेड यूनियन—१२०—१२३

तेरहवाँ अध्याय

बटाई प्रथा

विषय प्रवेश—बटाई-प्रथा क्या है ?—बटाई की दर—बटाई-प्रथा के गुण दोष—मजदूरी सम्बन्धी बटाई—बटाई और रीति-रिवाज—अभ्यास के प्रश्न— १२३—१३१

चौदहवाँ अध्याय

जमींदार और किसान

स्थायी बन्दोबस्त—बंगाल का प्लाऊड कमीशन—अस्थायी बन्दोबस्त जमींदार और किसान—बेगार और नजराना—जमींदार के कर्तव्य—पटवारी के कागजात—शजरा मिलान—खसरा—स्याहा—बहीखाता जिनसवार—खतौनी—खेवट—पटवारी के अन्य कार्य—अभ्यास के प्रश्न—१३१—१४३

पन्द्रहवाँ अध्याय

ग्रामों की समस्याओं का दिग्दर्शन

गाँवों की समस्याएँ—अभ्यास के प्रश्न १४३—१४७

सोलहवाँ अध्याय

किसानों का निराशावादी दृष्टिकोण

निराशावादी दृष्टिकोण—अभ्यास के प्रश्न— १४७—१५१

सत्रहवाँ अध्याय

गाँव की सफाई

ताल व पोखरे—खाद के गड़हे शौचस्थान—नाबर्दान तथा नालियों की समस्याएं घरों में हवा और रोशनी का प्रबन्ध—गाँव की सड़कें—गाँव में कुशल दाइयों की समस्या—गाँव में सफाई और स्वास्थ्य-रक्षा की योजना—अभ्यास के प्रश्न— १५१—१६१

अठारहवाँ अध्याय

ग्रामीण शिक्षा

ग्रामीण शिक्षा—साजेंट रिपोर्ट—तालीमी संघ—अभ्यास के प्रश्न— १६१—१६६

उन्नीसवाँ अध्याय

मनोरंजन के साधन

गाँवों का खेल—हिन्दुस्तानी खेल—गाँव का स्काउट ट्रूप—भजन तथा भजन मंडलियाँ—नाटक तथा प्रहसन—रेडियो—मैजिक लैटर्न तथा सिनेमा-शो—ग्राम सेवादल—घरों को अधिक आकर्षक बनाना—अभ्यास के प्रश्न— १७०—१७६

बीसवाँ अध्याय

स्वास्थ्य-रक्षा के सिद्धान्तों का प्रचार

सफाई, हवा और रोशनी—शुद्ध और पौष्टिक भोजन—परिश्रम अथवा व्यायाम—विश्राम—रोग और उनसे बचने के उपायों की जानकारी—क्षयरोग या तपेदिक—चिकित्सा का प्रबन्ध—अभ्यास के प्रश्न—१७६—१८६

इक्कीसवाँ अध्याय

पशु-पालन

गाँव में गाय और बैल का महत्व—गौ-वंश की अत्यन्त हीन दशा—गौ-वंश की हीन दशा के कारण, आवश्यकता से अधिक बैल-चारे की कमी—साईक्लेन बनाने का उपाय—पशुओं के रोग—गाय और बैलों की नस्ल—जिला बोर्ड द्वारा सहायता—सहकारी नस्ल-सुधार समितियाँ—ग्राम-सुधार भाग—गऊशाला—गौ-सेवा संघ—अभ्यास के प्रश्न— १८६—१९७

बाइसवाँ अध्याय

खेती की उन्नति के उपाय

कृषि की गिरी हुई दशा — कृषि के आवश्यक साधन—भूमि—पूँजी—
श्रम तथा संगठन—छोटे छोटे बिखरे हुए खेतों की समस्या—खाद की समस्या
—हड्डी की खाद—हरी खाद—अन्य प्रकार की खाद—फसलों का हेर-फेर
—पशुधन—खेती के यन्त्र—बीज—सिंचाई—वर्षा का जल—कुओं के
द्वारा सिंचाई—संयुक्तप्रांत में ट्यूब वेल—नहर के द्वारा सिंचाई—तालाब
—साख—श्रम और संगठन—फसलों के शत्रु खेती की पैदावार बेचने की
समस्या—गाँवों की सड़कें—मंडियों का पुनर्संगठन—किसान को सतर्क तथा
परिश्रमी होना चाहिये—अभ्यास के प्रश्न—

१६७—२२०

तेइसवाँ अध्याय

मुकदमेबाजी

मुकदमें बाजी—आकर्षक गृह—गाँव पंचायत—पंचायत अदालत—अभ्यास
के प्रश्न—

२२०—२२३

चौबीसवाँ अध्याय

ग्रामवासियों को ऋणमुक्त करना

ग्रामवासियों को ऋणमुक्त करना—महायुद्ध और ऋण—कर्जदार होने
के कारण—अनिश्चित खेती—बैलों की मृत्यु—सामाजिक तथा धार्मिक
कृत्यों में अधिक व्यय करना—मुकदमेबाजी—लगान और मालगुजारी—
सरकार द्वारा ऋण की समस्या को हल करने का प्रयत्न—ऋण परिशोध—
महाजन लायसेंस कानून—अभ्यास के प्रश्न

२२४—२३४

पच्चीसवाँ अध्याय

गाँवों में आय के साधन और गमनागमन

ग्रामीण धन्धे ग्राम उद्योग संघ—गाँव में आने जाने की सुविधा—
अभ्यास के प्रश्न—

२३४—२३७

छब्बीसवाँ अध्याय

कृषि-विभाग के कार्य तथा खाद्य समस्या

कृषि-विभाग का संगठन और उसका कार्य प्रान्तीय उन्नयन योजना—
भारत में खाद्य पदार्थों की कमी—अभ्यास के प्रश्न—

२३७—२४१

सत्ताइसवाँ अध्याय

ग्राम और जिले का शासन

ग्राम शासन; ग्राम के मुख्य कर्मचारी—मुखिया—पटवारी—चौकीदार—तहसीलदार—देहाती बोर्ड और जिला कौंसिल—निर्वाचक और सदस्य—जिला बोर्ड के कार्य—जिला बोर्डों की आय—सरकारी नियन्त्रण नागरिक भावों की आवश्यकता—जिले का शासन—शासन व्यवस्था में जिले का स्थान—जिला मेजिस्ट्रेट के कार्य—जिले के अन्य कर्मचारी—कमिश्नर—अभ्यास के प्रश्न—

२४५—२४३

अट्ठाइसवाँ अध्याय

गाँव पंचायत

गाँव वालों का पारस्परिक सम्बन्ध—गाँव की संस्थाएँ और उनका महत्व—पंचायतें—पंचायतों की स्थापना—संयुक्तप्रान्त का पञ्चायत राज्य एक्ट—गाँव सभा—गाँव पञ्चायत के कार्य—कर पञ्चायत अदालत—अभ्यास के प्रश्न—

२५३—२६२

उन्तीसवाँ अध्याय

सहकारी साख समितियाँ

सहकारिता का मूल सिद्धान्त—सहकारी साख समितियाँ, प्रारम्भिक कृषि सहकारी साख समितियाँ—कृषि साख समिति के उद्देश्य—समिति की सदस्यता—अपरिमित उत्तरदायित्व—समिति का प्रबन्ध—समिति की पञ्चायत के कार्य—समिति की पूँजी—समिति के कार्यकर्ताओं का अवैतनिक होना—समिति की साख निर्धारित करना—समिति द्वारा ऋण देने का कार्य—समितियों का आय-व्यय-निरीक्षण—कृषि सहकारी साख समितियों की मिली हुई सुविधायें—क्या कृषि साख समितियाँ सफल हो रही हैं ? अभ्यास के प्रश्न—

२६२—२७५

तीसवाँ अध्याय

गैर-साख कृषि सहकारी समितियाँ

सहकारी क्रय-विक्रय समितियाँ, क्रय समितियाँ, विक्रय समितियाँ, विक्रय समितियों का संगठन, भूमि की चकबन्दी करने वाली समितियाँ, चकबन्दी समिति की स्थापना, सरकारी कृषि समितियाँ, रहन सहन-सुधार समितियाँ, उपभोक्ता सहकारी स्टोर्स, सहकारी स्टोर्स के मुख्य नियम, भारतवर्ष में उपभोक्ता स्टोर्स, भारतवर्ष में स्टोर्स की असफलता के मुख्य कारण, मद्रास का ट्रिपलीकेन स्टोर, महायुद्ध और स्टोर्स, अभ्यास के प्रश्न-- २७६-२८६

इकतीसवाँ अध्याय

सहकारी समितियों के यूनियन

गारन्टी यूनियन, सुपरवाइजिंग यूनियन, प्रान्तीय सहकारी यूनियन, अभ्यास के प्रश्न-- २९७-३००

बत्तीसवाँ अध्याय

सेन्ट्रल सहकारी बैंक

साधारण सभा, बॉर्ड आफ डायरेक्टर्स, कार्यशील पूँजी, अभ्यास के प्रश्न-- ३०१-३०५

तैंतीसवाँ अध्याय

प्रान्तीय सहकारी बैंक

प्रान्तीय सहकारी बैंक, अभ्यास के प्रश्न ३०५-३०८

चौतीसवाँ अध्याय

सहकारिता आन्दोलन की दशा, अभ्यास के प्रश्न ३०९-३१२

CLASSIFIED CONTENTS

(According to the Syllabus of Economics and Co-operation for the High School Examination of 1950 and subsequent years prescribed by the Board of High School and Intermediate Education, U. P.)

विषय सूची, स्वीकृति पाठ्यक्रम के अनुसार

Introduction (विषय प्रवेश १-२३)

Subject-matter of Economics [अर्थशास्त्र का विषय] १-१३

Wealth [धन या संपत्ति] १४-१६

Wealth and prosperity [संपत्ति और सुख संतुष्टि] १६-१८

Utility [उपयोगिता] १८-२१

Value [मूल्य] २१-२२

Price [कीमत] २२-२२

Income [आय] २२-२३

Production [उत्पत्ति] २४-२७

Essentials of Production [उत्पत्ति के आवश्यक अंग]

२७-३६

Their nature and function in agriculture and industries [उनके गुण और उनका खेती और उद्योग धर्मों में कार्य]

३६-६१

A survey of the principal crops of any locality [किसी स्थान के मुख्य फसलों का वर्णन]

३६-३७

Low yield of the land and its causes [भूमि की पैदावार की कमी और उसके कारण]

३७-४०

Sub-division and fragmentation of holdings [खेतों के छोटे छोटे टुकड़ों में दूर दूर होना]

४०-४२

Important Cottage Industry is Local Industries [महत्वपूर्ण तथा घरेलू उद्योग-धंधे]

४५-४६

Oil-Crushing [तेली का काम]

५७

Rope-making (रस्सी बनाना)	५६
Cotton-spinning and weaving (चर्खा काटना और कपड़ा बुनना)	५१-५२
Tanning and shoe-making (चमड़ा कमाना और जूते बनाना)	५७-५८
Wood-work (लकड़ी का काम)	५६
Ghee and milk-production (घी और दूध का काम)	५३-५४
Methods of agriculture, equipment, agricultural technique and rural industries (खेती के तरीके खेती की विशेषताएं और ग्रामीण उद्योग-धंधे)	४१-६०
<i>Consumption</i> (उपयोग) ५८-८२	
Wants, Income, Satisfaction of wants (अवा- श्यकतायें, आय, आवश्यकताओं की पूर्ति)	६२-७३
Classification of wants (आवश्यकताओं का वर्गीकरण)	६६-६८
Savings (बचत)	७२-७३
Budgets of consumption of farmer, village artisan, village labourer and industrial labourer किसान, ग्रामीण कारीगर ग्रामीण मजदूर और औद्योगिक मजदूर का बजट	७७-८२
Standard of living (रहन सहन का दर्जा)	७४-७६
Essentials of a balanced diet (उपयुक्त भोजन की आवश्यक वस्तुयें)	८३-८७
<i>Exchange</i> (विनिमय) ८८-१०८	
Barter (वस्तुओं की बदला बदली)	८८-८९
Purchase and sale (वस्तुओं की खरीद और बिक्री)	८९-९१
Market (बाजार)	९१

Marketing of agricultural produce and disposal of village handicrafts (ग्रामीण फसल और घरेलू उद्योग-धंधों के पदार्थों की बिक्री) ६७-१०८

Its draw-back and improvements (उसके दोष और उसकी उन्नति) १०२-१०४

Village markets, *hats* and fairs (ग्रामीण बाजार हाट और मेले) १०४-१०८

Their utility and organisation (उनकी उपयोगिता और संगठन) १०७-१०८

Distribution (वितरण) ११०-१३८

Sharing of agricultural income (खेतों की आय का वितरण)

Slum areas, Industrial Welfare Trade Unions (गंदी बस्तियाँ, औद्योगिक सुख सुविधा ट्रेड यूनियन) १२१-१२४

Profit (मुनाफा) २१६-११८

Batai system and abuses of *batai* (बटाई प्रथा और उसका दुरुपयोग) ११६-१२४

System of payments to village workers (ग्रामीण काम करने की मजदूरी चुकाने का तरीका) ११३; ११५; १२६-३०

Customs and traditions and their effects on economic condition (रीति रिवाज का आर्थिक दशाओं पर प्रभाव) १२५-१२६

Land tenure (मालगुजारी प्रथा) १२७-१३०

Relation between zamindar and tenants (जमींदार और किसान का सम्बन्ध) १३०-१३४

Patwari papers (पटवारी के कागजात) १३४-१३७

की होती है अगर किसी देश के लोग अधिक प्रयत्न करके प्रकृति से बहुत सी वस्तुएँ प्राप्त नहीं करते तो वह देश निर्धन रहेगा। अर्थशास्त्र में मनुष्य के इन प्रयत्नों का ही अध्ययन किया जाता है। इसलिए अर्थशास्त्र के अध्ययन से हमें यह भी मालूम हो सकता है कि हम निर्धन क्यों हैं और किस प्रकार धनी बन सकते हैं।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि 'अर्थशास्त्र' वह शास्त्र है जिसमें हम मनुष्य के अपने पालन-पोषण के लिए किये गये प्रयत्नों का अध्ययन करते हैं।

उदाहरण के लिए विद्यार्थियों में से ऐसे बहुत से होंगे जिनके पिताजी नौकरी करके, बकालत या डाक्टरी से धन उत्पन्न करते हैं। क्या कभी तुमने यह भी सोचा है कि तुम्हारे पिताजी इन पैसे को कैसे पैदा करते हैं और इनको कैसे खर्च करना चाहिए? क्या यह अच्छा होगा कि तुम्हारे पिता जी, तनख्वाह पाते ही सब रुपयों को खर्च कर दें? नहीं, क्योंकि ऐसा करने से महीने भर का खर्च कैसे चलेगा? क्या तुम्हारे पिता जी सब को सुप्त में ही बाँट देते हैं? क्या वे रुपये के बदले में कुछ नहीं लेते? जब तुम मंडी में अनाज खरीदने जाते हो तो रुपये के बदले में गेहूँ, चना, मटर, चावल आदि चीज़ें खरीदते हो। तुम लोगों में से बहुत से गाँवों के रहने वाले हैं। वहाँ किसान खेती करके अनाज की उत्पत्ति करते हैं, जब फसल कट कर खलिहान में आ जाती है तो उपज का थोड़ा सा हिस्सा तो खाने के लिए घर में रख लिया जाता है और एक बहुत बड़ा हिस्सा व्यापारी के हाथ बेच दिया जाता है, लेकिन एक बात और है। इन सबके पहले खलिहान पर—नाऊ, धोबी, मालगुजार, महाजन आदि का धावा होता है। शहर की तरह गाँवों में नाऊ, धोबी, बहुत वगैरह को नकद पैसा मिलता नहीं। घर पीछे उनका हिस्सा बँधा रहता है। फसल कट जाने पर अनाज में से पहले उनका हिस्सा निकाल देना पड़ता है। महाजन जिनसे किसान रुपया उधार लेते हैं सूद की जगह अनाज ही ले लेते हैं।

अर्थशास्त्र के नियम

ऊपर दिये हुये उदाहरण से यह साफ हो जाता है कि हर एक मनुष्य जो अपने भरण-पोषण के लिए प्रयत्न करता है अर्थात् कोई धंधा या पेशा

करता है, उसको सबसे पहले धन पैदा करना पड़ता है फिर वह उसके बदले उन चीजों को मोल लेता है जिनकी उसको आवश्यकता है, फिर वह उनका उपभोग करता है अर्थात् काम म लाता है या खर्च करता है और यदि उसने कुछ और लागो की मदद से धन का उत्पादन की है तो उसका हिस्सा बढ़ाना पड़ता है। सारांश यह है कि अर्थशास्त्र के अध्ययन के लिए हमें उसको चार विभागों में बाँट लेना चाहिए—

१-उत्पत्ति (Production)

२-उपभोग (Consumption)

३-विनिमय (Exchange)

४-वितरण (Distribution)

अब हम आगे इन चार विभागों के सम्बन्ध में विचार करते हैं।

उत्पत्ति (Production)

हम ऊपर कह आए हैं कि अर्थशास्त्र हमें उत्पत्ति के बारे में बहुत कुछ बतलाता है, पर यह उत्पत्ति है क्या वला ? क्या केवल किसान ही या सम्बन्ध उत्पत्ति से है ? नहीं दर्जी, जुलाहा, बढई, हलवाई सबके सब उत्पत्ति कार्य करते हैं। जुलाहा क्या करता है ? वह सूई के रेशों को इस प्रकार रों देता है कि कपड़ा तैयार हो जाता है। दर्जी उस कपड़े को क्या करता है ? वह आपके बदन का नाप लेकर उस कपड़े का काट-छाँट कर इस प्रकार मिलाता है कि उसकी बनावट हुई कमीज व कोट आपके बदन पर ठीक फिट कर जाती है। इसी प्रकार हलवाई मेदा, खोवा, चीनी वगैरह को इस प्रकार मिला कर आग पर भून कर तैयार करता है कि मिठाई बन जाती है। बढई लकड़ी और कुछ कीलों को इस प्रकार मिला देता है कि हमारा हल, खाट, कुर्सी या मेज बन जाती है। कुम्हार गीली मिट्टी को चाक पर इस पतार में संवारता है कि मकोरा, करई व हाँडी तैयार हो जाती है। किसान का हो ले लो। वह थाड़े से बीजों से मनों अनाज पैदा करता है। परन्तु कैसे ? वह बीज को एक खास ढंग से खेत में रखता है। फिर इस प्रकार से खाद व पानी डालता है कि बीज उनके तथा हवा के अशों को लेकर अपना वेप बदल डालता है। उससे एक छोटा सा पौधा फूट निकलता है—

और यह पौधा अन्न में अन्न के सैकड़ों दाने पैदा करता है। कहने का मतलब यह है कि कोई भी अन्न और में चुन नहीं जा सकता। किसान से लेकर, जुलाहे और दर्जी तक सब के सब पहिले से पास किसी वस्तु का इस प्रकार से रखते हैं कि उस वस्तु की उपयोगिता बढ़ जाती है। जहाँ पहले कोई हमारे तहत तम काम तो रहती है, वही मई को कमीज़ या कोट का हम अपना बदन ढकाने में उपयोग करते हैं। “उत्पादन की वस्तु की उत्पात्ति से हमारा मतलब होता है उसे आगे उपयोग करना। किसी चीज़ को पहले से प्राथमिक उपयोगी बनाना ही धन की उत्पत्ति कहलाती है।”

मान लीजिए आपके खेत के खुर पर आपका एक पुराना रप्ता पैड़ा खड़ा है। आप उसे बेचना चाहते हैं और शायद आपका लोग रप्ता देने का तैयार है। आपका दाग कम जैकवा है और खुर पेरा माट कर उगा तख़्ते बना डालते हैं। उन तख़्ता को आप लोग पैतान रप्ता में बेच सकते हैं। पर यदि आप उन तख़्ता में चाबूत, कुर्सी, चारपाई आदि बना डालिये तो आपका पचास रुपए भी मिल जायें तो कोई आश्चर्य नहीं। लेकिन आपने इतना समय तक दिया क्या? उस पैरा को लकड़ों का ता बना ही नहीं दी। उम्हें आप उसे माटते डाटते रहे। तो आपने उस लकड़ी की उपयोगिता अवश्य बढ़ा दी। यहाँ पर लकड़ी प्रकृत से प्राप्त की हुई वस्तु की उपयोगिता बढ़ाते रहे हैं। लेकिन जब वर्गीय भावना हमारा मुकदमा जीत जाय है, जब ब्राह्मण महाराज हमारे जानमाल की रक्षा कर देते हैं अथवा जन पुलिस का आदमी हमारे जानमाल की रक्षा कर देता है, तब तो शायद किसी वस्तु के रूप में परिवर्तन नहीं होता। परतापी ता ये रक्ताई भी हाती है परन्तु ये ऊपर से बताई वस्तुओं से भिन्न है। उसे हमारी निर्दिष्ट आवश्यकताओं भीधी भीधी पूरी होती है। पहले उदाहरण उदाहरण अर्थात् किसान का अनाज पैदा करना दर्जी का कोट सीना, बछई का हल बनाना आदि भौतिक (material-production) उत्पात्ति के उदाहरण हैं। लेकिन वहील, पुस्तक, मास्टर वगैरह के कार्य अभानि-उत्पत्ति (Immaterial production) के अन्तर्गत शामिल किये जाते हैं। भौतिक उत्पत्ति करने समय किसी वस्तु का रूप, स्थान आदि बदल कर उपयोगिता की वृद्धि ही जाता है।

आर्थिक उत्पत्ति के लिये सेवाकार्य किये जाते हैं कि जिससे मनुष्य की आवश्यकता सीधे सीधे पूरी हो जाती है। उत्पत्ति किस प्रकार होता है ? उत्पत्ति करने में कौन कौन मदद करता है, किस किस शक्ति की जरूरत पड़ती है तत्प्राप्त गवानों का जवाब भी हमें अर्थशास्त्र से ही मिल जाता है। यह तो सब कोई जानता है कि प्रत्येक काम के करने में मेहनत करनी पड़ती है। लेकिन मेहनत किस वस्तु पर की जाती है ? मेहनत करने का सब से सीधा उदाहरण है--घूमना या दौड़ना। घूमते या दौड़ते समय आप हवा में तो चलते ही नहीं। चलते हैं ज़मीन पर ही। अतएव यदि यह कहा जाय कि किसी भी कार्य में मेहनत और भूमि दोनों की आवश्यकता पड़ती है तो ग़लत न होगा। बहुधा यह देखा गया है कि काम करने में आदमी किसी चीज़ की मदद लेता है और वह भी इसलिये कि काम करने में सुभोगा होता है। लकड़हारा जंगलों में जाकर उन लकड़ियों का ढ़ोर कर बेचने ला सकता है जो भूमि पर पड़ी हैं। घास बेचने वाला हाथ से घास उखाड़ उखाड़ कर जमा कर सकता है। लेकिन वह चाहता है कि घास छीलने में आसानी हो जाय, अर्थात् जल्दी-जल्दी घास छीलने लगे और इसी कारण-से वह खुरपी का प्रयोग करता है। इसी प्रकार से लकड़ी वाला कुल्हाड़े से काम लेता है। खुरपी और कुल्हाड़ा मोल लेने के लिए रुपया खर्च करना पड़ता है। इसलिए ये दोनों चीज़ें धन के रूप हैं। खेती करने में भी इसी प्रकार भूमि, श्रम और पूँजी की जरूरत पड़ती है। यदि खेत की ज़मान न हो तो किसान बीज कहाँ बोवेगा ? वह हल, बैल, फावड़ा, हसिया, खुग्गा के रूपमें धन लगाता है और स्वयं मेहनत करता है परन्तु इन तीनों के अलावा उत्पत्ति के किसी कार्य में प्रबन्ध व साहस भी स्थान रखते हैं। हमारा खेतहर यह निश्चय करता है कि खेत में कितना पानी डाला जाय। खेत को कितना गहरा खोदा जाय। क्या बरसात में खेत का पानी बह कर निकल जाने दें अथवा उसे खेत ही में रहने दें ? कौनसी फसल बोना ठीक होगा। इन सब बातों का प्रबन्ध तो किसान करता ही है परन्तु किसी समय वह किसी बात का निश्चय नहीं कर सकता। मान लीजिए कोई ज़मीन रामू किसान के पास नहीं थी और इस साल उसने उसे मोल ले ली। उस भूमि के बारे में रामू सब बातें नहीं जानता। क्या वह उस टुकड़े को ज़मीन के और टुकड़ों से अधिक गहरा

खोदे ! क्या वह उस खेत में अधिक खाद व पात्री डाले या कोई नई फसल पैदा करे जा उसने पहले कभी पैदा नहीं की थी। उन सब बातों में रामू की साहस से काम लेना पड़ता है। उस तरह से उत्पत्ति (Production), में भूमि (Land), श्रम (Labour), धन अर्थात् पूँजी (Capital), प्रबन्ध (Organisation) और साहस (Enterprise) नामक पाँच शक्तियाँ काम करती हैं। इसी प्रकार यदि हम एक बड़े कारखाने का ले तो उसमें भी उत्पत्ति के पाँचो साधनों की आवश्यकता स्पष्ट दिखलाई देती है। उदाहरण के लिये कारखाना बड़ा करने के लिये भूमि की आवश्यकता ता है ही, मजदूरों की भी स्पष्ट आवश्यकता है। उमारत तथा मशीनों (पूँजी) के बिना कोई उत्पादन हो नहीं सकता और इतने बड़े कारखाने के लिये प्रबन्ध की आवश्यकता तो है ही। अर्थात् किन्हीं प्रकार का माल बनवाना चाहिए, उसकी बिक्री वा प्रबन्ध अर्थात् कारखाने के चलाने में जोखिम भी बहुत बढ़ी है कि कारखाने के रूप हो जाने पर गारंटी पूँजी बन सकती है। संक्षेप से कहने का तात्पर्य यह है कि आप कोई धधा लें उसमें इन पाँच माध्यमों की आवश्यकता पड़ेगी।

यह तो हम पहले ही कह चुके हैं कि उत्पादन का अर्थ है किसी वस्तु की उपयोगिता में वृद्धि होना। मनुष्य किसी बिल्कुल नई वस्तु का निर्माण नहीं कर सकता। वह केवल वस्तु की उपयोगिता को बढ़ा भर सकता है। उदाहरण के लिये बिगौले से कपास की अधिक उपयोगिता है, कपास से सूत की और सूत से कपड़े की अधिक उपयोगिता है। कपड़े से कोट की अधिक उपयोगिता है। अब यदि देखा जावे तो मनुष्य ने किसी नई चीज़ का निर्माण नहीं किया। बिगौले में कपास मौजदगी, उसको विकसित करने में वह सहायक भर हुआ। उसी प्रकार अन्य क्रियाओं द्वारा उपयोगिता में वृद्धि भर की गई।

उपयोगिता वृद्धि किसी वस्तु के रूप को बदल कर स्थान को बदल कर अथवा समय को बदल कर की जाती है। कपड़े से कोट बनाना रूप परिवर्तन द्वारा, लकड़ी को जंगल से शहर तक लाने में स्थान परिवर्तन द्वारा तथा दूकानदारों द्वारा माल को उपयुक्त समय के लिए भर कर रखने में समय के परिवर्तन द्वारा उपयोगिता वृद्धि होती है।

उपभोग (Consumption)

उत्पत्ति का अर्थ समझ लेंगे पर अब हम उपभोग के सम्बन्ध में विचार करते हैं। रामू किसी खेत में क्या बोवेगा, इससे अब हमसे बिलकुल मतलब नहीं। वह स्वतन्त्र है। चाहे वह गेहूँ बोवे, चाहे चना, चाहे जौ या बाजरा। मान लीजिए वह गेहूँ बोता है। फसल के कट जाने पर किसान गेहूँ को काट गाड़ कर घर में लाता है। घर वाले उसको पीस कर रोटियाँ बनाते हैं और सब कोई उसे खाते हैं। खाने से किसान की भूख मिट जाती है। उसे एक तरह का संतोष मिलता है और हम कहते हैं कि किसान ने रोटि का उपभोग किया। आमतौर पर उपभोग से किसी वस्तु का उपयोग करने या सेवन करने का मतलब निकाला जाता है। लेकिन अर्थ-शास्त्र में उपभोग के मतलब कुछ और ही होते हैं। मान लो तुम्हारे पास रोटि का एक टुकड़ा है। उसे तुम खा भी सकते हो और आग में डाल कर जला भी सकते हो। दोनों हालत में कहा जाता है कि रोटि का उपभोग हो गया लेकिन अर्थ-शास्त्र के मत से केवल जब रोटि खाई जाती है तभी उसका उपभोग समझा जाता है अन्यथा नहीं। रोटि खाने से तो मनुष्य को एक प्रकार का संतोष मिलता है लेकिन यदि रोटि आग में जला दी जाय तो किसी की आवश्यकता पूरी नहीं होती और इसलिये किसी को संतोष नहीं मिलता। रोटि खाई जाय अथवा जलाई जाय दोनों हालत में उसकी उपयोगिता नष्ट हो जाती है। अतएव अर्थ-शास्त्र के अन्तर्गत जब किसी सेवा या वस्तु का इस प्रकार से उपयोग किया जाता है कि मनुष्य की कोई आवश्यकता पूरी होती हो अर्थात् जिससे मनुष्य को किसी प्रकार का संतोष मिलता है तभी हम कहते हैं कि उस सेवा या वस्तु का उपभोग किया गया। एक बात और, कभी-कभी किसी वस्तु का उपयोग किसी अन्य वस्तु के पैदा करने में किया जाता है जैसे किसी कारखाने में कांयले का उपयोग। यहाँ पर देखना चाहिये कि कांयले के जलने से किमी आदमी की कोई इच्छा पूरी हुई या नहीं। उत्तर है कि हमारे देखते तो कोई इच्छा पूरी होती नहीं दिखाई देती। और जब यह हाल है तो अर्थ-शास्त्री ऐसी वस्तु के इस तरह जलने को उपभोग नहीं कहेंगे! हाँ अगर जाड़े का दिन हो और आप कांयला जला कर आग तापें तो हम कहेंगे कि आपने

कोयले का उपभोग किया, क्योंकि इस बार कोयला जलाने से आपकी ठंडक दूर करने की इच्छा पूरी हो गई।

उपभोग के सम्बन्ध में यह जानना जरूरी है कि इसी के लिए आदमी सब चीजें पैदा करता है और जितनी चीजें पैदा की जाती हैं उन सबका उपभोग किया जाता है। परन्तु किमी आदमी की एक समय में एक इच्छा तो होती नहीं। हर वक्त बहुत सी बातें उसके दिमाग में घूमा करती हैं और सब से बड़ा प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि कौन सी इच्छा पहले पूरी की जाय ? इसका साधारण सा उत्तर है उस इच्छा का जिसका पूरा करने से सबसे अधिक संतोष या उपयोगिता (Utility) प्राप्त हो। लेकिन आमतौर पर आदमी क्या करते हैं ? कौन सी वस्तु आवश्यक (Necessaries) होती है, कौन आरामदायक (Comfort) और कौन सुलझुरें उड़ाने के लिए बनाई जाती है ? फिजूलखर्ची किसे कहते हैं ? उपभोग में इन सब प्रश्नों पर विचार होता है। उससे यह भी पता लगता है कि जो वस्तु किमी गरीब किसान के लिए आरामदायक (Comfort) और विलासपूर्ण (Luxuries) हो वही जमींदार के लिये आवश्यक हो सकती है। अपनी आमदनी का विचार न कर जो गरीब किसान रोज हलवा पूरी उड़ाता है उसे दुनिया भोग-विलासी कहती है। लेकिन जमींदार हलवा पूरी आवश्यक समझते हैं। उनके हिस्से से अभीरी ठाट के अन्दर रेडियों, बिजली, मोटर आदि स्थान रखते हैं। इस बात से रहन-रहन के दर्जे की समस्या उठती है। एक मजदूर किस तरह की जिन्दगी बसर करता है; पचास-साठ रुपये मासिक तनख्वाह पाने वाले क्लर्क साहब किस प्रकार रहते हैं; महीने में सौ दो गो रुपये पैदा कर लेने वाले दूकानदार तथा उद्योग-धंधे वाले कैसा जीवन व्यतीत करते हैं और हजार पाँच सौ रुपये माहवारी फटकारने वाले जमींदार, डाक्टर या कलकटर साहब किस मौज से रहते हैं, इन सब बातों का वर्गान व विवंचन रहन-सहन के दर्जे (Standard of living) के अन्तर्गत किया जाता है। जैसे-जैसे आय बढ़ती है वैसे ही वैसे मनुष्य अच्छी जिन्दगी बसर करने की कोशिश करता है और उसके रहन-सहन का दर्जा ऊपर की उठता जाता है। इतना ही नहीं किसी देश के रहने वाले को किस प्रकार रहना चाहिये, वहाँ तो सरकार की उपभोग (Consumption) के सम्बन्ध में किन किन बातों में देखल

देना चाहिये इत्यादि और भी बहुत सी बातें हमें उपभोग के अन्तर्गत ही माननी पड़ती हैं। अस्तु हम जान गए कि अर्थ-शास्त्र में उपभोग (Consumption) का मतलब किमी चीज के ऐसे उपभोग से होता है जिसमें किमी आदमी को सत'प हों। अर्थ-शास्त्र के इस भाग में यह विचार किया जाता है कि मनुष्य जों तरह तरह की वस्तुओं का उपभोग करता है कहीं तक उनके और देश के लिये लाभदायक है और किम हालत में वह हानिकर होता है। लगे हाथ इस बात का भी विचार किया-जाता है कि मनुष्य कैसा रहता है और उसका रहन सहन का दर्जा क्या होना चाहिये तथा उन दर्जों को बनाए रखने के लिए देश की सरकार को क्या करना चाहिये ?

विनिमय (Exchange)

लेकिन मॉचने की बात है कि आजकल कोई आदमी अपने आप मतलब की सारी वस्तुयें नहीं उत्पन्न करता। कोई केवल किसानी करता है तो कोई नौकरी, कोई मजदूर है तो कोई बढ़ई, कोई धोबी है तो कोई चमार। चमार के लिए यह बिलकुल जरूरी है कि जूने वेचने से आने वाले पैसों से आटा खरीदे और मजदूर मजदूरी की रकम से दाल-चावल मोल ले। ऐसा क्यों होता है ? वनिये के पास आटा इतनी अधिक मात्रा में रहता है कि वह आटे से पैसों को अधिक उपयोगी समझता है और हमारे चमार के पेट के लिए तो आटा जरूरी है ही। कहने का मतलब यह है कि दोनों ओर वालों को कुछ फायदा होता है तभी अदल-बदल होता है। और जब दो वस्तुओं का अदला-बदला होता है तो एक वस्तु के कुछ वजन के लिए थोड़ी सी दूसरी वस्तु दी जाती है। उदाहरण के लिए हो सकता है कि बीस सेर गेहूँ के लिए दस सेर चावल मिले। इस प्रकार अर्थ-शास्त्र (Economics) की दृष्टि से दो सेर गेहूँ का मूल्य हुआ एक सेर चावल। आजकल गाँवों को छोड़ कर शहरों में तो ऐसे उदाहरण बड़ी मुश्किल से मिलते हैं। अधिकतर ऐसे देकर हम तुम बाजार से तरकारी, मसाला आदि खरीद लाते हैं। अगर सेर भर गेहूँ का मूल्य दो आना है तो हम कहेंगे कि गेहूँ की कीमत दो आना सेर है। वस्तुओं को इस तरह से लेने-देने का नाम विनिमय है। पहले ज़माने में जब रुपये-पैसे का चलन नहीं था तो वस्तु से ही विनिमय होता था।

विनिमय के साथ प्रश्न उठता है कि विनिमय के दर के संबंध में किम प्रकार यह निश्चित किया जाय कि एक रुपये के बदले में कितने सेर बेचा जाय अथवा एक भिर्जई को बनाने के लिए रामू किमान गाजी दरजी को कितना चना देवे। इसके अलावा विनिमय के अध्ययन से हमें पता चलता है कि गाँव के किसान अथवा अन्य कारीगर अपने अपने माल को बाज़ार में लाकर किस प्रकार बेचते हैं ? गाँवों के हाट और मेले-तमाशे कितना महत्व रखते हैं।

वितरण (Distribution),

उपभोग करने वाले की दृष्टि से तो हमने देख लिया कि वह किस प्रकार विनिमय करके किसी वस्तु का उपभोग करता है। अब हमें देखना चाहिये कि बेचने वाला विक्री से आने वाले धन में से किस प्रकार अपना हिस्सा लेता है। क्या सारी रकम उसी की होती है अथवा कोई दूसरा भी उसमें साझीदार होता है। मान लीजिये किसान अपने अनाज को शहर वाले व्यापारी को दे देता है और वह उसे शहर के बाज़ार में जाकर बेचता है। बेचने से जो दाम आयेगा उसका किस प्रकार बँटवारा किया जाय। सोचने पर मालूम पड़ता है कि उत्पत्ति में जा शक्तियाँ मिल कर काम करती हैं उनके मालिक अनाज को बेचकर आने वाली रकम के हकदार हैं। इसलिये हमारी समस्या यह हो जाती है कि किस प्रकार से निपटारा किया जाय कि भूमि-मालिक को कितना लगान, मजदूर को कितनी मजदूरी व महाजन को कितना सद मिले। परन्तु यहाँ पर हम एक बात भूल जाते हैं। उसे साफ करने के लिए थोड़ी देर के लिए मिल-मालिक को ले लीजिए। वह मिल का बीमा कराए रहता है और हर साल बीमे की रकम देता है। इसके अलावा हर साल उसकी मशीनें कुछ न कुछ घिस जाती हैं। उसके लिए उसे आने वाली रकम से कुछ निकालकर अलग कर लेना चाहिए। इन सब को काट कर जो बचता है हर ज़मीन के मालिक, मेहनत करने वाले मजदूर, धन कमाने वाले महाजन प्रबन्ध करता व साहस प्रदान करने वाले मनुष्य के बीच बाँटा जाना चाहिये। परन्तु यह कोई जरूरी नहीं है कि पाँचों कार्य भिन्न-भिन्न व्यक्ति करें। हम जानते हैं कि मिल मालिक रुपया भी लगाता है, प्रबन्ध भी करता है और साहस भी दिखाता है। इसी तरह किसान अधिकतर मेहनत भी करता है और

अनाज पैदा करने के लिये पूँजी भी लगता है। अब प्रश्न यह उठता है कि इन्डोपाँचो के बीच किम हिसाबसे रकम का वँटवारा हो। इसका उत्तर हमें अर्थ-शास्त्र के वितरण विभाग से मिलता है।

यही नहीं, हम भास्त्र में यह भी विचार किया जाता है कि कहीं भूमि वाला इतना अधिक भोग तो नहीं ले लेता कि मजदूरों के पास बहुत कम रह जाता है और उनकी हालत खराब हो जाये। इसके अलावा हमें यह भी मालूम होता है कि ज़मींदारों और किसानों के बीच में कैसा सम्बन्ध होना चाहिए। धन का वितरण इस प्रकार न होना चाहिये कि ज़मींदार जो गिनती में किसानों से बहुत हैं, गुलज़रें उड़ावें और मर मर कर अनाज पैदा करने वाले किसान भूखों और बेगार भुगतें। किसानों के पास कितना धन पहुँचना चाहिए। क्या उनके लिये इतनी रकम काफी होगी जिससे उनके कुटुम्ब का काम चलजावे ! कहा जा सकता है कि देश की उन्नति के लिये यह जरूरी है कि हर एक देशवासी उन्नति करे अर्थात् प्रत्येक आदमी इतना धन पावे जिससे वह दूसरों को कम से कम हानि पहुँचाते हुए अधिक से अधिक लाभ उठावे।

सागँश

अस्तु, हम जान गये कि अर्थ-शास्त्र उस विद्या का नाम है जो मिलजुल कर रहने वाले मनुष्य के उन प्रयत्नों के बारे में विचार करता है जिनसे वे अपनी अपनी इच्छाओं और आवश्यकताओं को पूरा करते और अर्थ (अर्थात् धन) या अन्य सामग्रियाँ उत्पन्न करते हैं। आदमियों के धन सम्बन्धी उपायों का पूर्ण रूप से विचार करने के अलावा अर्थ शास्त्र में देशों की आर्थिक दशा और उन्नति का भी ध्यान रखा जाता है। अर्थ-शास्त्र का अध्ययन अधिकतर उत्पत्ति, उपभोग, विनिमय और वितरण नामक चार मुख्य भागों में बाँट कर किया जाता है।

अर्थ-शास्त्र के अध्ययन से लाभ

अर्थ-शास्त्र के अध्ययन से हमें बहुत लाभ होता है। उसके अध्ययन से हम जान सकते हैं कि हमारा देश जिसका प्रकृति ने भरा पूरा बनाया है—यहाँ की मिट्टी जलवायु पैदावार के लिए अच्छी है। यहाँ की खानों में खनि पदार्थ भरा हैं। जंगलों में कीमती लकड़ी है। नदियों के जल से विजली

हो सकती है लेकिन फिर भी हमारा देश गरीब क्यों है ? उनका गरीबी के क्या कारण हैं । यहाँ के अधिकांश निवासियों को भरपेट भोजन भी नहीं मिलता । पहनने को कपड़े नहीं मिलते, रहने के लिये मकान नहीं मिलते और बीमारी में उनका इलाज नहीं हो पाता । ऐसा क्यों है ? इस गरीबी को कैसे दूर किया जा सकता है ? किस प्रकार हमारा देश धनी बन सकता है ? जिससे हमारे देशवासी सुखी जीवन व्यतीत कर सकें । अर्थ-शास्त्र के अध्ययन से हमें यह बहुत बड़ा लाभ होता है ।

अभ्यास के प्रश्न

१--अर्थ शास्त्र क्या है ? इसके अन्तर्गत किन बातों का अध्ययन किया जाता है ?

२--अर्थ-शास्त्र की परिभाषा लिखिए । व्यावहारिक जीवन में इसके अध्ययन से क्या लाभ है ?

३--आपके गाँव में या मुहल्ले में कितने अमीर और गरीब कुटुम्ब रहते हैं ?

४--अपने किसी परिचित अमीर मित्र से यह जानने का प्रयत्न कीजिये कि भूतकाल में उनका कुटुम्ब कभी गरीब से अमीर किस प्रकार हुआ ?

५--अपने गाँव या मुहल्ले के भिन्न भिन्न पेशे के ऐसे व्यक्तियों की सूची तैयार कीजिये जो परिश्रम करके अपनी जीविका प्राप्त करते हैं । इसी सूची में उनका पेशा भी बताइये ।

७--ऐसी २० वस्तुओं की सूची तैयार कीजिये जिसका उपयोग आपके मकान में प्रति सप्ताह होता है ।

८--आपके गाँव के साप्ताहिक हाट में अथवा आपके मुहल्ले के बाजार में जो वस्तुएँ बिकती हैं उनकी सक्षिप्त सूची तैयार कीजिये ।

९--किसी गाँव में जाकर यह जानने का प्रयत्न कीजिये कि फसल के तैयार होने पर किसी एक किसान को वढ़ई, लाहार, नाऊ इत्यादि को कितना अनाज देना पड़ा ।

१०--अपने कुटुम्ब की एक मास की आमदनी और खर्च का पूरा हिसाब रखिये और यह बतलाइये कि भोजन, कपड़ा, किराया, शिक्षा, दान, धर्म इत्यादि में कितनी रकम उन मास में खर्च हुई ?

११—तुम्हारे गाँव में किसी को रुपये उधार लने की जरूरत पड़ती है तो रुपया किससे उधार लिया जाता है और किस दर पर सौदा दिया जाता है ?

१२—तुम्हारे गाँव में जमींदार और किसानों का संबंध कैसा है ? क्या किसान जमींदार से प्रेम करते हैं ? यदि प्रेम नहीं करते तो उनके प्रधान कारण क्या हैं ?

१३—उपयोग की परिभाषा लिखिए और उसका महत्व समझाइए !

दूसरा अध्याय

परिभाषाएँ (Definitions,

धन तथा सम्पत्ति (Wealth)

पिछले अध्याय में हम बतला आए हैं कि अर्थ-शास्त्र में धन संबंधी बातों का विवेचन रहता है। अब हम धन का अर्थ समझने का प्रयत्न करते हैं। संसार में सर्वत्र रुपये की ही माया है। बिना रुपये के किसी का गुजर नहीं हो सकता। तुम शहर में जरूर गये होंगे। वहाँ तुमने देखा होगा कि लोग अच्छे अच्छे कपड़े पहन कर घूम रहे हैं। फिटन, टमटम, मोटर, साइकिल दौड़ रही हैं। बड़ी बड़ी दुकानों और कांठियों में लाखों रुपये का माल भरा हुआ है। अमीर आदमियों के ऊँचे ऊँचे मकान बने हुए हैं। अमीर कौन कहलाता है ? वह, जिसके पास खूब धन-दौलत होती है, जो बड़ी बड़ियाँ शानदार कोठी में रहता है, तथा जिसके यहाँ बहुत से नौकर चाकर हाँते हैं। लेकिन क्या अमीर आदमी को तमाम दौलत रूपए के रूप में ही रहती है ? उत्तर है नहीं। किसी मनुष्य के धन से उसका रुपया, जेवर, मकान, जमीन इत्यादि कीमती वस्तुओं का बोध होता है और वही मनुष्य धनवान कहलाता है जिसके पास ये सब चीजें अधिक तादाद में होती हैं। लेकिन अर्थ-शास्त्र केवल इन चीजों को ही धन नहीं कहते। अर्थ-शास्त्र में हम उन वस्तुओं को धन के नाम से पुकारते हैं जिनको हम काम में ला सकते हैं और जो जा सकती हैं अर्थात् जो विनमय साध्य हैं। उदाहरण के लिए

ले लो इसको पीस कर हम आटे को रोटियाँ पका सकते हैं और गन्तियों को खाने से हमारी भूख मिट जायगी। अतएव गेहूँ उपयोगी है। गेहूँ को हम बेच भी सकते हैं। जरूरत होने पर हम गेहूँ देकर धोती का जाड़ा खरद सकते हैं। रुपए के बदले में हम गेहूँ दे सकते हैं और धोती के बदले में रुपया। अतएव गेहूँ विनिमय साध्य वस्तु है इसलिए अर्थशास्त्र के हिसाब से गेहूँ भी धन (Wealth) है। इस बात को और साफ करने के लिए हवा को ले लो। यह सबको मालूम है कि वायु हमारे लिए कितनी जरूरी है। इसके बिना हम एक घंटा भी नहीं जी सकते। इसलिए वायु की उपयोगिता (Utility) बहुत ज्यादा है। परन्तु क्या यह विनिमय साध्य है? क्या आप वायु के बदले कोई वस्तु ले सकते हैं? वायु हर जगह मौजूद रहती है। इसलिए किसी को मोल लेने की जरूरत नहीं पड़ती। यह ईश्वर की देन है और हम इसे धन में नहीं गिन सकते। इसी तरह यदि आप नदी या तालाब से दो चार घड़ा पानी भर कर किसी वस्तु से बदला करना चाहेंगे तो कोई बदला नहीं करेगा। क्योंकि नदी और तालाब का पानी आसानी से अधिक मात्रा में प्राप्त किया जा सकता है। जिस व्यक्ति को जितने पानी की जरूरत होती है उतना पानी वह आसानी से नदी से ले लेता है। इसलिए पानी हमारे लिए उपयोगी होते हुए भी धन नहीं कहला सकता। परन्तु यही जल राजपूताना के रेगिस्तान में धन कहलाने लगेगा, क्योंकि जल की कमी के कारण वहाँ पर तो सब कोई इसे मोल लेने के लिए तैयार हो जायँगे। गाय, बैल, मकान, लकड़ी, कंड़ा, कोयला, पत्थर, पेड़, फल, फूल आदि सब वस्तुएँ सम्पत्ति या धन के स्वरूप हैं। और जब ऐसी चीज सम्पत्ति हो सकती है तो इस हिसाब से हम कूड़ा, करकट, गोबर, राख, हड्डी आदि तक की गिनती सम्पत्ति में कर सकते हैं।

केवल रुपया-पैसा ही (Money) धन (Wealth) नहीं

हम ऊपर कह आए हैं कि कुछ लोगों के हिसाब से रुपया-पैसा व सोना-चाँदी का ही नाम सम्पत्ति है। यह बिल्कुल गलत है। हिन्दुस्तान में अब भी कितने गाँव मिल जाते हैं जहाँ पर लोगों के पास रुपए नहीं हैं, लेकिन क्या उन गाँवों में अमीर और गरीब नहीं बसते? तुम पूछ सकते हो कि फिर रुपया-पैसा आया कैसे? इसकी क्यों जरूरत पड़ी? असली बात यह है कि

धन रूप तसे क सम्पत्ति की अदला-बदली करने में बड़ा भंभट करना पड़ता है। धन लो तुम्हारे पास चना है और तुम्हें मिजई की जरूरत है। अब तुम्हें किसी ऐसे आदमी का तलाश करना पड़ेगा जिसके पास मिजई हो। ख्याल करो कि ऐसा मनुष्य मिल-जाया लेकिन वह मिजई के बदले में जूता मांगता है। अब दोनों आदमियों को एक तीसरे आदमी को ढूँढ़ना पड़ेगा जिसके पास जूता हो और जो जूते के बदले में चना लेना चाहता हो। इन्हीं सब भंभटों को दूर करने के लिए रुपये-पैसे का रिवाज चला है। रुपये-पैसे के चलन से हम जान सकते हैं कि राम और श्याम में कौन अमीर है। हम क्या करेंगे? हम इस बात का पता लगावेगे कि राम का घर-बार, खेत-पात, कपड़ा-लत्ता आदि का क्या दाम है मान लो सब मिला कर चार हजार रुपया हुआ और श्याम के पास इस तरह से छह हजार का माल निकला तो हम कहेंगे कि श्याम राम से अमीर है। अस्तु, यह तै हो गया कि कठिनाइयों को दूर करने के लिये ही रुपए पैसे चलाए गए और केवल यही धन स्वरूप नहीं है।

पर इस रुपए पैसे द्वारा हम कोई वस्तु कब खरीदते हैं? तुम कब गेहूँ खरीदते हो अथवा कब तुम्हारे पिता गाँव के चमार से जूता मोल लेते हैं? उस समय जब कि उन्हें जूतों की जरूरत मालूम पड़ती है। वह जूते के दाम क्यों देते हैं? क्योंकि जूता हवा या जल की तरह ईश्वर की देन होकर काफी परिमाण में आसानी से नहीं मिल सकता। अर्थात् जूतों की संख्या परिमित है। इसके अलावा एक बात और है। जूता बनाने के लिए चमार को मेहनत करनी पड़ती है। उस मेहनत के बदले में कुछ देना जरूरी है। इसलिए वह दाम देकर चमार से जूता मोल ले आते हैं। अब तुम जान गए कि अर्थ-शास्त्र में सम्पत्ति किसे कहते हैं। प्रत्येक वस्तु जो उपयोगी होती है, जिसकी संख्या परिमित होती हो व जिसके प्राप्त करने के लिए श्रम करने की आवश्यकता पड़ती है अर्थात् जो वस्तु विनिमय साध्य है, उस वस्तु की गणना हम सम्पत्ति में करते हैं।

सम्पत्ति-वृद्धि (Increase of wealth)

यह तो तुम जान गए कि सम्पत्ति किसे कहते हैं पर क्या तुम बता सकते हो कि सम्पत्ति कैसे इकट्ठी की जा सकती है। अर्थात् किस प्रकार से एक

मनुष्य अमीर बन सकता है। यह तो हमको मालूम है कि अमीर के पास वस्तुएँ अधिक मात्रा में होती हैं। अब हमको देखना चाहिए कि वह कैसे अमीर बना होगा या हम तुम कैसे उसकी तरह धन इकट्ठा कर सकते हैं लोग तरह तरह के तरीकों से धन पैदा करते हैं। एक आदमी दिन भर परिश्रम करके जंगल की घास या लकड़ी लाता है, दूसरा किल्ली के पास अथवा परिवार या संस्था में नौकरी करता है, तीसरा दुकानदारी करता है, चौथा किसान है। ये सब अपना काम अकसर इसीलिए तो करते हैं कि इन्हें धन पैदा करना रहता है। परन्तु हम जानते हैं कि धन की उत्पत्ति के लिए मुख्य शक्तियाँ हैं—भूमि, मेहनत और स्वयं धन भी। मान लो तुम्हारे पास दस बीघा खेत है और तुम उससे अधिक से अधिक अनाज पैदा कर रहे हो। यदि तुमको और अधिक माल की जरूरत है तो इसका उपाय यही है कि तुम दस की जगह बारह पंद्रह बीघे जमीन में खेती करो। उत्पत्ति बढ़ाने का दूसरा साधन है श्रम बढ़ाना। अगर खेत में काम करने वाले आठों मजदूर पूरी मेहनत के साथ काम कर रहे हैं तो यह जरूरी है कि उनकी संख्या बढ़ा कर दस या बारह कर दी जाय। धन या पूँजी का भी यही हाल है। जब आप धनोत्पत्ति की दो शक्तियों को बढ़ा रहे हैं तो आपको तीसरे को भी जरूर ही बढ़ाना पड़ेगा अन्यथा आपका काम नहीं बनेगा। अतएव धनी व समृद्धिशाली बनने के लिए यह जरूरी है कि आप अधिक क्षेत्र में काम करें, अधिक मेहनत लगावें व अधिक पूँजी का उपयोग करें।

सम्पत्ति और सुख (Wealth and welfare)

वस्तु के उपभोग से संतोष होता है और सुख की प्राप्ति होती है। गरीब मनुष्य के पास वस्तुओं की कमी रहती है, उसके पास सुख प्राप्त करने के साधनों का अभाव सा रहता है। गरीब को अधिक सुखी बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उसके धन का परिमाण बढ़ाया जाय, उसकी आमदनी में वृद्धि की जाय। इसी प्रकार आर्थिक उन्नति की जा सकती है। परन्तु धनी बनने और सुखी बनने में महान अंतर है। यह बात ठीक है कि धनी मनुष्य जो चाहे सो कर सकता है। वह मोटर खरीद सकता है। दो चार लखैत और अन्य व्यक्तियों को नौकर रख सकता है। अच्छा अच्छा खाना खा सकता है। परन्तु अमीर आदमी बदमाश और बदचलन भी हो सकते हैं। बुरे

कामों में रुपया भी लुटा सकते हैं। समृद्धिशाली और सुखी बनने के लिए यह जानना जरूरी है कि रुपया किस प्रकार खर्च किया जाता है। सुखी जीवन बिताने के लिये थोड़ी से सादृगी अखितयार करनी पड़ेगी। यही नहीं ज्ञान की भी जरूरत पड़ता है। क्या हुआ यदि आपको यकायक एक लाख डबों की लाटरी मिल गई। यदि आप मूर्ख हैं, यदि आपके लिये काला अक्षर मुँस बराबर है तो आप बड़ी जल्दी सब रुपया उड़ा देंगे। दूसरी ओर अगर आप पढ़े-लिखे हैं, और आपको अर्थशास्त्र की बातें मालूम हैं तो आप उस धन का उपयोग इस प्रकार से कर सकते हैं कि जिससे आपकी और देश की भी दशा सुधरने लगे। यह भी याद रखना चाहिए कि धन होते हुए मनुष्य दुखी हो सकता है। रुपए के लोभ में मरने वाला महाजन सदैव चिंताग्रस्त रहेगा। धन रहते हुए भी कुचलन अथवा असंतुलित व अवांछनीय भोजन करने वाला व्यक्ति रोगग्रस्त और दुखी होगा। जिन परिवारों के बालक बालिकाएँ अनुचित लालन पालन के कारण बिगड़ जाते हैं उनमें भी धन रहते हुए माता पिता दुखी रह सकते हैं। कृतिम जीवन व्यतीत करनेवाले तथा इच्छाओं के गुलाम व्यक्ति भी दुखी ही रहते हैं।

उपयोगिता (Utility)

अब प्रश्न उठता है कि आपको किम प्रकार रुपया खर्च करना चाहिये ? आपको कौन-कौन सी वस्तुएँ खरीदनी चाहिये और कितनी ? इससे भी मुख्य सवाल है कि आप क्यों किसी चीज को खरीदते हैं ? क्योंकि आपको उसकी जरूरत रहती है, क्योंकि वह चीज आपके लिए उपयोगी है। मान लीजिए आप अपने गाँव के हाट में गए। वहाँ पर बहुत सी चीज़ें बिकने के लिए आती हैं। कोई कपड़ा खरीदता है, कोई गेहूँ-चना खरीदता है, कोई कुछ खरीदता है तो कोई कुछ। आप भी कोई वस्तु पसन्द करके खरीद लेते हैं। परन्तु क्या आप बता सकते हैं कि आपने उसको क्यों खरीदा ? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए यह जानना जरूरी है कि किसी वस्तु की उपयोगिता क्या होती है ? “कहा जाता है कि उपयोगिता किसी वस्तु का वह गुण है जिससे उस वस्तु की चाह होती है। दूसरे शब्दों में मनुष्य को किसी वस्तु के उपयोग से होने वाली ह्रास का नाम उपयोगिता है।” इसका सम्बन्ध मन से होता है। प्रत्येक मनुष्य की इच्छा या रुचि में कुछ न कुछ

फर्क जरूर रहता है। इसीलिए किसी एक चीज की उपयोगिता प्रत्येक आदम के लिए बराबर नहीं होती और हम उपयोगिता वर्णन किसी नाप या तौल से नहीं कर सकते। लोग किसी वस्तु का मूल्य तय करने में उस वस्तु की उपयोगिता का विचार जरूर करते हैं। मान लीजिए रामू किसान के सामने हल, फावड़ा, खुरपी आदि रखी हैं और उससे कहा गया कि वह कुछ मोल ले ले। रामू सोचेगा कि मेरे पास इतना रुपया तो है नहीं कि दो बैल और खरीदूँ। इसलिये हल को मोल लेना ठीक नहीं। फावड़ा भी रामू के पास कई हैं इसलिये वह फावड़े की भी जरूरत नहीं समझता। लेकिन उसके पास खुरपी नहीं है। और खेत से घास-फूस उखाड़ कर फेकने के लिये उसे खुरपी की जरूरत है। अतएव वह खुरपी को माल ले लेगा।

इसी तरह हम उत्पत्ति में भी करते हैं। हम किसी वस्तु विशेष की उत्पन्न या नष्ट नहीं कर सकते। हम केवल उपयोगिता को ही उत्पन्न करते हैं। उदाहरण के लिये हल को ले लीजिए। बढ़ई अपने औजारों की मदद से लकड़ी को काट-छाँट कर उसे हल का रूप देता है। ऐसा करने से लकड़ी की उपयोगिता बढ़ गई। काम आते आते कई वर्षों के बाद हल टूट जाता है। उसकी उपयोगिता जाती रहती है। लकड़ी पड़ी रहती है पर हल काम का नहीं रहता है।

सीमान्त उपयोगिता (Marginal Utility)

हम ऊपर कह आये हैं कि किसी वस्तु की उपयोगिता भिन्न-भिन्न मनुष्यों के लिए भिन्न भिन्न होती है। अब हम यह बतलाना चाहते हैं कि उसी मनुष्य के लिये एक वस्तु की उपयोगिता एक दशा में कुछ हो सकती है तो दूसरी दशा में कुछ और। उदाहरण के लिये मान लो तुमको खून जोर से भूख लग रही है। उस समय रोटी तुम्हारे लिए बहुत बड़ी उपयोगिता रखती है। पर एक रोटी खा लेने के बाद तुम्हारी भूख कुछ कम हो जाती है और दूसरी रोटी की उपयोगिता उतनी नहीं रह जाती जितनी कि पहली रोटी की थी। तीसरी रोटी की उपयोगिता दूसरी से भी कम होती है। अब अगर तीन रोटी में तुम्हारा पेट भर चला हो तो तुम सोचोगे कि चौथी रोटी ली जाय या नहीं। मान लीथा तुमने चौथी रोटी ले ली। इसके खाने से

महाराज पेट बिल्कुल भर गया। अब अगर कोई तुम्हारे आगे दो चार रोटियाँ (मीन) डाल दे तो तुम्हारे लिए उनका मूल्य नहीं के बराबर है। चूँकि पहली चार रोटियों से तुम्हारे पेट को पूरा सतोष मिल चुका इसलिए तुम पाँचवीं व छठी रोटि को बिल्कुल नहीं खाओगे। उपयोगिता के घटने का एक बड़ा अच्छा उदाहरण मिलता है जब कोई मशरूमा का चौबे भोजन करने बैठता है। जब वह व्याकर उठने लगता है तो आप कहते हैं कि चौबे जी एक लड्डू और लीजिए। चौबे महाराज सिर हिला देते हैं। इस पर आपका दोस्त हरी कह उठता है कि चौबे जी एक लड्डू खा लो तो एक आना पैसा देंगे। पैसे के लोभ में चौबे लड्डू लेकर खा जाते हैं। जब वह उठने लगते हैं तो अबकी बार आपका दूसरा मित्र श्याम कहना है कि महाराज एक लड्डू और ले लो तो मैं आपको एक दुआँ दूँ। महाराज राजी हो जाते हैं। इसी प्रकार तीसरे लड्डू पर चौबे जी को चार आने और चौथे पर आठ आने दिए जाते हैं। पाँचवें लड्डू के लिए एक रुपया इनाम रक्खा जाता है लेकिन इस बार पेट जवाब दे देता है। चौबे जी ने अब तक जो चार लड्डू खाये उसकी उपयोगिता पहले खाए भोजन से कहीं कम थी। परन्तु उनकी उपयोगिता में जो कमी होती वह पैसे की उपयोगिता के कारण पूरी हो जाती थी और चौबे महाराज का पेट किसी तरह डूँम-डास कर लड्डू को स्थान दे देता था। लेकिन अब पेट एक दम भर गया। और चौबे महाराज उसे बिल्कुल नहीं खा सकते। इसलिए एक छोड़ अगर उन्हें दस रुपया भी दिया जाता तो वे उस पाँचवे लड्डू को न खाएँगे।

अर्थशास्त्र के हिसाब से ऊपर दिये गये उदाहरण में रोटि खाने वाले के लिए रोटियों की सीमान्त उपयोगिता चौथी रोटि की उपयोगिता के बराबर है। इसी प्रकार यदि मनोहर के पास बीस आम हों तो आमों की सीमान्त उपयोगिता बीसवें आम की उपयोगिता के बराबर होगी। परन्तु ध्यान देने की बात है कि आमों की सीमान्त उपयोगिता (Marginal utility) और कुल उपयोगिता में फर्क है। कुल उपयोगिता तो बीसों आमों की उपयोगिता के जोड़ के बराबर है, लेकिन सीमान्त उपयोगिता केवल अन्तिम आम की उपयोगिता के बराबर होती है। अगर मनोहर के पास एक ही आम होता तो कुल उपयोगिता सीमान्त उपयोगिता के बराबर हो जाती। परन्तु

जैसे जैसे वस्तु की संख्या या परिमाण बढ़ता जायगा वैसे ही उनकी सीमा तथा कुल उपयोगिता के बीच का फर्क भी बढ़ता जायगा ।

मूल्य (Value) -

मान लो बाजार में तुमने गेहूँ और चना दोनों बिकते हुए देखे । और तुम दोनों को खरीदना चाहते हो । अब अगर तुम्हारे हिसाब से गेहूँ की उपयोगिता चने से दुगुनी है तो तुम एक रुपये में जितना गेहूँ लोगे उसी रुपये में उससे दुगुना चना माँगो गे । उदाहरण के लिये अगर तुम एक रुपये में दस सेर गेहूँ लोगे तो बीस सेर चना माँगागे । यदि कहीं तुम गेहूँ बेचने वाले होते और श्याम चने वाला तो तुम श्याम से फी सेर भर गेहूँ की जगह दो सेर चने माँगते । और यदि श्याम भी एक सेर गेहूँ के बदले दो सेर चना देने को राजी हो जाय तो दो सेर चना का मूल्य एक सेर गेहूँ समझा जायगा । इसी तरह अगर तुम अपनी गाय को बेच बकरियाँ खरीदना चाहो और अगर तुम्हारी निगाह में गाय की उपयोगिता बकरियों से तिगुनी हो तो तुम एक गाय के बदले में तीन बकरियाँ माँगोगे । जब किसी वस्तु की किसी अन्य वस्तु से बदला-बदली की जाती है तब पहली वस्तु के बदले में दूसरी वस्तु कितनी दी जाय इसका निश्चय उपयोगिता द्वारा ही होता है । ऐसी हालत में अर्थशास्त्र के अनुसार एक गाय का मूल्य तीन बकरियाँ हुईं और एक सेर गेहूँ का मूल्य हुआ दो सेर चना ।

मूल्य (Value) का जो अर्थ ऊपर दिया गया है उससे क्या नतीजा निकलता है ? इसके मतलब होते हैं कि यदि एक चीज का मूल्य बढ़ जायगा तो दूसरी का कम हो जायगा । मान लीजिए कि पहले दो आम का मूल्य होता था एक खरबूजा । अब यदि किसी तरह आम की फसल आधी हो तो आम का मूल्य दुगुना हो जायगा यानी दो आम के बदले दो खरबूजे मिलेंगे या एक आम के बदले एक खरबूजा मिलेगा ! आम का मूल्य तो दुगुना हो गया पर खरबूजे के मूल्य का क्या हाल है जहाँ पहले एक खरबूजे के लिए दो आम मिलते थे वहाँ अब एक ही आम मिलता है अर्थात् खरबूजे का मूल्य आधा हो गया । एक बात और; यदि कहीं आम की फसल न बिगड़ती पर खरबूजों की संख्या दुगुनी हो जाती तब भी वही

रहित होती जो लोगों के आधे रह जाने पर हुई थी। अर्थात् एक खरबूजे के मूल्य एक ही आम मिलता।

कीमत (Price)

पुराने जमाने में जब रुपये पैसे का चलन नहीं था तब एक वस्तु दूसरी वस्तु से बदली जाती थी। उस समय मूल्य का बोलबाला था। परन्तु उसमें कठिनाई होती थी। अगर सुमेर को किसी वस्तु की जरूरत है तो उसे ऐसे मनुष्य को ढूँढना पड़ता था जिसके पास वह चीज हो जिसकी सुमेर को आवश्यकता है। इतना ही नहीं उस मनुष्य को ऐसी वस्तु की आवश्यकता होनी चाहिये जो सुमेर के पास है। इसके अलावा वह भी भगड़ा रहता कि हर एक अपनी चीजें बदलने को तैयार हो। मान लो सुमेर को एक कम्बल की जरूरत थी और कुवेर जिसके पास कम्बल है सुमेर का गर्म कोट लेना चाहता है। लेकिन अगर सुमेर कोट देने को राजी नहीं हो तो बदला-वदली होना असंभव है। जब से रुपये पैसे का उपयोग होने लगा तब से ये सब बाधाएँ हट गईं। अगर तुम अपना सेर भर धी बेच कर चार सेर शक्कर खरीदना चाहते हो, तो केवल इस बात की जरूरत है कि तुम किसी के हाथ अपने धी को एक रुपये में बेच दो। और उस रुपये की जाकर शक्कर खरीद लो। ऐसी हालत में सेर भर धी का मूल्य हुआ एक रुपया और सेर भर शक्कर के चार आने। जब किसी वस्तु की इकाई का मूल्य इस प्रकार रुपये पैसों में लगाया जाता है, तब वह मूल्य वस्तु की इकाई की कीमत कहलाता है। अगर हम एक गाय साठ रुपये में बेचते हैं तो गाय की कीमत हुई साठ रुपया। लेकिन अगर हम उसको तीन वकरियों के एवज में बेचते हैं तो तीनों वकरियाँ कीमत न कहला कर गाय का मूल्य कहलाती हैं। तो मोटी बात यह है कि किसी चीज के बदले में जो चीज मिले वह उसका मूल्य है और उसके बदले में जो रुपया मिला वह उसकी कीमत है।

आय (Income)

अब तक हम और किसी वस्तु की उपयोगिता, मूल्य और कीमत के बारे में बातें कर रहे थे। मान लो मुरली अनाज की दुकान रखता है। वह हर समय रुपये के बदले गेहूँ, चना, मटर, जौ, बाजरा, अरहर मूँग, चावल

आदि अन्न बेचा करता है। बेचने से जो रुपये आते हैं उन्हें वह एक कोष पर लिखता जाता है। महीने के आखीर में जोड़ लगाने से उसे मालूम पड़ जाता है कि महीने भर में उसे कितने रुपये मिले। इस आमदनी के योग से अगर हम वह रकम निकालें जिसकी कि मुरली ने अनाज खरीदा था तो बची हुई रकम मुरली की आय कहलायेगी। इसी प्रकार क्लर्क साहब महीने भर काम करने के बाद पहली तारीख को अपना वेतन लेकर घर जाते हैं। परन्तु यह वेतन है क्या ? यह है क्लर्क साहब की महीने भर के काम की कीमत और अर्थ-शास्त्र में ऐसी कीमत को आय कहते हैं। मजदूरों की अपनी मजदूरी रोजाना, हर हफ्ते, पन्ध्रवें दिन अर्थवा महीने पर मिलती है। महीने भर में उन्हें कुल जितना रुपया मिलता है वही उनकी माहवारी आय होती है। आय रोजाना से लेकर सालाना तक हो सकती है। अर्थशास्त्र में आय से उस रकम का बांध होता है जो कोई मनुष्य किसी निश्चित समय में कमाता है। समय के किस परिमाण की आय निकाली जाय यह आय निकालने वाले की इच्छा पर निर्भर रहता है। अधिकतर आय से लोगों का मतलब माहवारी आय से रहता है। लेकिन कहीं कहीं सालाना आय रिपोर्ट करनी पड़ती है। तुम्हें मालूम है कि भारत की सरकार तुम्हारी आय के ऊपर आयकर या इन्कमटैक्स लगाती है। इस आय के निकालने में मकान के किराये और बैंक में जमा सृद्ध से लेकर कारबार का मुनाफा तक इस आय में जोड़ लिये जाते हैं।

अभ्यास के प्रश्न

१—‘विनिमय साध्य’ वस्तु किसे कहते हैं ? उदाहरणों सहित समझाइये। क्या ज्ञान विनिमय साध्य है ?

२—निम्नलिखित वस्तुएँ किन दशाओं में धन समझी जावेंगी ? गंगा-जल, यजमानी, रेल का टिकट, घर का कूड़ा-कचरा, कागजी मुद्रा, नोट, मनुष्य का शरीर, अस्पताल सार्वजनिक पुस्तकालय।

३—कुछ ऐसी वस्तुओं का उदाहरण दीजिए जिनकी उपयोगिता किसी मनुष्य के लिए समय के साथ बदलती जाती है।

४—निम्नलिखित वाक्यों की गलतियों को दुरुस्त कीजिये :—

(अ) २० सेर गेहूँ की कीमत २) है।

(ग) पाँच सेर चावल की कीमत दस सेर गेहूँ है ।

(घ) ५ गायों की कीमत १२५ रुपया है ।

(ङ) एक सेर चना का मूल्य ६ पैसे हैं ।

(क) एक गंज कपड़े का मूल्य तीन आना है ।

५—अपने कुटुम्ब की आमदनी का एक मास का हिसाब लिखिये और यह बतलाइये कि किन-किन जरियों से कितनी आमदनी प्राप्त हुई ?

६—यदि कोई मनुष्य अपने निजी मकान में रहता है तो उसको अपने मकान से वर्ष भर में क्या आमदनी होती है ?

७—आर्थिक उन्नति के क्या माधन हैं ? गरीब लोग अधिक सुखी कैसे हो सकते हैं ?

८—धनी लोग भी कभी दुखी पाये जाते हैं । इसके क्या कारण हैं ?

९—सादे जीवन का मुख की वृद्धि से क्या सम्बन्ध है ?

तीसरा अध्याय

उत्पत्ति (Production)

उपयोगिता-वृद्धि (Increase in utility)

प्रत्येक मनुष्य को भोजन, कपड़ा आदि की जरूरत पड़ती है । इनके बिना उसका काम ही नहीं चल सकता । अपनी इन आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उसे तरह-तरह की वस्तुओं को बनाना या तैयार करना पड़ता है । मिल-जुल कर रहने वाले किसी भी मनुष्य को देख लो । वह हर समय हम बात का उपाय करता है कि उसे किसी प्रकार धन मिले । धन की उत्पत्ति करने के लिये आदमी दिन भर मेहनत करके जंगल से लकड़ी या घास काट कर लाता है, दूसरा किसी के यहाँ नौकरी करता है, तीसरा दूकानदार है तो चौथा डाक्टर । यह तो हम आपको पहले ही अध्याय में बता चुके हैं कि अर्थशास्त्र में उत्पत्ति का क्या मतलब होता है । और यह भी कह चुके हैं कि उत्पत्ति किस प्रकार की जा सकती है । कोई वस्तु उत्पन्न करने के मतलब होते हैं किसी प्रकार की उपयोगिता को बढ़ाना । कुम्हार मिट्टी के बर्तन बनाकर मिट्टी की उपयोगिता में वृद्धि करता है ? वहाँ लकड़ी को काट छाँट कर मेज कुर्सी बनाता है । ऐसे करने से लकड़ी की और उपयोगिता

बढ़ जाती है। इसी प्रकार के रूप परिवर्तन द्वारा चना, गेहूँ आदि अनाज खेतों से पैदा किये जाते हैं। खेतों बारी में अन्न पैदा करने का काम तो स्वयं प्रकृति करती है। मनुष्य तो केवल बीज, खाद, पानी वगैरह का इंतजाम करता है। परन्तु स्थान और अधिकार बदल देने से भी किसी की उपयोगिता बढ़ाई जा सकती है। जहाँ जो सामान अधिक मात्रा में होता है वहाँ से जब उन्हें उभ जगहों में ले जाया जाता है जहाँ उस सामान की मात्रा कम है, तो उसकी उपयोगिता बढ़ जाती है। लोहे, कोयले या पत्थर को अपने खान के पास या लकड़ियों की जंगल में उपयोगिता बहुत कम होती है। लेकिन जब ये ही चीजें रेल या मोटर द्वारा बाजार में पहुँचा दी जाती हैं तो इनकी उपयोगिता बढ़ जाती है। इसी प्रकार अन्न, साग, फलों को खेतों या बागों से बाजार में पहुँचा कर उनकी उपयोगिता बढ़ाई जा रही है। जब हम किसानों से अनाज मोल लेकर बाजार में किसी घर-गृहस्थी वाले आदमी के हाथ उसे बेच देते हैं तब भी उपयोगिता बढ़ती है। क्योंकि किसान के अधिकार में तो इतना अनाज है कि उसके लिये उसकी उपयोगिता कम है लेकिन घर-गृहस्थी वाला आदमी खाने के लिये अनाज चाहता है और इसलिए उसके अधिकार में पहुँच जाने से अन्न अधिक उपयोगी बन जाता है। उसकी उपयोगिता बढ़ जाती है। उपयोगिता वृद्धि में समय भी सहायता करता है। नये चावल की प्रायः बहुत कम कदर होती है। लेकिन अगर नया चावल साल दो साल रख छोड़ा जाय तो उसमें कुछ खास गुण आ जाता है और उसकी कदर या उपयोगिता बढ़ जाती है। इसी तरह माष-पूस में बरफ को कोई नहीं पूछेगा। अगर उसे किसी तरह गर्मियों तक रख सकें तो उसकी बड़ी कदर होगी। मई-जून में गेहूँ का भाव बढ़ जाता है और बरसात में सूखी लकड़ी तेज बिकती है। विज्ञापन के कारण भी वस्तु की उपयोगिता अधिक व्यक्तियों को महसूस होती है। अतः माँग बढ़ जाती है। तब वस्तु दूर दूर से विक्री के लिये मगाई जाती है। इस प्रकार विज्ञापन द्वारा हम वस्तु के स्थान और अधिकातर परिवर्तन में योग देकर उपयोगिता बढ़ा देते हैं।

यह तो हमने देख लिया कि रूप, काल, स्थान या अधिकार परिवर्तन के द्वारा उत्पत्ति या उपयोगिता वृद्धि की जा सकती है। परन्तु इन परिवर्तनों

क करने में इसको किमी शक्ति का सहारा ढूँढ़ना पड़ता है ? कुछ समय पहले तक धूम्र की उत्पत्ति के लिये तीन चीज की जरूरत मानी जाती थी :- भूमि, (Land) मेहनत (श्रम) (Labour) और पूँजी (धन) (Capital) चाहे जिस ढंग से धन उत्पन्न हो पैदा किया जाय इन तीनों साधनों की आवश्यकता पड़ेगी। इनके अलावा आजकल दो शक्तियाँ और मानी जाती हैं :—प्रबन्ध, साहस (Organisation and Enterprise) इसके पहले कि हम इन शक्तियों पर विचार करें, हमें यह देख लेना चाहिये कि कुछ चुने हुये उदाहरणों में ऊपरी शक्तियाँ किस प्रकार भाग लेती हैं।

पहले रूप परिवर्तन द्वारा होने वाली उपयोगिता वृद्धि (Increase in utility) के साधनों को ही लीजिये; इस रीति से कच्चा माल पैदा किया जाता है। कच्चा माल बहुधा खेती से होता है। हमारे भारत में ज्यादातर लोग खेती करके ही अपना पेट पालते हैं। अच्छा इनमें ऊपर बताए साधन या शक्तियाँ किस प्रकार काम आती हैं ? बिना भूमि के खेती नहीं हो सकती, और मेहनत करने वाले मनुष्य बिना खेती करेगा ही कौन ? लेकिन जमीन और मनुष्य के होने से भी तो खेती नहीं हो सकती। उसके लिये बीज, हल, बैल, खाद आदि की भी आवश्यकता होती है। ये चीज़ें मनुष्य का धन हैं, लेकिन अब ज्यादा धन उत्पन्न करने के लिए काम में आने के कारण इनका नान पूँजी हो जाता है। इससे साफ प्रकट है कि खेती करने के लिए भूमि, श्रम और पूँजी की आवश्यकता होती है।

अब कारीगरी का एक उदाहरण लीजिये। तैयार माल भी रूप परिवर्तन द्वारा ही बनाया जाता है। दर्जी का काम लीजिए। वह कपड़े का काट-छाँट करके कपड़े सीता है। इसमें उसे सीने के लिये बैठने का स्थान (दुकान या मकान) चाहिये, यह भूमि है। उस पर बैठ कर वह सिलाई का काम करता है, इसमें उसे श्रम करना होता है। फिर उसे कपड़ा, मुई, डोरा आदि चाहिए, तभी तो वह काँट तैयार कर सकेगा। ये चीज़ें वह पहले कमाए हुये धन में वचत करके वचाता है और ये उसकी पूँजी है। इसी तरह से बढ़ई, लोहार, जुलाहे आदि के कार्य पर विचार किया जा सकता है। अतएव तैयार माल में भूमि, श्रम और पूँजी तीनों की आवश्यकता पड़ती है।

अब तक हमने प्रबन्ध और साहस (Enterprise) का विचार नहीं किया है। आजकल के मशीन युग में अकेला दुकेला आदमी धीरे-धीरे पैदा करने का काम नहीं करता। सैकड़ों हजारों आदमी एक ही कारखाने में काम करते नजर आते हैं। ऐसी हालत में इस बात की बड़ी जरूरत होती है कि कोई आदमी इन हजारों आदमियों के काम की देखरेख करे और यह निश्चय करे कि कितने आदमी कौन-सा काम करें, किस प्रकार की भूमि, श्रम और पूँजी लगाई जाय और कहाँ से कच्चा माल मँगाया जाय इत्यादि। इन सब बातों के लिये प्रबन्ध करने की आवश्यकता पड़ती है। इसी प्रकार आजकल अमेरिका आदि देशों में खूब बड़े-बड़े खेतों में खेती की जाती है। यहाँ पर भी यह देखना पड़ता है कि खाद कहाँ से मँगाई जाय। कितनी खाद की जरूरत है। पानी का कैसे इन्तजाम किया जाय इत्यादि।

इसके अलावा एक ऐसे व्यक्ति-समूह की जरूरत पड़ती है जो कारखाने में होने वाले या बड़े परिणाम से की जाने वाली खेती से आने वाले लाभ-हानि को सहने का बीड़ा उठाये। मजदूर अपना वेतन ले लेते हैं। प्रबन्ध करने वाला भी अपनी तनख्वाह लेता है। भूमि का मालिक केवल लगान मात्र चाहता है और पूँजी देने वाला सुद। इनमें से किसी को हानि लाभ से कोई मतलब नहीं रहता। कारखाने के चलने या दूबने का जोखिम उम आदमी या कम्पनी पर रहता है जो उमके चलाने का साहस करता है तथा जोखिम उठाती है।

भूमि (Land)

यह तो हमने देख लिया कि उत्पत्ति के पाँच साधन होते हैं—भूमि, श्रम, पूँजी, प्रबन्ध और साहस। अब इन पाँचों पर अलग-अलग विचार करना भी जरूरी है। पहले भूमि को लीजिए। अनंतौर पर इससे पृथ्वी तल का मतलब निकाला जाता है, परन्तु अर्थशास्त्र में भूमि से हमारा मतलब उन सब शक्तियों से रहता है जो प्रकृति से प्राप्त होती हैं। इस तरह से खान से निकलने वाले पत्थर, लोहा, सोना, आदि, जल, मछली, मोती, वायु, सर्दी, गर्मी, रोशनी, जलवायु आदि सब चीज़ें इसके अन्तर्गत आ जाती हैं। याद रखने लायक दूसरी बात यह है कि प्रकृति का वही हिस्सा भूमि कहलाता है जिसका उत्पत्ति में प्रयोग होता है।

सब जमीन एक सी नहीं होती। कोई बहुत उपजाऊ होती है, कोई कम और कोई बिल्कुल ही नहीं। किसी जमीन की मिट्टी चिकनी होती है अर्थात् उसमें बहुत बारीक कण होते हैं, किसी पृथ्वी में बड़े कण रहते हैं। वह बालूदार कहलाती है। चिकनी और बालूदार मिट्टी के अधिक या कम होने से ही खेतों की मिट्टी कई तरह की हो जाती है। जहाँ तीन भाग चिकनी मिट्टी और एक भाग बालू हो वहाँ खेती अच्छी होती है। बालू का हिस्सा जैसे जैसे बढ़ता जाता है जमीन कम उपजाऊ होती जाती है। नदी या तालाब के किनारे उस जमीन में जहाँ बरसात में पानी भर जाता है और फिर सूख जाता है, खेती अच्छी होती है। धान तो ऐसी जमीन में बहुत ही होता है। गाँव के किनारे की जमीन में जिनमें प्रायः कूड़ा-करकट फेंका जाता है या खाद डाली जाती है, बहुत अच्छी फसल होती है।

लेकिन जमीन की उपजाऊ शक्ति की सीमा होती है। अगर हम किसी उपजाऊ जमीन में खाद बगैरह दिये बिना ही खेती करते चले जायें तो दो तीन साल के बाद वह कम उपजाऊ हो जायगी। जिस प्रकार मनुष्य को आराम की जरूरत होती है और जिस प्रकार बिना खाने के वह काम करने के लायक नहीं रह जाता उसी तरह जमीन को भी खुराक तथा आराम की जरूरत पड़ती है। खुराक पहुँचाने के लिए यह बड़ा जरूरी है कि जमीन खूब गहरी खोदी जाय तथा उसमें खाद बगैरह खूब डाली जाय। खाद की मदद से जमीन अपनी खुराक वायुमंडल से अच्छी तरह से खींच लेती है। इसके अलावा एक ही समय में किसी खेत में बहुत सी पूँजी तथा मेहनत लगा कर उस खेत की उपज बहुत अधिक नहीं बढ़ाई जा सकती। इसकी भी एक सीमा होती है। जिस तेजी के साथ पूँजी व श्रम बढ़ाया जाता है उस तेजी के साथ उपज नहीं बढ़ती। अतएव किसी जमीन में पूँजी व मेहनत लगाने की भी हद होती है। व्यापार और कारखानों के काम में भूमि की उपजाऊ शक्ति का खयाल नहीं किया जाता। कारीगर या कारखाने का मालिक यह देखता है कि जमीन किस जगह है। कारीगर अपनी दुकान बाजार के करीब खोलना चाहता है। मिल मालिक कारखाने को ऐसे स्थान पर चलावेगा जहाँ से खान और बाजार दोनों पास हों। मान लो तुम लोहे का कारखाना खोलना चाहते हो। तुम ऐसी जगह ढूँढ़ोगे जहाँ से लोहे की

खान भी पान हो और तैयार माल को बाजार में पहुँचाने का सुभीता हो। इन्हीं कारणों से बड़े-बड़े शहरों में भूमि का मूल्य या किराया बहुत अधिक होता है।

• श्रम (Labour) •

यह तो हुई भूमि की बात। अब श्रम को लीजिये। किसान खेती करने में स्वयं भी मेहनत करता है और बैल से भी काम लेता है। लेकिन अर्थशास्त्र के अन्तर्गत बैल के कार्य को श्रम में नहीं गिनते। श्रम से हमारा मतलब मनुष्य द्वारा की हुई मेहनत से रहता है। मनुष्य अपने मनोरंजन के लिए फुटबाल, हाकी वगैरह खेल खेलता है। ऐसे खेलों में की गई मेहनत किसी का धन नहीं पैदा करती। अतएव इसकी गिनती भी श्रम में नहीं की जाती। अब अगर आप से कोई पूछे कि श्रम से क्या समझते हैं तो आपका कहना चाहिये कि श्रम से हमारा मतलब मनुष्य द्वारा की गई उस मेहनत से रहता है जो किसी धन के उत्पत्ति में लगाई जाती है। श्रम दो तरह के होते हैं :—शारीरिक व मानसिक। कुली, मजदूर, लोहार बढ़ई आदि शारीरिक श्रम करते हैं लेकिन डाक्टर, वकील, जज-मास्टर वगैरह मानसिक श्रम करते हैं। कुछ लोग दोनों तरह के श्रम करते हैं, परन्तु अर्थ-शास्त्र में श्रम के इस भेद की महत्व नहीं दिया जाता। अगर कोई भेद माना जाता है तो वह उत्पादक और अनुत्पादक श्रम के बीच में होता है। मनुष्य किसी इच्छा के पूर्ति के लिए जो मेहनत करता है वह उत्पादक कहलाती है। उत्पादक और अनुत्पादक मेहनत को साफ करने के लिये मान लीजिये कि कोई आदमी बिना मतलब ही एक स्थान से मिट्टी खोदकर दूसरे स्थान पर जमा करता है, ऐसा श्रम अनुत्पादक कहलायेगा। हाँ, अगर पहले स्थान पर मिट्टी का ऊँचा ढेर लगा हो और दूसरे पर गड्ढा हो तो वह श्रम उत्पादक गिना जायगा क्योंकि ऐसा काम करने से गड्ढा पट गया और किसी के उसमें गिर जाने का डर जाता रहा। अस्तु, उत्पादक श्रम के दो भाग किये जाते हैं। बढ़ई लकड़ी से हल बनाता है, किसान खेत में अनाज पैदा करता है और लोहार लोहे से चाकू बनाता है। इस प्रकार का श्रम प्रत्यक्ष उत्पादक श्रम कहलाता है। लेकिन जंगलों से लकड़ी लाने में जो श्रम पड़ता है, पंडितजी चेलों को पढ़ाने में जो मेहनत करते हैं अथवा परीक्षार्थी को परीक्षा में

बैठने हेतु जूँ, विद्याध्ययन तथा परिश्रम करना पड़ता है वह परीक्ष उत्पादक कहलाता है क्योंकि उससे किसी वस्तु विशेष की उत्पत्ति नहीं होती ।

श्रम की उपयोगिता (Utility of labour)

जिस प्रकार सब भूमि एक सी उत्पादक नहीं होती उसी तरह सब श्रम एक-से उत्पादक नहीं होते । श्रम की उत्पादकता कई बातों के उपर निर्भर रहती है । मेहनत करने वाला अगर मजबूत, शिक्षित और द्रौढिष्ठ पाए हुए है तो उसकी उत्पादक शक्ति अधिक होगी । कार्यक्षमता आदमी को मिलने वाले खाने, उसके रहने के स्थान की आवश्यकता आदि बातों से सम्बन्ध रखती है; इसके अलावा यदि मजदूर गुलाम की तरह काम करते हैं तो उनका श्रम कम उत्पादक हो जाता है । इसलिए कारखानों में अच्छे कारीगरों और मजदूरों को हिस्सेदार बना लेते हैं । इसी प्रकार खेती में हिस्सेदार होते हैं । अर्थात् खेत में काम करने वालों का हिस्सा बँध जाता है इससे काम करने वाले मन लगा कर काम करते हैं, और अधिक से अधिक माल उत्पन्न करने का प्रयत्न करते हैं । चतुरता और बुद्धिमान् भी श्रम को और उत्पादक बनाती है । एक मामूली बड़ई जिन लकड़ी से एक भद्दा-सा बक्स बनाकर तीन चार रुपये का बेचता है एक चतुर बड़ई उसी से एक अच्छी आलमारी बना कर बेचने से दस पन्द्रह रुपए प्राप्त कर लेता है । जो श्रमजीवी बुद्धिमान नहीं है, जिन्हें हम बात का पता नहीं है कि किस प्रकार संपत्ति की वृद्धि करनी चाहिये, उनका श्रम बहुत कम उत्पादक होता है । उदाहरण के लिये हम देश के मूर्ख और कम बुद्धि वाले बड़ई, लोहार, कुम्हार और जुलाहे को लीजिये । ये अब भी उसी प्रकार काम करते हैं जिस प्रकार हजारों वर्ष पहिले होता था । यदि ये बुद्धिमान तथा पढ़े-लिखे होते तो दूसरे देशों की बनी हुई अच्छी-अच्छी चीजों को देख कर ये भी वैसे ही वस्तुएँ बनाने के उपाय सोचते ।

श्रम विभाग (Division of Labour)

श्रम की उत्पादकता के संबन्ध में एक बात और जानने योग्य है । पुराने जमाने में आदमी अपनी सारी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए स्वयं ही सब काम करता था । वही कोपड़ी बनाता, वही मछली मारता, वही तीर और धनुष बनाता और पहनने के लिए जानवरों को मार कर उनकी

खोल खींचता। लेकिन समय के परिवर्तन के साथ मनुष्य ने परिवार बंसा लिया और कई परिवार मिल कर गाँवों में रहने लगे। इसके साथ ही इस बात का ख्याल हुआ कि यदि एक आदमी एक ही काम करे तो और भी अच्छा हो। अतएव एक आदमी केवल अन्न पैदा करता है, एक केवल कपड़ा तैयार करता है इत्यादि। इस प्रकार गाँव के किसान, लकड़हारे और जुलाहे आदि का काम अलग-अलग हो जाता है। जैसे जैसे उन्नति हुई, एक एक पैसे के कई कई भाग होने लगे। कपड़ा तैयार करने के लिये एक आदमी केवल कपास पैदा करता है, दूसरा कपास को ओटता है अर्थात् रुई से बिनौले अलग करता है, तीसरा सूत को कातता है और चौथा केवल कपड़ा बुनता है। इसके बाद इन भागों के भी भाग किये जाते हैं। इस प्रकार से होने वाले श्रम के बटवारे को श्रम विभाग कहते हैं। श्रम-विभाग हो जाने से पहले तो कोई आदमी बड़ी जल्दी किसी विभाग का काम सीख सकता है। इसके अलावा श्रम विभाग के अन्तर्गत एक ही काम करते आदमी खुब होशियार हो जाता है। फिर प्रत्येक विभाग में की जाने वाली क्रियाएँ इतनी सरल हो जाती हैं कि उनके करने के लिये मशीन का भली भाँति प्रयोग किया जा सकता है। इन सबका नतीजा यह होता है कि किसी वस्तु की उत्पत्ति करने में खर्च कम पड़ने लगता है। परन्तु श्रम-विभाग से कुछ नुकसान भी है। एक ही काम को करते करते वह काम नीरस सा लगने लगता है। उस काम के करने में फिर मन नहीं लगता। यही नहीं यदि वह चाहे कि अब किसी दूसरे के पेशे का अख्तियार कर ले तो वह ऐसा नहीं कर सकता। तीसरे इसके कारण उसे अपने शरीर के किसी एक अंग का ही अधिक उपयोग करना पड़ता है। फलतः उसका स्वास्थ्य गिर जाता है। कुछ भी हो श्रम-विभाग के कारण श्रमी भारी और दुखदायक कामों के करने से बच जाते हैं और उन्हें अब सप्ताह में केवल ४५-६० घंटे तक काम करना पड़ता है। बाकी समय वे अपनी शिक्षा, मनोरंजन और उन्नति के लिये लगा सकते हैं। इसी प्रकार यदि भारतीय मजदूरों को भी शिक्षा व ट्रेनिंग मिले, उन्हें उचित मजदूरी दी जाय, नियंत्रित समय तक काम लिया जाय, उनके मनोरंजन और सुख-सुविधा की व्यवस्था की जाय तो वे भी अधिक क्षमता-वान बन सकते हैं।

पूँजी (Capital)

हम कह चुके हैं कि किसी वस्तु की उत्पत्ति में धन की भी जरूरत पड़ती है। उत्पत्ति कार्य में जो धन लगाया जाता है उसे हम पूँजी कहते हैं। नोट करने लायक बात यह है कि सब धन पूँजी नहीं कहलाता। उसका वही हिस्सा पूँजी के नाम से पुकारा जायगा जो और सम्पत्ति पैदा करने के काम में आवेगा। उदाहरण के लिये यदि कोई किसान बैठा बैठा अनाज खर्च करता है लेकिन काम नहीं करता, तो उसका अनाज रूपी धन पूँजी नहीं कहा जा सकता। लेकिन अगर वह खाने के साथ खेती भी करता जाता है तो जो अन्न वह खाता है वह पूँजी स्वरूप है। खेत में बीज बोने के दिन और जब अनाज कट कर किसान के घर में आता है इस बीच में कई महीने गुजर जाते हैं। तब तक किसान को खाने-पीने को चाहिये। मजदूरी चाहिये, हल, बैल आदि चाहिये। पहनने को कपड़े, रहने को घर तथा औजार वगैरह भी चाहिये। ये सब चीज़ें पहले से ही इकट्ठी करनी पड़ती हैं। इनमें अन्न, वस्त्र, बैल-वधिया, हल-फाल, घर-द्वार सब कुछ आया और इन सबकी गिनती पूँजी में करनी चाहिये।

यह स्पष्ट है कि सम्पत्ति पैदा करने के पहले पूँजी लगानी या खर्च करनी पड़ेगी। पूँजी दो तरह से खर्च की जाती है। किसान जो बीज बोने के काम लाता है वह एक ही बार में खर्च हो जाता है। वह जिस पानी से खेत को सिंचता है उसका वह दूसरी बार उपयोग नहीं कर सकता। बढ़ई जिस लकड़ी का हल बनाता है वह फिर उसके काम की नहीं रहती। लोहार जिस लोहे की खुरपी गड़ता है वह बिना तोड़े दूसरी चीज़ बनाने के लिए काम में नहीं लाई जा सकती। कहने का मतलब यह है कि कुछ पूँजी का एक हिस्सा हमेशा के लिए एक दम खर्च हो जाता है। इस हिस्से को चल पूँजी कहते हैं। दूसरी ओर किसान बार बार उन्हीं बैलों, हल, फावड़ा, कुदाली, खुरपी आदि से काम लेता है। बढ़ई चीज़ें बनाने के लिए रस्खानी, बसुला, आरी आदि से काम लेता है। इसी तरह लोहार का हाथौड़ा, धन, धौकनी वगैरह बहुत दिन तक चलते हैं। इन वस्तुओं में खर्च की हुई पूँजी को अचल पूँजी कहते हैं।

पूँजी के उपयोग करने के ढंग पर उसकी उत्पादक शक्ति निर्भर रहती

है। यदि बुद्धिमानी के साथ पूँजी लगाई जाती है तो अधिक सम्पत्ति पैदा होगी अन्यथा कम। यदि कोई जमीन बर्बाद है तो उसमें आप है जितनी खाद डालिए और चाहे जितना पानी दीजिए, गेहूँ की पैदावार कभी अच्छी न होगी। और आपनै जो पूँजी उसमें लगाई है उसका आपको पूरा पूरा बदला नहीं मिलेगा। परन्तु उसी पूँजी को अगर आप किसी उपजाऊ जमीन में लगाते तो उसकी उत्पादक शक्ति अवश्य बढ़ जाती। कहने का मतलब यह कि खेती या व्यापार में जो पूँजी लगाई जाती है, उसके लगाने में यदि बुद्धिमानी, तजुर्बे और दूरन्देशी से काम लिया जाता है तो पूँजी की उत्पादक शक्ति बढ़ जाती है।

प्रबन्ध (Management)

जैसा कि पहले कहा जा चुका है आजकल के जमाने में भूमि, श्रम और पूँजी के ऊपर प्रबन्ध करने वाले का हाथ रहता है। प्रबन्ध के कार्य और श्रम में अंतर है। श्रमी अधिकतर शारीरिक मेहनत करता है और प्रबन्धक को दिमाग से ज्यादा काम लेना पड़ता है। प्रबन्धक उत्पात्ति के लिये सबसे उपयुक्त भूमि को खोजकर उस पर आवश्यक योग्यता वाले मजदूरों को श्रम विभाग के नियमों के अनुसार लगाता है। उसे नए-नए लाभदायक औजारों को इकट्ठा करना पड़ता है। वह समय के हिसाब से कच्चे माल को सस्ते से सस्ते दामों में खरीदता है। बाज़ार में लोगों की रुचि के मुताबिक माल बनवा कर वह उस माल को अच्छे-अच्छे दामों में बेचता है। कहने का मतलब यह है कि प्रबन्धकर्त्ता लोगों की रुचि का खयाल रखकर, भूमि, श्रम और पूँजी को इस हिसाब और रूप से लगाता है कि कम से कम लागत में अधिक से अधिक वस्तु तैयार हो जाती है और इसको वह सबसे अधिक मुनाफे के हिसाब से बाज़ार में बेच देता है।

इसमें शक नहीं कि जो मनुष्य प्रबन्ध करता है उसमें बहुत से गुण होने चाहिए। वह पढ़ा लिखा हो, होशियार हो, दूरन्देश हो, लोगों से मिलता-जुलता हो। बाज़ार के भाव व लोगों की बदली हुई चाह से वाफिक रहे तथा ऐसा विचित्र फैशन का माल तैयार करावे जिसमें मनुष्य उस माल को सबसे अधिक मात्रा में खर्च करे। प्रबन्धकर्त्ता आज कल के कंसिंग के

“तरीको से जानुकायी रखता है और उपयोगी तरांक से अपने माल का बिचा-
प छुपाता है। इसके अतिरिक्त वह अपने माल को देशी और विदेशी
बाजारों में पहुँचाने के लिए सबसे सस्ती और शीघ्र पहुँचाने वाली सवारी
का प्रबन्ध करता है। प्रबन्ध का एक उद्देश्य रहता है कि कम से कम खर्चा
में अधिक से अधिक लाभ करते रहना। यदि किसी मशीन का प्रयोग करने से
खर्च में कमी होती है तो वह मजदूरों का खयाल किये बिना ही मजदूरों को
घटा कर उस मशीन को कारखाने में मँगावेगा।

साहस या जोखिम (Enterprise)

मान लो उत्पत्ति के उपरोक्त चारों साधन मौजूद हैं परन्तु सबको इस
बात का शक है कि कार्य शुरू कर देने के बाद उनकी भूमि का लगान, श्रम
की मजदूरी, पूँजी पर सूद व प्रबन्धक का वेतन मिलेगा या नहीं। ऐसी हालत
में उस समय तक उत्पत्ति का कार्य शुरू ही नहीं हो सकता जब तक कोई
व्यक्ति साहस न करले, नबको इस बात का विश्वास न दिला दे कि काम अम-
फल हां जाने प भी वह लगान, मजदूरी वेतन, सूद आदि चुकता कर देगा।
लेकिन खाली विश्वासवाला होने से काम नहीं चलता। विश्वास दिलाने वाले
की हालत ऐसी होनी चाहिए जिससे सब लोग उनकी बातों का विश्वास कर
ले। इसके लिए यह बहुत जरूरी है कि विश्वास दिलाने वाला साहसी मनुष्य
धन तथा अपनी बात दोनों का धनी हो। इसके अलावा साहसी को बुद्धिमान
तथा दक्ष होना चाहिये, जिससे वह योग्य सहायक व प्रबन्धक को ढूँढ़ सके।
यह तो हुआ साहसी के गुण। अब देखना चाहिए कि साहसी और उत्पत्ति में
हाथ बटाने वाले अन्य व्यक्तियों में कोई भिन्नता है या नहीं। सबसे बड़ा
फर्क यह है कि भूमि के मालिक का लगान, श्रमिक की मजदूरी, महाजन
का सूद और प्रबन्धक का वेतन बँधा हुआ होता है लेकिन साहसी को आने
वाली रकम में यह सब काट कर जो बचता है उसी से संतोष करना पड़ता
है। यदि कुछ कमी पड़ती है, तो उसे स्वयं अपनी गँठ से लगाना पड़ता
है। यह सब ठीक है लेकिन पैम पर भी किसी मनुष्य या कम्पनी को साहस
का बीड़ा उठाना ही पड़ता है। क्योंकि बिना साहस के न कोई व्यापार
चालू किया जा सकता है और न चालू व्यापार बढ़ाया ही जा सकता है।

अभ्यास क प्रश्न

१ उदाहरणों सहित समझाये कि स्थान परिवर्तन से उपयोगिता की वृद्धि किम प्रकार होती है ?

२—दूकानदार और व्यापारी वस्तुओं की उपयोगिता वृद्धि किस प्रकार करते हैं ?

३—समय परिवर्तन से उपयोगिता वृद्धि के उदाहरण दीजिये ।

४—क्या किसी वस्तु के विज्ञापन से भी उपयोगिता की वृद्धि होती है ?

५—क्या कोई ऐसी वस्तु है जिसके अधिक उपयोग करने से उसकी उपयोगिता की वृद्धि होती है ?

६—यह समझाइये कि निम्नलिखित व्यवसायों में उत्पात्त के साधनों का किस प्रकार उपयोग किया गया है :-

हलवाई की दूकान, कपड़े की दूकान, भूत कातना, कपड़े बुनना, गौशाला ।

७—श्रम और मनोरंजन का अन्तर समझाइये । यदि कोई व्यक्ति कविता करता है या गाता है तो उसका कविता करना या गाना श्रम कहलायेगा या मनोरंजन ?

८—उत्पादक और अनुत्पादक श्रम के भेद बतलाइये । यदि कोई विद्यार्थी परिश्रम करने पर भी अपनी परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो जाता है, तो उसका श्रम उत्पादक कहलायेगा या अनुत्पादक ?

९—पंडा, ज़मींदार, डाक्टर, पुरोहित, साधु, सिपाही इत्यादि क श्रम किन दशाश्रु में उत्पादक माने जा सकते हैं ?

१०—भारतीय मज़दूरों की कार्यक्षमता किस प्रकार बढ़ाई जा सकती है ?

११—अर्थशास्त्र की दृष्टि से भूमि की विशेषताएँ तथा महत्व समझाइये ।

१२—क्या आप के गाँव में भूमि किसानों को काफी परिमाण में मिल जाती है ? यदि नहीं, तो कर्मा के प्रधान कारण क्या है ?

१३—चल और अचल पूँजी के भेद समझाइये । निम्नलिखित उद्योग-धंधों की चल और अचल पूँजी लिखिये :-

गन्ने की खेती, कपास का कारखाना, मिठाई बनाना, खिलौने बनाना ।

१४—प्रवन्धक के कार्य का महत्व समझाइये । उसमें किन गुणों की आवश्यकता है ?

१५—उत्पत्ति : जोखिम का क्या स्थान है ? निम्नलिखित व्यवसायों जोखिम का उद्योग है :—

बटाई पर की जाने वाली खेती, मिश्रित पूँजी वाली कम्पनी, वपड़े का कारखाना, चीनी का कारखाना ।

१६—उत्पत्ति के अर्थ समझाइये । उत्पत्ति के साधन बताइये । गाँव के उद्योग-वंधों में इन साधनों के महत्त्व की तुलना कीजिये ।

चौथा अध्याय

भारतीय गाँवों की खास पैदावारें

पिछले अध्याय में हम देख चुके हैं कि उत्पत्ति करने में किन किन शक्तियों से काम लेना पड़ता है । अब इन शक्तियों के सहयोग से उत्पन्न होने वाली वस्तुओं के बारे में कुछ जानना आवश्यक मालूम पड़ता है । भारत में नव्वे प्रतिशत से अधिक लोग गाँवों में रहते हैं और सत्तर प्रतिशत से ऊपर मनुष्य खेती करके अपना पेट पालते हैं । अस्तु यदि खेत की उपज के बारे में ही पहले कुछ विचार जाय तो अनुचित न होगा । भारत में अधिकतर-दो फसलें होती हैं । एक खरीफ कहलाती है और दूसरी रबी । खरीफ की फसल जेठ मास से लेकर कार्तिक तक चलती है और बाकी छै महीनों में अर्थात् कार्तिक से वैशाख तक रबी की फसल होती है ।

संयुक्त प्रांत के इलाहाबाद जिले में खरीफ की फसल बोने के पहले खेत में खाद डाल देते हैं । पानी बरसने के बाद खेत एक बार जोत दिया जाता है । खरीफ की फसल में वहाँ ज्वार, बाजरा, मक्का, सावाँ और कौड़ो, चावल, अरहर, मूँग, उरद, तिल व तिली बाँई जाती है । मक्का और ज्वार के लिए खेत अक्सर दो बार जोते जाते हैं । बाजरे के लिये एक ही बार हल चलाने से काम निकल जाता है । ज्वार और मक्के को तो किसान कूँड़ी बनाकर बंते हैं । बाजरा, उरद और मूँग के बीज को बखेर कर बोते हैं । जब वर्षा नहीं होती तब खरीफ में एक-दो बार खेतों को सींचने की ज़रूरत

पड़ती है और नहीं तो खरीफ की फसल के लिए सिंचाई कोई खास जरूरी नहीं है। अरहर रबी की फसल के साथ बैसाख में पाटी जाती है, बाकी सब चीजें भादों और कुआर में काट ली जाती हैं। रबी की फसल में गेहूँ, चना, जौ, मटर, मसूर, अलसी, सरसों गन्ना और ऊख बोया जाता है। जिन खेतों में गेहूँ, जौ, सरसों इत्यादि चीजें बोई जाती हैं उनमें खरीफ की फसल नहीं पैदा की जाती बल्कि उन खेतों को एक बार जोत कर बरसात के पहले छोड़ देते हैं। बरसात में उनमें खूब पानी भरता है। गेहूँ वगैरह बोने के पहले फिर ये खेत दस-तीन बार जोत दिये जाते हैं। रबी में धना मटर को तो वखर कर्क बोते हैं बाकी सब अनाज कूड़ी द्वारा बोये जाते हैं। रबी की सब फसले बैसाख के आखीर तक कट जाती हैं। अस्तु इस प्रकार से इलाहाबाद जिले में पैदा होने वाले अन्नो में चावल, गेहूँ, चना, ज्वार, वाजरा, जौ, मकई मुख्य हैं। दालों में मूँग, उड़द, अरहर, मटर, मसूर आदि पैदा होती है। तेलहन की वस्तुओं में तिल, सरसों, व अलसी प्रधान हैं। इसके अलावा गन्ना और आलू की खेती होती है।

भारतीय भूमि की पैदावार की कमी

इलाहाबाद जिले में जो उपज पैदा होती है, उनमें मेवा, मसाला, कपास, जूट, सज, चाय, तम्बाकू व पशुओं के चारे का नाम जोड़ दिया जायता भारत की सारी मुख्य उपज गिनती में आ जाती है। खेती से उत्पन्न पदार्थों की दृष्टि से हिन्दुस्तान संसार भर में तीसरा गिना जाता है। संसार भर की जन का माँग तो भारत ही पूर्ण करता है लेकिन गेहूँ, कपास, चावल आदि की पैदावार में भी यह अच्छा स्थान रखता है। लेकिन यहाँ निवासियों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर संचने से यहाँ की उपज कम मालूम पड़ती है। यही नहीं, तुलना करने से पता चलता है कि प्रति एकड़ तक जितना गेहूँ, जौ, कपास, गन्ने आदि की उत्पत्ति करते हैं उतनी ही जमीन में उससे कई-कई गुना उपज अमेरिका और रूसवाले पैदा करते हैं। हमारे यहाँ की एकड़ जितना गेहूँ पैदा होता है उसका चौगुना अमेरिका में और इससे भी अधिक रूस में पैदा किया जाता है क्योंकि वहाँ पर तो मील-मील दो-दो मील के खेतों की खेती की जाती है। इसी प्रकार हमारे यहाँ से आठ से दस गुना और बढ़िया गन्ना जाया और हवाई द्वीप में उगाया

जाता है। हमारे यहाँ की रुई की खती से भी अधिक माल अमेरिका वाले पैदा कर लेते हैं। चाहे जो उपज ले लीजिए हर एक में हम और देशों से पिछड़े हुये पाये जाते हैं। यह बात नहीं की हमने भी पिछड़े हुए देश नहीं है लेकिन ऐसे देश अभी ताजे ताजे दूढ़ निकाले गये हैं अथवा वहाँ भारत की तरह की उपजाऊ जमीन नहीं है। और हमें तो अपने यहाँ की तुलना उन देशों से करनी चाहिये जो हमारी ही तरह के हैं।

पैदावार की कमी के कारण

स्वभावतः प्रश्न उठता है कि आखिर किस कारण से भारत में और देशों की अपेक्षा उपज इतनी कम होती है। यह हम जानते हैं कि खेतों में उत्तम खाद देनी चाहिये; अच्छे बीज बोने चाहिये; उत्तम औजारों से खेत को जोतना-थोना चाहिए तथा खेत की सिंचाई का पूरा प्रबन्ध रखना चाहिए। हमारे किसानों को पहले तो पर्याप्त खाद मिलती नहीं। यह कुछ ग्राम रिवाज सा हो गया है कि गोबर की उपली पाथ दी जाती है। ये उपली या कड़े ईंधन की जगह जनाने के काम में लगे जाते हैं। यदि इस गोबर से उपली पाथने की जगह खाद बनाई जाये तो बहुत अधिक फायदा हो। इसके अलावा खाद डालने के पहले किसान खाद को खेतों में पहले से ढेरी लगा कर धूप में छाँड़ देते हैं जिससे खाद का बहुत सा तत्व नष्ट हो जाता है। खाद के अलावा किसान जिन बीजों को बोते हैं वे स्वस्थ और अच्छी हालत में नहीं होते। वैज्ञानिकों ने यह समझ लिया है कि दीर्घकाल की दृष्टि से प्राकृतिक खाद जैसे गोबर की खाद, हरी खाद, सनह की खाद, मलनूत्र की खाद अधिक उपयोगी हैं और कृत्रिम खाद अर्थात् अनीय होती है। फलस्वरूप उपज कम होती है। फिर किसान के बैल और औजारों को ही लाजिये। बैल मरियल तथा रागी होते हैं; उनसे खूब कसकर काम नहीं लिया जा सकता। इनो प्रकार कहीं भारो हल्लों ने काम लिया जाता है जो कहीं हलके हल से। इनके अलावा हल में भी खाद देने के लिए जो लोहे का फल लगा रहता है वह कहीं अधिक नुकीला होता है और कहीं साधारण। सबसे बड़ी बुराई तो यह है कि हमारे हल जगदा गहराई तक नहीं खाद फेरते और न भिन्ना का ही अच्छी तरह पलट सकते हैं। इसलिये जो पौधे उगते हैं उन्हें ऊपर की ही सतह से अपनी खुराक खींचनी पड़ती है। नीचे

की जमीन ऐसी ही पड़ी रहती है। इससे भी पैदावार अच्छी नहीं होती है। यदि बढ़िया और उन्नत ढंग के हलों से काम लिया जाय तो खेत अधिक गहरे खोदे जा सकते हैं। ऐसा करने से नीचे की बढ़िया मिट्टी ऊपर आ जायगी और पैदावार अच्छी हो सकती है।

खेती करने के काम में सिंचाई का स्थान भी काफी ऊँचा है। लेकिन हमारे देश के कितने भागों में तो सिंचाई के पर्याप्त साधन ही नहीं हैं। हमारे संयुक्त प्रांत में नहरों का इस्तजाम है। नहरों से आबपाशी करने के लिए किसानों के खेत के हिसाब से दाम चुकाने पड़ते हैं। वहाँ पर पानी का बड़ा नुकसान होता है। पहले किसान खेतों में पानी पहुँचाने के लिए जो नालियाँ बनाते हैं वे इतनी बुरी हालत में होती हैं कि पानी फूट-फूट कर बाहर निकल जाता है। खेतों में क्यारियाँ नहीं बनाई जाती तथा सिंचाई ठीक तरह से नहीं होती। चूँकि नहर से आबपाशी करने का कीमत का पानी के परिमाण से कोई सम्बन्ध नहीं रहता इसलिए जरूरत से ज्यादा पानी खेतों में दिया जाता है जिससे खेतों की फसल को बड़ा धक्का पहुँचता है। जिस प्रकार कम सिंचाई से उपज को धक्का पहुँचता है वैसे ही अधिक सिंचाई से भी उपज खराब हो जाती है। यदि उचित परिमाण में थोड़ी-कम सिंचाई की जाय तो फसल बहुत अच्छी होवे। और यह जरूरी है कि किसान इस बात का ज्ञान प्राप्त करें कि किस फसल के लिए कितने पानी की जरूरत है।

जिस तरह से मनुष्य बिना आराम किए लगातार काम नहीं कर सकता उसी प्रकार जमीनों से भी लगातार बैधी ही फसल नहीं पैदा की जाती सकती। प्रायः जब एक फसल पैदा हो चुकती है तो जमीन में कुछ तत्वों की कमी पड़ जाती है। इस कमी को पूरा करने के लिए समय की आवश्यकता होती है अर्थात् फौरन ही वह कमी ठीक नहीं की जा सकती। इसलिये कितने ही एक फसल के बाद उस खेत में कुछ नहीं बोते अर्थात् उसे परती छोड़ देते हैं। ऐसा करने से कुछ महीने में जमीन उन पदार्थों को, जो उससे निकल जाते हैं, वायु-मंडल द्वारा फिर से खींच कर जमा कर लेती है। यह कार्य तो ठीक है लेकिन इससे जमीन बेकार पड़ी रहती है। दूसरे भूमि को केवल परती छोड़ देने से ही खोए हुए सब तत्व वापस नहीं आ जाते। अगर

खाद दी जाय तो इन तत्वों की उचित पूर्ति हो सकती है। खाद देने का उचित तरीका तो यह होगा की परती छोड़ी हुई भूमि में बराबर दूरी पर फुट डेढ़ फुट गहरे गड्ढे खोद कर उनमें कूड़ा-ककट-गोबर भर-भर कर उन्हें ढक देके। इससे साल भर में खाद बन कर जमीन में मिल जायगी। लेकिन अब तो विज्ञान के धुरंधर विद्वानों ने यह बूढ़ निकाला है कि किस फसल के बाद कौन-कौन से तत्व नष्ट हो जाते हैं। इसका सम्बन्ध फसलों के हेर फेर में जोड़ा जा सकता है। प्रायः किसान फसलों के हेर-फेर से बोलते हैं लेकिन वे उपरोक्त बताए सिद्धान्त को अच्छी तरह से नहीं समझते। किसी फसल के बाद जमीन के सब तत्व तो निकल ही नहीं जाते और न हर एक फसल से वही तत्व नष्ट होते हैं। इसलिए अगर किसी फसल के बाद ऐसी फसल बोई जाय जिसमें उन्हीं तत्वों की जरूरत पड़े जो कि अभी जमीन में मौजूद हैं तो बहुत अच्छा हो। चूँकि खोये हुए तत्वों से अब हमारा कोई मतलब नहीं रहता इसलिए जमीन उनको अच्छी तरह से वायु-मंडल के द्वारा खींच सकती है। इससे तीसरी बार हम फिर से पहिली फसल को बो सकेंगे।

उदाहरण के लिए मकई के बाद गेहूँ, ज्वार के बाद जौ, मसूर, मटर वा अलसी, कपास के बाद मकई बोई जा सकती है। गेहूँ के साथ साथ दालें या तेलहन वस्तुएँ बोई जा सकती हैं।

उपज में कमी होने का दूसरा कारण है किसानों में शिक्षा का अभाव। इसके अलावा वे निर्धन हैं। अनपेक्षित अच्छी बातों के ऊपर खर्च नहीं कर सकते। पैसा हो तो भी क्या करें। बिना उपयुक्त शिक्षा पाये वह अच्छी तरह ध्यान नहीं कर सकता। यदि किसान पढ़ा लिखा हो तो उसे यह भली भाँति समझाया जा सकता है कि कैसी खाद होनी चाहिये, कैसे फसलों के हेर फेर से परती भूमि छोड़ने की आवश्यकता हटाई जा सकती है या अधिक पानी डालने में कौन से नुकसान होते हैं।

खेतों का छोटे-छोटे और दूर-दूर होना

(Fragmentation of Land Holdings)

इन बुराइयों के अलावा एक और कमी है। भारतवर्ष में बहुत से खेतों का क्षेत्रफल एक एक दो दो एकड़ भी नहीं है। कितने किसानों के खेत

इससे भी छोटे होते हैं। किसी किसी का क्षेत्रफल तो आधा ही एकड़ होता है अथवा इससे भी कम। इसके अलावा अनेक किसानों के पास बहुत से खेत होते हैं। लेकिन वह दूर-दूर होते हैं। इससे किसानों को बहुत हानि होती है। छोटे खेतों में अच्छे अच्छे हलों और औजारों से काम नहीं लिया जा सकता। हलों को खेत में घुमाने में ही बहुत सी भूमि बेकार चली जाती है। इन सब बातों से किसानों में लड़ाई-भगड़ा खूब होता है और आए दिन अदालत के दर्शन किये जाते हैं। ऊपर इस बात का त्रिक आया है कि खेतों का दूर-दूर होना बुरा है। खेतों के एक जगह न होने के कारण एक खेत से दूसरे खेत में पानी ले जाने में बहुत ता समय व्यर्थ जाता है। जोताई बोवाई के अवसर पर दो चार घंटे की देर होने से ही किसान का डर रहता है। यदि खेत एक जगह पर हों तो ऐसे समय में देर होने का डर नहीं रहता। फिर सिंचाई के समय एक ही समय में सब खेतों में पानी नहीं दिया जा सकता। अगर कहीं नहरों से पानी लेकर कोई किसान अपने खेत सींचता है तो नहर से पानी लेने में बड़ा खर्च और अनुविधा पड़ती है। यदि खेत एक जगह हो और कुएँ से सिंचाई की जाय तो एक ही बार में सब जगह पानी पहुँच जाय। खेतों के दूर रहने से एक ही कुआँ काम नहीं देता और दूर-दूर से पानी लाने में बड़ी कठिनाई पड़ती है। फिर यह सबको मालूम है कि जब फसल तैयार होने लगती है तो उसकी रखवाली की बड़ी जरूरत पड़ती है। यदि रखवाली न की जाय तो चिड़ियाँ, तोते, गाय, बकरी वगैरह पशु और पक्षी वगैरह को साफ कर दें। लेकिन अगर किसान का कोई खेत गाँव के इस कोने पर है और कोई उस कोने पर तो रखवाली ठीक तौर पर नहीं की जा सकती। खेती के एक जगह होने से एक ही आदमी ठीक खेत की देख रेख कर सकता है और बहुत से रखवालों की आवश्यकता नहीं पड़ती तथा पैदावार के मारे जाने का डर भी कम हो जाता है।

इसके अलावा खेत पास हों तो एक ही आदमी खेती के बहुत काम संभाल लेवे। हरवाड़े आदि काम करते रहते हैं, अथवा आदमी सब देख-भाल कर लेता है। दूर-दूर खेत होने से नौकर ठीक काम नहीं करते और अकेला आदमी सब जगह समय से ठीक देख नहीं पाता है। इससे खर्च भी अधिक हो जाता है और पैदावार की भी हानि होती है। फिर दूर-दूर की

दौड़-धूप में शरीर को भी कष्ट होता है। एक जगह खेत होने से शरीर को भी आराम मिलता है। आदमी ही नहीं बैलों का भी आराम मिलता तथा कटाई, हाँवाई इत्यादि में भी आगानो रहनी है। और आपस में दूसरे किसानों से होने वाली लड़ाइयाँ भी कम हो जाती हैं।

ऊपर कही चुगइयों के कारण यह जरूरी है कि ये हानियाँ दूर की जायँ। उसका सीधा सा उपाय यह है कि हरेक गाँव में या कई गाँवों में मिलाकर सब खेतों का मूल्य अंदाजा जाय और एक किसान के खेतों का जितना मूल्य हो उनसे उनसे मूल्य के खेत एक स्थान में एक चक्र में कर दिए जायँ और भविष्य के लिये उनको छोटे-छोटे टुकड़ों में बाँटा जाना बंद कर दिया जाय। जहाँ एक ही परिवार के दो तीन आदमियों के पास कई छोटे छोटे खेत हों, वहाँ पर बेहतर होगा यदि उनमें समझौता करा कर वे खेत एक ही आदमी को दिलवा दिए जायँ। दूसरे आदमियों को उनके हिस्से का रुपया मिल जायगा। कई जगह ऐसा प्रयत्न सफलतापूर्वक किया जा चुका है और दूसरी जगह भी ऐसा ही उपाय किया जा सकता है। सहकारी समितियों द्वारा खेतों की चक्कंदी कैसे की जा सकती है वह किसी अगले अध्याय में बतलाया जायगा।

गाँवों में बहुत से किसान ऐसे हैं जिनके पास सब खेतों का क्षेत्रफल इतना कम है कि यदि वे चक्कंदी द्वारा एक चक्र में भी कर दिये जावें तो भी खेती से हानि होना निश्चित है। जिन किसानों के पास तीन चार एकड़ से कम क्षेत्रफल के खेत हैं उनका खेती से इतनी असमझी नहीं हो सकती कि वे उनसे अपने कुटुम्ब का जीवन निर्वाह कर सकें। ऐसे किसानों का संख्या प्रत्येक गाँव में काफी अधिक रहती है। इनकी दशा तो अब सुधन सकती है जब गाँव के सब किसान मिलकर एक सहकारी समिति में लें लें और सामूहिक रूप से खेती करें। उस प्रकार की सहकारी समिति में संगठन कैसे किया जा सकता है, वह किसी अगले अध्याय में बतलाया जायगा।

खेती में क्या करना पड़ता है ?

आप हिन्दोस्तान के खेतों की खाल देखें, उनके कम होने के कारण और इन कारणों को दूर करने के उपाय तो जान गए। अब हम

संज्ञ में यह भी बता देना चाहते हैं कि आखिर खेती किस काल तक करना क्या क्या पड़ता है अथवा भारत के किसान किस प्रकार खेती करते हैं। यह हम शुरू में ही बता चुके हैं कि भारत में अधिकतर दो फसलें होती हैं। एक खरीफ की फसल कहलाती है और दूसरी रबी की। पहली प्रसन्न के शुरू से चल कर दिवाली तक जाती है और दूसरी दिवाली से हली तक में तैयार होती है। अस्तु, वरा आरम्भ होने से पहले किसान खेत में जगह जगह खाद की ढेरियाँ लगा देता है। फिर जब पानी दा-तीन दिन बरस कर रुक जाता है तब फौरन खेत को जोत दिया जाता है और खाद का फावड़े से फैला कर पटेला चला कर खेत बराबर कर देते हैं। इसमें बोज मिट्टी में दब जाते हैं और चिड़िया इन्हें खुग नहीं सकती। आपाड़ की फसल पानी बरसने के चार पाँच दिन में हो वो दी जाती है ताकि कहीं जमीन सूख न जाय अथवा पानी फिर बरसने लगे। इस फसल में मकई, बाजरा, कपास, उरद, मूंग, अजगर, अड़ी, तिल, मू, धान इत्यादि चीजें बोई जाती हैं। मकई व ज्वार के खेत अक्सर दो बार जाते जाते हैं। कपास का बीज बोने के पहले खेत तीन चार बार जोता जाता है। अन्य फसल बोने के पहले एक दो बार जोतकर खेतों को छोड़ देते हैं। रबी की फसल में बोज बोने से पहले खेतों को दा तीन बार जोतना और उन पर पाटा चलाना पड़ता है। रबी में गेहूँ, जौ, चना, मटर, सरसों, अलसी इत्यादि चीजें बोई जाती हैं। बोज बोने के दो तरीके हैं। कुछ फसलों के बीज हाथ से खेत में छितरा कर फेंके जाते हैं जैसे बाजरा, उरद, मूंग, चना, मटर आदि के बीज। मक्का, ज्वार, कपास आदि के बीज कूँडा के जरिए या नली के जरिए बोए जाते हैं। कूँड की ववाई में हल के दागा जो कूँड खुदता जाता है, उसमें एक आदमी दाना छोड़ता जाता है। नली की ववाई में हल के पीछे एक लम्बा पनाली दार बौम बधा रहता है। एक आदमी हल चलाता जाता है और दूसरा पाले बौम में दाने छोड़ता चलता है। जिन खेतों की मिट्टी मुरमुनी होती है उसमें कूँड की ववाई की जाती है। जिस जमीन में नीचे नमी और खुरकी होती है उसमें नली की ववाई होती है।

वोवाई के बाद सिंचाई की वारी आती है। अगर पौधों को पानी न मिले तो वे सूख जाय और उपज मारी जाय। यों तो खरीफ की फसल में सिंचाई

की जरूरत नहीं पड़ती क्योंकि बाँवाई के बाद कई महीने तक बरसात होती है। लेकिन जितनी बार वर्षा नहीं होता उस बार खरीफ की फसल में और खरीफ की फसल में तो हमेशा ही सिंचाई करना होता है। जहाँ नदियाँ हैं वहाँ पर तो सिंचाई के लिये नहर खोद दी गई है। लेकिन सब जगह तो नदियाँ होती नहीं। वहाँ पर अधिकतर कुओं से सिंचाई की जाती है। मोट द्वारा कुओं से पानी निकालते तो सब ने देखा होगा। इसमें खनड़े का बड़ा डोला होता है जो कुएँ में रखी बाँध कर डाला जाता है। इस मोट को कुएँ से खींचने का काम बैलों से लिया जाता है। एक आदमी बैलों को दौकता हुआ दूर तक ले जाता है जिससे मोट ऊपर खिच आता है। एक दूसरा आदमी कुएँ पर रहता है जो मोट के ऊपर आ जाने पर उसमें से पानी उड़ेल लेता है। पानी नालियों के द्वारा खेत में पहुँच जाता है। जहाँ किसी तालाब से किसी ऊँचे खेत में पानी पहुँचाना होता है, वहाँ दो आदमी एक दौरी में पानी भर कर ऊपर फेंकते हैं, कहीं कहीं रहट से सिंचाई होती है। इसमें एक चरखी खम्भों के सहारे कुएँ को जगह पर लगाई जाती है। चरखी पर बँधी हुई एक रस्सी में बहुत से डोल बंधे रहते हैं। एक डोल भर कर ऊपर आता है तो दूसरा कुएँ में जाता है। इसमें एक ही आदमी बैल हाँकने का रहता है।

सिंचाई के अलावा किसान को पौधों से पौधों के आसपास उगने वाली घास को खोदकर फेंकना पड़ता है। इसको निराई कहते हैं। यदि ऐसा न किया जाय तो फसल के पौधों का खाना घास बगैर बढ़ा ले क्योंकि वह भी पौधों की तरह जमीन से खाना लेती है। बरसात में तो बड़ी जन्दी घास-फूस जम जाती है। इसलिए किसान दस पन्द्रह दिन में निराई करता है। खरीफ की फसल में निराई की कम जरूरत पड़ती है।

जब फसल के खेत पक कर तैयार हो जाते हैं तो किसान हलिया से काट कर गेहूँ, चना आदि को खलिहान में ले आता है। खलिहान उस लिपी पुनी जगह को कहते हैं, जहाँ फसल साफ की जाती है। फसल के ऊपर बैल चला कर पहले पौधों को मँड़ा जाता है जिससे भूसा और अनाज के दाने अलग हो जायँ। मँड़ने के पश्चात् हवा चलने पर उड़ानी की जाती है। एक ऊँची तिपाई पर से दौरी में भरकर मँड़े हुये अनाज को नीचे

गिराते हैं जिससे हल्का होने के कारण उड़कर भुम दाने से अलग जा गिरती है। इसके बाद किसान अनाज और भुम को अपने घर दो ले जाता है।

ग्रामीण उद्योग-धंधे

खेती के सम्बन्ध में हमने और सब बातों पर विचार कर लिया, परन्तु यह नहीं ख्याल किया कि खेती करने में किमान बारहों महीने काम करता रहता है अथवा उसे कभी खाली भी बैठना पड़ता है। भारत में किसानों को ग्राम-तोरा पर चार महीने में ले जाकर बैठा रहना पड़ता है। दूसरे महीने में तो उसका किसी तरह काम चल जाता है परन्तु बेकारी के समय के लिये वे कुछ बचाकर नहीं रख सकते। अतः उन्हें किसी ऐसे उद्योग में भी आवश्यकता रहती है जो या तो खेती करने में सहायता पहुँचावे अथवा जो खेती पर निर्भर हो। उद्योग-धंधे न तो ऐसे होने चाहिए कि उन्हें छोड़ देने पर उनमें लगी हुई पूँजी जकड़ी पड़ी रहे और न ऐसे हों जिनमें किसी प्रकार की विशेष शिक्षा की ज़रूरत पड़े। उद्योग-धंधे ऐसे होने चाहिए जो मोके-मौके पर चालू किये जा सकें, जैसे चर्खा कातना, लकड़ी व मिट्टी के खिलौने बनाना, तार के पिण्डे बनाना, साबुन बनाना, हाथ का कागज बनाना, चावल कूटना, गुड़ बनाना, दाल दलना इत्यादि। इन दृष्टि से किसानों के लिए एक मुख्य उद्योग पशुपालन का है। गाय-भैंस पालने से न केवल दूध-बी-दही का व्यापार होता है, बल्कि साथ ही साथ गाय-भैंस के बच्चे खेती के काम में आते हैं और गाय का गोबर और मूत्र खाद के काम आता है। बकरी भी पाली जा सकती है। बकरी का दूध पी लिया जाय और बकरे-बकरी बचे जायें। काश्मीर, पंजाब, राजपूताना तथा अन्य ठन्डी जगहों में भेड़ पालने तथा ऊन-उत्पादन का काम लिया जा सकता है। मुर्गी पालने और बच्चे तथा अंडे बेचने का काम भी अच्छा है।

खेती के साथ में कम खर्च के साथ एक छोटा सा बगीचा लगाया जा सकता है जिसमें तरकारी, भाजी या फल फूल पैदा किये जा सकते हैं। यदि किमान फलों को न बेच सकें तो वह बाम को ठेके पर उठा सकता है। यदि गुलाब के फूल लगाए जायें तो गुलाब जल और गुलकन्द बनाना कठिन नहीं होना चाहिये। शहद की मक्खी को पाल कर शहद उत्पन्न किया

जा सकता है। सहज के वृक्ष लगा कर रेशम के कीड़े पाले जा सकते हैं। अंडी की पैदावार वाले प्रदेश में अंडी के कीड़े पाले जा सकते हैं। इनसे प्राप्त रेशम भी बेचा जा सकता है और उससे धागे भी बुने जा सकते हैं। खेती के अयोग्य जमीन पर पेड़ लगा देने से लकड़ी मिल सकती है। इसके अलावा किसान रस्सी बटने, टंकी बनाने, चिट्ठाई बुनने, पखा बुनने आदि का काम भी बखूबी कर सकते हैं। अगर गाँवों में बिजली पहुँच जाय और उपयुक्त छोटी मात्रा के उद्योग धंधे खोल दिये जाय तो किसान अपने बेकारी के समय में इन धंधों में भी काम कर सकता है। अगर उन्हें कुछ शिक्षा तथा सहायता व सलाह मिले तो वे स्वयं भी मिल-कर ऐसे धंधे कर सकते हैं।

अब हमने केवल संक्षेप में यह बताया है कि किसान अपनी बेकारी क दिनों में कौन से काम कर सकता है। अगले अध्याय में हम इन धंधों तथा जूत बनाने का काम, लकड़ी के काम, लोहे के काम, मिट्टी के बर्तन बनाने के धंधे आदि के बारे में और खुल कर बातेंगे।

अभ्यास के प्रश्न

१. शहर में रहने वाले अपने एक मित्र को पत्र लिखो और उसमें अपने गाँव की खरीक की फसलों का वर्णन करो।

२. — तुम्हारे गाँव में इस वर्ष रबी की कौन सी फसलें कितने रकबे में बोई गई हैं? अपना उत्तर देने में पटवारी के कागजों से सहायता ले सकते हो।

३. तुम्हारे गाँव में इस वर्ष गेहूँ की सबसे अच्छी फसल किस किसान ने खेत में डई? उस किसान से यह जानने का प्रयत्न करो कि एक एकड़ में कितना गेहूँ इस वर्ष उत्पन्न हुआ।

४. तुम्हारे गाँव में इस वर्ष गेहूँ की सबसे खराब फसल किस किसान के खेत में डई? उसकी फसल खराब होने के क्या कारण थे?

५. — तुम्हारे गाँव में जिन हल्लों का उपयोग किया जाता है उसका सचित्र चित्र करो। ये हल कितनी गहराई तक जमीन खोदते हैं?

६—गहरी जोताई के लाभ समझाइये और बतलाइये कि आपके गाँव में कौन से नए हल का उपयोग विशेष रूप से लाभदायक होगा।

७—अपने गाँव के सिंचाई के तरीकों का वर्णन कीजिये। उनमें किन्हीं सुधारों की आवश्यकता है ?

८—गोबर की खाद का महत्व समझाइये। गोबर की उपली बनाकर जला देने से जो हानियाँ हो रही ह, उनको बतलाइये।

९—आपके गाँव में फसलों की हेरफेर किस प्रकार की जाती है ? इन प्रथा में क्या कोई सुधार की आवश्यकता है ?

१०—खेतों के दूर-दूर पर छोटे-छोटे टुकड़ों में बटे हुए होने से जहाँ हानियाँ होती हैं उनका दिग्दर्शन कराइये।

१—अपने गाँव में सब से बड़े खेत का रकबा और गवने छोटे खेत का रकबा लिखिये। साधारणतः कितने एकड़ रकबे के खेत आपके गाँव में अधिक है ?

१२—आपने गाँव में ऐसे किसानों का पता लगाइये जिनके पास ४ एकड़ से कम रकबे के खेत हों ? उनकी एक वर्ष की आमदनी का पता लगाइये और यह जानने का प्रयत्न कीजिये कि वे अपना जीवन निर्वाह बराबर कर पाते हैं या नहीं ?

१३—आपके गाँव के किसान उत्तम बीज प्राप्त करने के लिये किस प्रकार और कितना प्रयत्न करते हैं ? यदि सब किसान उत्तम बीज बोने लगें तो आपके गाँव की फसलों की उपज में कितनी वृद्धि हो सकती है ?

१४—अपने गाँव की किसी फसल की मंडाई का वर्णन कीजिये ?

१५—आपके गाँव में कृषि की दशा क्यों खराब है ? उसे सुधारने के लिए आप क्या उपाय करेंगे ?

१६—आपके गाँव के किसान प्रति वर्ष साधारणतया कितने दिन बेकार रहते हैं ? इन दिनों में क्या काम करते हैं ?

१७—अपने गाँव के घरेलू उद्योग-धंधों का वर्णन कीजिए। गाँव वालों के लिए उनका क्या महत्व है ?

पाँचवां अध्याय

घरेलू और स्थानीय उद्योग-धंधे (Cottage Industries)

घरेलू उद्योग-धंधे की आवश्यकता

खेती पर तो हम पूरी तरह विचार कर चुके। किन्तु केवल खेती से उत्पन्न वस्तुओं से हमारा काम न कभी चला और न चलेगा। पहले हमारे देश के उद्योग-धंधों का माल योरोप तक में बिकता था। परन्तु ईस्ट इण्डिया-कम्पनी की उन्नीं नीति तथा इंगलैंड में बड़े-बड़े कारखाने खुल जाने के कारण हमारे कारखानों की धक्का पहुँचा। अतएव वे गाँव और खेती की ओर झुक पड़े। अधिक खेती के द्वारा इतने अधिक लोगों का पालन न हो सका और उनका रहन-सहन गिर गया। तभी से बराबर अन्य उद्योग धंधों और खासकर ग्रामीण, घरेलू उद्योग-धंधों की आवश्यकता बनी रहती है।

वैसे तो हमको अनेक तरह का अन्य माल तैयार करना पड़ा है अर्थात् दस्तकारी और उद्योग धंधों का कार्य अख्तियार करना पड़ता है। भारत में कुछ बड़े-बड़े कारखाने खुले हैं। कुछ लोगों का कहना है कि अगर इन कारखानों की संख्या बढ़ाई जाय तो लोगों को काम भी मिले और देश में मिलों से तैयार माल भी मिले। परन्तु पिछले सौ साल में जितने बड़े उद्योग-धंधे खुले हैं उनमें बीस लाख से अधिक मजदूर काम नहीं करते। इन उद्योग-धंधों को बढ़ाने के रास्तों में अनेकों कठिनाइयाँ हैं और अगर वे सब हल भी हो जायँ तो हमारा मतलब पूरा नहीं होगा। खेती से रो रो कर किसी तरह रोजी कमाने वाले बहुत से किसानों को इन धंधों में काम नहीं मिल सकेगा। इसलिये छोटी मात्रा के और खासकर घरेलू उद्योग-धंधे ही उनके लिए उपयुक्त हैं। इनके अलावा कारखानों में मिलने वाली मजदूरी इतनी अधिक नहीं है कि गाँव के लोग शहर की तकलीफों और खर्च को सहने के लिए तैयार हो जायँ और फिर परदा प्रथा के कारण सभी औरतें बाहर जा कर काम नहीं कर सकतीं। उनके लिए घरेलू उद्योग-धंधे ही सब से उत्तम "

जात-पात के भेद के कारण जुलाहे, कुम्हार, चमार, लोहार आदि अपने पुरखों का ही काम करते हैं। और जैसा कि पिछले अध्याय में बताया था, चार छे महीने निठले बैठे रहने वाले किसानों के लिये यही धंधे ठीक हैं।

हमारे स्थानीय उद्योग-धंधे

हिन्दोस्तान में प्रचलित घरेलू उद्योग-धंधे अनेकों हैं। लाह जो कि एक प्रकार के वृक्ष का गाँद है तथा जो वारनिश करने और मोहर लगाने के काम में आती है अब बड़े पैमाने में तैयार होने लगी है। पहले यह घरों में ही साफ की तथा बनाई जाती थी। शहद और मोम की तरफ लोगों का अधिक ध्यान नहीं गया है तब भी कुछ जंगली और पहाड़ी कौमें इस काम को करती हैं। साबुन फैक्टरी में भी बनता है और घरों में भी बनाया जाता है। बाजार में आपको घरेलू बने हुये बहुत से साबुन मिल सकते हैं। हाथी-दाँत की कारीगरी में तो भारत के शिल्पी मशहूर हैं। हाथी दाँत का जितना बढ़िया और उत्तम काम होता है वह प्रायः अफ्रीका के हाथो दाँत पर होता है। दिल्ली मुर्शिदाबाद, मैसूर, ट्रावनकोर वगैरह हाथी दाँत की कारीगरी के लिये मशहूर हैं। रेशमी कपड़े का काम अब बहुत कम हो गया है। जापानी और बनावटी रेशम के कारण भारत का यह धंधा बिल्कुल मारा गया। तब भी भागलपुर आदि स्थानों में अब भी रेशमी कपड़ा हाथ से तैयार किया जाता है। उत्तरी हिन्दुस्तान और खास कर काश्मीर में उम्दा और बढ़िया ऊनी कपड़े बनते हैं। हालाँकि उन के कारखाने खुल गये हैं तब भी मोटे कम्बल, दरियाँ, पट्टी और पश्मीना बनता है। काश्मीर के शाल बहुत मशहूर हैं। कारचोबी और कसीदे का काम उत्तर में बड़ी उन्नत दशा में है। तम्बाकू, काली मिर्च और इलायची साफ करना, सिरका डालना, सत निकालना, डबल रोटी और बिस्कुट बनाना वगैरह वगैरह काम घरेलू उद्योग-धंधों में गिने जाते हैं। अब हम युक्तप्रान्त के कुछ उद्योग-धंधों का वर्णन करते हैं।

बरतन बनाना

इस प्रान्त में बरतन बनाने का काम बहुत होता है। पीतल, ताँबा
आ० अ० शा०—४

कसकुट और लोहा के बड़े अच्छे-अच्छे बरतन बनाये जाते हैं। बरतन बनाने का काम करने वालों को ठठेरा कहते हैं। मुरादाबाद के कलई के बरतन बड़े मशहूर हैं। अब तो बरतन बनाने का काम बहुत बड़े पैमाने पर किया जाने लगा है। धनी आदमी सैकड़ों बरतन बनाने वालों को नौकर रख लेते हैं और खूब तादाद में बरतन तैयार करते हैं। यह तो हुआ धातु के बरतनों का हाल। अब मिट्टी के बरतनों के बारे में सुनिये। कुम्हार और कुम्हार के चाक से तो हर कोई वाक्फि होगा। तुमने कुम्हार को अपनी पत्थर की चाक घुमा कर उस पर रखी मिट्टी से सकोरा, करई, हडिया, मटकी, घड़ा बनाते तो देखा ही होगा। वह किस सफाई के साथ अपनी उँगलियों को नचा कर अच्छी अच्छी चीजे बना लेता है। हर एक गाँव में कुम्हार होता है। बनारस की तरफ मिट्टी के चिकने काले बरतन बनाए जाते हैं जो बड़े नफीस होते हैं।

चटाई और टोकरा बनाना

बरतन के अलावा कलकत्ते की तरफ बड़ी उम्दा चटाइयाँ बिनी जाती हैं। ये चटाइयाँ खूब पतली बिनी हुई रहती हैं। संयुक्त प्रान्त में अक्सर ताड़ के पत्तों की चटाइयाँ बुनी जाती हैं। ये कुछ भद्दी और कमजोर होती हैं। चूँकि इस समय बिनाई का जिक्र आगया है तो गाँवों में टोकरी, डालियाँ आदि बनाने का हाल भी बता देना चाहिये। ये डलवे, टोकरी भाऊ के पेड़ों से, सरकंडो तथा बाँस की तीलियों से बनाई जाती हैं। मज़दूर के टोकरे, भूसा व उपली रखने के टोकरे भाऊ और सरकंडों से बनाये जाते हैं। पतले-पतले भाऊ के डंठल भिगो कर लचदार बना लिये जाते हैं। इन्हीं से डलिया बनाते हैं। बाँस की टोकरी बनाने में पहले बाँस को चीर कर चौड़ी पतली-पतली खपाच बना लेते हैं। पहले कुछ मोटी और चौड़ी खपाचियों का आड़ा समझ कर रख लेते हैं। उसके बाद दूसरे डंठलो का चारों ओर घुमा कर इस तरह कसते जाते हैं कि वे अलग अलग न हो सकें। सरकंडों से टोकरी तथा मोड़े आदि बनाये जाते हैं।

गुड़ बनाना

गाँवों में किसान गन्ने या ऊख से रस निकालते हैं। इस रस का गुड़

बनाया जाता है। गुड़ बनाने के लिये रस को बड़े-बड़े कड़ाहों में उबालते हैं। हमारे यहाँ के किसान गुड़ बनाने में सफाई का खयाल नहीं रखते। तिनके पत्तियाँ आदि सब रस के साथ गुड़ में रहने देते हैं। इनके अलावा जो रस के ऊपर का मैल होता है उसे भी ठीक से नहीं निकालते। मेरठ, बनारस और कानपुर का गुड़ खूब अच्छा और साफ समझा जाता है।

चर्खा कातना और कपड़ा बुनना

किसान सहायक परिवारों का दूसरा सहायक धंधा है सूत की कताई और कपड़े की बुनाई। महात्मा गाँधी का कहना है कि आर्थिक दृष्टि से चर्खे और खहर का बहुत महत्व है। इस काम में अब भी बीस लाख जुलाहों और सूत कातने वालों को काम मिलता है। सूत कातने का काम ऐसा है कि किसान को जब फुरसत हो तभी कर सकता है। एक चरखे में कोई ज्यादा पूँजी भी नहीं लगती। यदि चरखे पर सात आठ घंटे काम किया जाय तो कातने वाला अच्छी तरह प आने रोज कमा सकता है। सूत कातने से एक और फायदा यह है कि इसी सूत से किसान अपने घरवालों के पहनने के लिये कपड़े बुन सकता है। सचमुच सूत की कताई और कपड़ों की बुनाई का काम ऐसा है कि दरिद्र किसानों की दरिद्रता बहुत हद तक कम हो सकती है। पुराने समय में तो ढाका की तरफ ऐसा पतला सूत काता जाता था कि उसके बिने हुये मलमल के थान एक छोटी डिबिया में आ जाते थे। कहते हैं कि जहाँगीर को किसी ने एक छोटी अँगूठी में नग की जगह था न रख कर भेंट किया था।

कुछ लोगों का कहना है कि हाथकघे पर कपड़ा बुनने का धंधा मिलों के मुकाबिले में नहीं ठहर सकता, किन्तु उन्हें यह जान कर आश्चर्य होगा कि इस गिरी हुई अवस्था में भी हाथकघे लगभग २५ लाख बुनकरों को काम देते हैं और देश में जितने कपड़े की खपत होती है उसका एक चौथाई कपड़ा हाथकघे पर तैयार होता है। फिर भी इस धंधे की दशा अच्छी नहीं है। इसके मुख्य कारण यह है:—जुलाहे निर्धन हैं। उनके पास पूँजी नहीं होती, उसे सूत इत्यादि उधार लेना पड़ता है और इस कारण वह महान् चंगुल में फँस जाता है। (२) उसके कर्घे तथा अन्य औजार बर्दग

उनमें उन्नति होने की आवश्यकता है। (३) जुलाहा अधिकतर पुरानी डिजाइन ही तैयार करता है। नये डिजाइन जिनकी बाजार में माँग है उसको सीखने की जरूरत है। (४) जुलाहे को अपने माल को बेचने की न तो कला ही आती है और न उसके पास विज्ञापन देने तथा कन्येसर इत्यादि रखने की सुविधाये ही हैं। आवश्यकता इस बात की है कि सहकारी समितियों के द्वारा माल विक्राने का प्रबन्ध किया जावे।

पशु-पालन

जैसा कि पिछले अध्याय में बताया गया था, किसानों के लिये एक बड़े महत्व का उद्योग है पशु-पालन। गाँव में बहुत से लोग गाय पालते और दूध-भी बेचते हैं, लेकिन न तो वे रोजगार के ढंग से जानवरों की सेवा करते हैं और न रोजगार के ढंग से अपना माल ही बेच पाते हैं। इसी से देखा जाता है कि किसानों को अक्सर गायों के पालने से कोई लाभ नहीं होता। कहने को हम लोग गाय को गौ माता कहते हैं, लेकिन हमारे किसान न तो उन्हें अपनी माँ की तरह खाना देते हैं और न अच्छी जगह में उन्हें रखते ही हैं। इसके अलावा गाय-भैरों की सफाई नहीं रखी जाती, फलस्वरूप ढोरों में अनेक रोग फैल जाते हैं और बहुतों की अकाल मौत हो जाती है। इन्हीं कारणों से ढोरों की नसलें कमजोर होती जा रही हैं। पहले तो किसान गाय खरीदने में गलती करते हैं। गाय दुधार होनी चाहिये। इसके लिए यह जरूरी नहीं है कि गाय मोटी हो। गाय की खाल पतली तथा रोएँ नरम और चिकने होने चाहिये। थन सीधे हों, न बहुत छोटे हों न बहुत बड़े। काली, लाल और भूरे रंग की गायें अक्सर अच्छी होती हैं। *

दूध का काम

गाय पालने से बहुत फायदे होते हैं। गाय का बछड़ा बड़ा होकर खेत जोतने के काम आता है। गाय का गोबर, उपली, खाद और घर लीपने में काम आता है। गाय के दूध के बगैर तो हमारा काम ही नहीं चल सकता। कोई दूध पीता है। कोई उसका दही, मक्खन या मलाई-रबड़ी बनाकर खाता है। दूध का खोया बनाया जाता है। हम आगे किसी अध्याय में बतावेंगे।

एक दूध क्यों ताकतवर होता है। ताकतवर होने के कारण ही तो छोटे-बच्चों को गाय का दूध पिलाया जाता है, लेकिन दूध से बीमारियाँ भी, बहुत सी फैलती हैं। दूध की सफाई में जरा भी लापरवाही करने से वह खराब हो जाता है। जरा भी सफाई की कमी होने से बैक्टीरिया नाम का एक कीड़ा दूध में पैदा हो जाता है, इससे दूध फौरन बीमारी का घर बन जाता है। हमारे ग्वाले दूध दुहने में बड़ी लापरवाही दिखाते हैं। न तो वे कभी थन को धोते हैं न अपने हाथों को दुहने के पहिले साफ करते हैं और न साफ-सुथरे कपड़े ही पहनते हैं। इसके अलावा बकड़े के दूध पी चुकने के बाद भी थन का धोना आवश्यक है। दुहने वाले को न तो खाँसने छींकने की आदत होनी चाहिये और न कोई छूत का ही रोग हो। दुहने की जगह पर गर्द-गुबार न उड़ना चाहिये। दूध का बरतन साफ मजा हुआ होवे और जब दूध बेचने के लिये ले जाया जावे तो बरतन हमेशा साफ कर लेना चाहिये। यह तो हुई दुहने के सम्बन्ध की बातें। अब दूध बेचने का तरीका सुनिये। हमारे देहाती भाई अगर सेर भर दूध होता है तो पाव डेढ़ पाव पानी मिला देते हैं। यही नहीं, विज्ञान के विद्वानों ने एक ऐसी मशीन निकाली है जिसमें डाल कर घुमाने से कच्चे दूध में से मक्खन अलग निकल जाता है। बचे हुये दूध को मक्खनिया दूध कहते हैं। आजकल देहाती इस प्रकार पहिले से ही मक्खन निकाल कर तब दूध को बेचने लाते हैं। ऐसा दूध किसी काम का नहीं होता। हमारे हलवाई इसी दूध को खीद कर बेचते हैं। इसी का दही जमाते हैं। चूँकि मक्खनियों दूध पाला और सार रहित सा मालूम पड़ता है इसलिये इसका गाढ़ा बनाने के लिये थोड़ा सा अरारोट या तीखुर डाल देते हैं। अरारोट पड़े दूध के दही के ऊपर मोटी मलाई जम जाती है। यह काम शहर में काफी किया जाता है। अगर हम चाहते हैं कि अधिक किसान दूध बेच कर कुछ पैसे कमा सकें तो उन्हें दूर स्थित शहरों और नगरों में बिना बिगड़ा दूध ले जाने की सुविधा जरूरी है।

मक्खन और घी

दूध से मक्खन और घी भी बनाया जाता है। ऊपर हमने मक्खनिया दूध का हाल बताते समय कच्चे दूध से मक्खन निकालने की एक तरकीब

बताई है। कहीं दूध से मक्खन निकालने की जिस मशीन का जिक्र ऊपर आया है वह अभी हमारे गाँवों तक नहीं पहुँची है। शहर में ही उनका उपयोग किया जाता है। तुमने पिछली बार जो मक्खन मोल लिया होगा वह इसी तरह बनाया गया था। दूध को आग पर पका कर मथने से भी मक्खन निकल आता है; लेकिन शहर वाले पकाने के भागड़े में नहीं पड़ते। गाँवों में जो घी तैयार किया जाता है उसके लिये पहले दूध को उबालते अथवा पकाते हैं। पके हुये दूध में थोड़ा सा पहले का रखा हुआ दही डाल कर रख देने से सात आठ घंटे में दूध जम कर दही बन जाता है। इस दूध को मथानी से खूब मथते हैं। मथने से मक्खन ऊपर तैरने लगता है और निकाल लिया जाता है। मक्खन निकालने के बाद जो दूध सा पदार्थ बचा रहता है उसे मट्ठा कहते हैं। मथ कर निकाले मक्खन को नैनू भी कहते हैं। नैनू कच्चे दूध से निकाले मक्खन से कहीं अधिक अच्छा और स्वादिष्ट होता है।

मक्खन को अच्छी तरह गरम करके घी बनाया जाता है। मक्खन में दूध का कुछ भाग बना रहता है। औटाने पर वह जल जाता है और घी तैयार हो जाता है। मक्खन एक-दो दिन से अधिक नहीं ठहरता। दूध का भाग रहने से उसमें बदबू आने लगती है और वह खराब हो जाता है। इसलिये मक्खन ताजा खाया जाता है। घी बनाने में खराब होने वाला भाग पहले ही जल जाता है। इसलिये घी बहुत दिनों तक रहता है। घी और मक्खन दोनों शरीर को ताकत पहुँचाते हैं। लेकिन ये बहुत अधिक हजम नहीं किये जा सकते। मक्खन को लोग घी से अधिक लाभदायक मानते हैं। आजकल बेचने वाले घी में नारियल या दूसरी चीजों का तेल भी मिला देते हैं। इसके अलावा आजकल तरह-तरह के बनावटी घी चल निकले हैं। जैसे घास का घी, कोकोजाम इत्यादि। बहुत से लोग मक्खन को अच्छी तरह नहीं तपाते हैं बल्कि आधा पक्का आधा कच्चा ही बेचते हैं। इसीलिये तुमने कभी किसी को घी के बारे में कहते सुना होगा कि घी में मट्ठा है। आजकल शहर में अच्छा घी मिलता ही नहीं। हाँ गाँव में अच्छा घी मिल जाता है। इसलिये आजकल घी मोल लेते समय उसे अच्छी तरह देख कर लेना चाहिये।

रस्सी बनाना

तुमने देखा होगा कि गाय दुहते समय ग्वाला अक्सर गाय के पिल्ले पैर बाँध देता है। पर किस चीज से पैर बाँधे जाते हैं ? इसके अलावा कुयें से पानी किससे निकाला जाता है ? खेतों की सिंचाई के लिये जो मोट चलाई जाती है वह किससे खींची जाती है ? इस तरह के सवालों के जवाब में तुम फौरन कह दोगे कि ये सब काम रस्से से होते हैं। किसी में रस्सी लगी होती है और किसी में रस्सा। पतली डार को रस्सी कहते हैं और मोटी को रस्सा। किसानों का तो बिना रस्सी-रस्से के काम ही नहीं चल सकता। घर में, खेत में, गाड़ी की जाली बनाने में, बोझ बाँधने में उसे रस्सी की जरूरत पड़ती है। क्या तुम बता सकते हो कि ये रस्सी-रस्से किससे बनते हैं और कैसे बनते हैं ? अच्छा सुनो, मूँज के, घास के, नारियल के जटाओं के, सन के, सरपत के तथा और-और चीजों के भी रस्से बनाये जाते हैं। मूँज की महीन बटी रस्सी को बांध कहते हैं और खटिया बुनने के काम में आती है। घास और मूँज की रस्सी बनाने के पहले उसे पानी में भिगोते हैं। अच्छी तरह भीग जाने पर इन्हें खूब कूटते हैं। जब उनके डोरे-डोरे अलग हो जाते हैं तब उनमें से चार-चार छै-छै रेशे हाथों में लेकर ऎँठते और आपस में मिलाते चलते हैं। एक लम्बी रस्सी तैयार हो जाने पर उसे दोहरा-तेहरा करके और मोटा व मजबूत बना लेते हैं। सन की रस्सी बनाने के लिये पहले सन के पौधों को सड़ा कर सुखाया जाता है, तब सन अलग कर लेते हैं। और उसे बट कर रस्सी तैयार करते हैं। हमारे यहाँ के किसान सन को गंदे पानी में सड़ाते हैं जिससे वह मैला हो जाता है। इसके अलावा हमारे यहाँ के सन में कूड़ा भी होता है। फिर वे यों ही सन के लच्छे बना डालते हैं जिससे रेशों के उलझ जाने पर उन्हें सुलझाने में बड़ी मेहनत पड़ती है। मूँज की रस्सी मजबूत होती है और पानी पड़ने पर बिगड़ती नहीं। लेकिन सन की रस्सी पानी में रहने से ठीक नहीं रहती। नावों को बाँधने के लिये जा बड़े-बड़े रस्से बनाये जाते हैं वे मूँज के ही होते हैं।

लकड़ी का काम

रस्सी के अलावा दूसरी चीज है लकड़ी, जिसके बिना किसानों का काम

नहीं चल सकता। गाँव में बड़ई का होना जरूरी है। हल, जुआ, पालकी, खिड़की, दरवाजा बड़ई द्वारा ही तैयार होते हैं। डीवट, खड़ाऊँ और खुरपा, कुल्हाड़ी व बसूला के बेंद भी वही बनाता है। लकड़ी के जो कुछ भी काम बन सकते हैं वे बड़ई की ही दस्तकारी के गमूने हैं। लेकिन बड़ई एक ही दो चीजों के बनाने में अपना हुनर दिखाते हैं। जो सब बातों में अपनी टाँग अड़ाते हैं वे किसी बात में निपुण नहीं हो पाते। गाँव के बड़ई को हल तथा बैलगाड़ियाँ तो जरूर ही बनानी पड़ती हैं। कोई बड़ई हल बनाने में होशियार होता है; कोई गाड़ी बनाने में। इसके अलावा उत्तरी हिन्दोस्तान में लकड़ी पर चिताई का काम देखने में आता है। कारीगर लकड़ी पर ऐसे उम्दा-उम्दा बेल-बूटे बनाते हैं तथा ऐसी नक्काशी करते हैं कि देखते ही बनता है। इसमें शीशम, शाल व आबनूस की लकड़ी अधिकतर काम में लाते हैं। नागपुर तथा अन्य जगहों में चिताई का काम बहुत अच्छा होता है। बनारस की तरफ लकड़ी के खिलौने बनाकर उस पर हल्के रंग से चित्रकारी की जाती है और फिर एक खास किस्म की वारनिश कर दी जाती है। ये खिलौने काफी अच्छे होते हैं।

लोहार का काम

बड़ई के बाद गाँव के लोहार का नम्बर आता है। हल का फाल, कुल्हाड़ी का लोहा, खुरपा, बसूला आदि चीजों के बनाने के लिये प्रत्येक गाँव में एक लोहार का रहना जरूरी रहता है। लोहार लोहे को आग में तपाता है। फिर उस लोहे को चौड़े ऊँचे टुकड़े पर जिसे धन कहते हैं हथौड़े से पीट कर जिग शवल का चाहता है बना लेता है। लेकिन अब तो लोहे के बड़े-बड़े कारखानों के खुल जाने से लोहार का बहुत काम घट गया है। तब भी लोहार देहात में अपना स्थान रखता है।

लोहार की तरह ही तेली का हाल है। गाँव में तेल जलाने के काम में आता है। तिल्ली का तैल जलाया भी जाता है और खाया भी। सरसों, अलसी, महुआ आदि और भी कितनी चीजों का तेल निकलता है। गाँव में एक तेली अवश्य होता है। तेल पेरना और बेचना ही उसका काम होता है। तिल्ली कोटहू में पेनी जाती है। पत्थर की एक बड़ी सी ओखली जमीन

में गड़ी होती है। ओखली के पास ही एक लकड़ी का खम्भा रहता है। उसमें लकड़ी का बड़ा सा कोल्हू बाँध देते हैं, जिसमें वह सधा रहै। ओखली में तिल्ली डालकर बैल को कोल्हू के साथ ओखली के चारों ओर घुमाते हैं। ऐसा करने से तिल्ली कोल्हू के नीचे पिसती है और उसमें तेल निकलता है। पत्थर में छेद होता है तेल उस छेद से जमीन में रक्खे हुये एक बर्तन में गिरता जाता है। तेल निकल जाने पर तिल्ली की खली हो जाती है। खली जानवरों को खिलाई जाती है, जिससे वे दूध अधिक दें। अब तो कहीं-कहीं आयल एंजिन मशीनों द्वारा तेल निकाला जाता है। इसके चालू करने में खर्च तो ज्यादा जरूर होता है लेकिन देशी कोल्हू में जितना तेल दिन भर में निकलता है उतना तेल एंजिन के जरिये आधा घंटे में निकल आता है।

जूते बनाना

जिस तरह गाँवों में जुलाहा, बड़ई, लुहार आदि रहते हैं, वैसे ही चमार भी रहता है। अगर इनमें से कोई भी गाँव छोड़ दे तो सब लोगों को तकलीफ होगी। चमार हमारे लिये नए-नए जूते बनाता है और फटे-पुराने जूतों की मरम्मत करता है। गाँव का चमार खेती भी करता है और खेती से फुरसत मिलने पर जूता बनाने का काम कर लेता है। यों तो गाँव का चमार घोड़ों पर की काटी और बैल हाँकने के लिये चमड़े के तस्मे बगैरह बनाता है। शहरों में चमड़े के बकम और मशक बगैरह बनाए जाते हैं। लेकिन गाँव का चमार अधिकतर जूते ही बनाता है। तुमने देहाती जूता तो देखा ही होगा। शहरों में अब पश्चिमी ढंग के फैशनदार जूते के चल जाने से देहाती जूतों को कोई नहीं पूछता। लेकिन अंग्रेजों के आने के पहले सब कोई देहाती जूता पहनते थे। हमारा देहाती जूता बड़ा मजबूत तथा अच्छा होता है। इससे पहले तो पैर में गर्मी नहीं पहुँचती। फिर यह जल्दा पहना और उतारा जा सकता है। चमड़ों को छूने से हाथ खराब हो जाते हैं और हाथों का धोना पड़ता है। ये विचार पहले थे पर अब उठते जाते हैं, इसीलिये ये जूते ऐसे बनाए जाते हैं कि इन्हें पहनने और उतारने में हाथ न लगाना पड़े। जूता गाय, बैल आदि जानवरों की खाल का बनाया जाता है। जानवर के मर जाने पर चमार उसकी खाल को निकाल लाते हैं। खाल को पहले धूप में

अच्छी तरह सुखाते हैं जिससे वह खूब कड़ी हो जाती है। इसके बाद खाल के रोएँ साफ कर दिये जाते हैं। फिर खाल को चमकाते हैं। जूता बनाते समय पैर का नाप लेकर चमार उसी तरह हमारे पैर का जूता तैयार कर देता है जिस तरह दर्जी नाप लेकर हमारा कोट या कमीज सी देता है। अब तो जूता बनाने के बड़े-बड़े कारखाने खुल गये हैं, जिनमें बड़े उम्दा-उम्दा सस्ते जूते बनाये जाते हैं। भारतीय कारखानों में बने जूतों में कानपुर आगरा या बाटा कम्पनी (कलकत्ता) के जूते मशहूर हैं। अब हम कुछ ऐसे उद्योग-धंधों का वर्णन करेंगे जो गाँवों में खोले जा सकते हैं।

फल, फूल और तरकारी पैदा करना

हमने पिछले अध्याय में फल, फूल और तरकारी भाजी के बाग़ लगाने के काम की चर्चा की थी। यदि किसान उपज की खेती के साथ एक छोटा सा बाग़ लगा ले तो उसे फल और तरकारी तो खाने को मिलेंगी ही, उन्हें बेच कर वे कुछ पैसे भी पा सकेंगे। फूलों से किसान का घर तो मश्क ही उठेगा उससे खुशबूदार जल, इत्र तथा गुलाब से गुलकंद बनाया जा सकता है। कुछ फूल के पेड़ बंजर भूमि में भी फूल सकते हैं और तरकारी की बाटिका में किसान के घर का गन्दा पानी काम आ सकता है। परन्तु यदि बाटिका किसान के घर से मिली नहीं है तो गन्दे पानी को बाटिका तक ढोना पड़ेगा। फूलों से पूर्ण लाभ उठाने के लिये किसान को उचित शिक्षा, ट्रेनिंग तथा सहायता देने की आवश्यकता पड़ेगी। परन्तु किसान गाँव में फल व तरकारी किसके हाथ बेचेगा? अगर वह किसी शहर के पास है तब वह उसे शहर जाकर अथवा शहर के बिकेताओं के हाथ उन्हें बेच देगा। अगर ऐसा नहीं है तब बिना यातायात के प्रबन्ध के वह पैसे नहीं कमा सकता।

शहद का धंधा

ऊपर फूलों का जिक्र आया था। फूलों के बीच अगर शहद की मक्खी पाल कर छूता लगवाया जाय, तो शहद पैदा किया जा सकता है। लेकिन छूते के लिये फूल की बाटिका आवश्यक है। अब तो लकड़ी के ऐसे बक्स मिलते हैं कि उनमें शहद की मक्खियाँ पाल कर शहद निकालने के लिए न तो मक्खियों को उड़ाना पड़ता है और न छूते को तोड़ना। इस

धन्धे में भ्रंश भी कम होता है, पूँजी भी कम लगती है और पूँजीगत भी कम धिरती है। शहद प्रति पौष्टिक भोजन भी है। परन्तु इस धन्धे की सफलता के लिये भी किसान को कुछ शिक्षा तथा बिड़ी में सहायता आवश्यक है। दक्षिण भारत में डाक्टर स्पेंसर हैच तथा दूसरे ईसाई मजदूर वालों की मेहनत के कारण गाँवों में इस धन्धे का काफी प्रचार हुआ है।

अन्य उद्योग-धन्धे

ऊपर बताए गए कुछ घर उद्योग-धन्धों के अलावा अभी बहुत से और धन्धे हैं। मध्यप्रान्त में वर्धा नगर में एक “अखिल भारत ग्राम उद्योग संघ” है। उसका उद्देश्य गाँवों की हालत सुधारना है। उसकी देख-रेख में नीचे लिखे ग्राम उद्योग चल रहे हैं :—

धान से चावल निकालना, आटा पीसना, गुड़ बनाना, तेल निकालना, शहद की मक्खियाँ पालना, मछली पालना, दूध का काम, कंबल बनाना, रेशम का माल बनाना, सन की कताई और बुनाई, कागज बनाना, चथाई बनाना, कधियाँ बनाना, पत्थर की कारीगरी, साबुन बनाना, चमड़ा तैयार करके उससे तरह-तरह की वस्तुएँ बनाना इत्यादि।

घरेलू उद्योग-धन्धे और सरकार

हमने इस अध्याय में कुछ खास उद्योग-धन्धों के बारे में तो खुल कर बताया है और कुछ के बारे में संक्षेप में हाल कह दिया है। जिन धन्धों को अच्छी तरह बनाया है उनका गाँव से अधिक सम्बन्ध है।

इसका यह मतलब नहीं है कि गाँव में गाँव से अधिक सम्बन्ध रखने वाले धन्धों की ही उन्नति की जाय। अगर सरकार पहले से योजना बना कर गाँवों में कृषि के साथ उद्योग-धन्धों को व्यवस्था और उन्नति करे तो घरेलू उद्योग धन्धे द्वारा साबुन, कागज, कंघी, बटन, सुरक्षित छिले फल, हाथ के बिये कपड़े आदि अनेकों पदार्थ तैयार किये जा सकते हैं। वह गाँवों के लिये उपयुक्त धन्धे चुन सकती है। उनको चालू करने की व्यवस्था कर सकती है। किसनो को उनमें शामिल होने के लिये प्रोत्साहन, शिक्षा, और आर्थिक सहायता दे सकती है। धन्धों के लिये यातायात के साधनों की उन्नति कर सकती है और माल की बिक्री सुलभ कर सकती है। अगर गाँवों

जैसे बिजली भी पहुँच जाय तो कार्य-क्षमता और कार्य-क्षेत्र अधिक बढ़ जाय । सरकार ही यह कार्य सम्पन्न कर सकती है । प्रांतीय तथा दिल्ली की केंद्रीय सरकारें ऐसी कोशिश कर रही हैं ।

अस्तु, हम खेती और घरेलू उद्योग-धन्धों के बारे में काफ़ी जान गए । इनके जरिए बहुत सी वस्तुएँ उत्पन्न होती हैं । अब प्रश्न उठता है कि जो वस्तुएँ उत्पन्न की गई हैं उनको काम में किस प्रकार लिया जाय । अर्थात् वस्तुओं का किस तरह से उपभोग किया जाय । उपभोग के सम्बन्ध की सारी बातों पर हम अब अर्थशास्त्र के उपभोग विभाग के अन्दर विचार करते हैं ।

अभ्यास के प्रश्न

१—अपने गाँव के किसी किसान से पूछकर लिखिये कि प्रति मास उसे खेती सम्बन्धी कौन-कौन से काम करने पड़ते हैं । किन महीनों में उसे सबसे अधिक काम रहता है और किन महीनों में उसे सबसे कम ?

२—आपके गाँव के किसान साधारणतः वर्ष भर में कितने महीने बेकार रहते हैं ? इस बेकारी के समय में आप इनको कौन सा काम करने की सलाह देंगे ?

३—आपके गाँव में आजकल प्रति मास कितना सूत काता जाता है ? यदि गाँव के सब बेकार स्त्री-पुरुष प्रति दिन चार घंटा सूत कातने लगें तो एक मास में कितना सूत तैयार हो सकता है ?

४—आप के गाँव में या आसपास के गाँवों में जुलाहों की कितनी संख्या है ? ये जुलाहे हाथ के कते सूत का कहाँ तक उपभोग करते हैं ।

५—जुलाहों की आर्थिक दशा का वर्णन कीजिये और उनकी दशा सुधारने के उपाय बतलाइये ।

६—आर्थिक दृष्टि से खहर प्रचार की आवश्यकता समझाइये ।

७ अपने गाँव के कुम्हार की आर्थिक दशा का वर्णन कीजिये, वह अपनी आमदनी किम प्रकार बढ़ा सकता है ?

८—युक्तप्रांत में पतल के वरतन किन स्थानों में अच्छे और सस्ते मिलते हैं ? मुरादाबाद किस प्रकार के वर्तनों के लिए प्रसिद्ध है और उस उद्योग की वर्तमान दशा कैसी है ?

६—आप के जिले में गुड़ किस प्रकार बनाया जाता है ? इस बात में गुड़ कहाँ अच्छा और सस्ता बनता है ?

१० - शहर में दूध का क्या भाव है ? गाँवों में दूध किस दर पर मिलता है ? दोनों दों में और के क्या कारण हैं ?

११ - शुद्ध दूध की पहिचान लिखिये । शहर में शुद्ध दूध सस्ते भाव देने के लिए योजना तैयार कीजिये ।

१२ - घी में कौन सी वस्तुएँ प्रायः मिलाई जाती हैं ? शुद्ध घी की क्या पहिचान है ?

१३—आपके गांव में चमारों की क्या दशा है ? उनकी दशा किस प्रकार सुधारी जा सकती है ?

१४—अपने गाँव के मुख्य घरेलू धंधों का वर्णन कीजिये । उनमें कौन-कौन सी बुराइयाँ हैं ? उन्हें आप कैसे दूर करिष्गा ?

१५ - यदि आपको ५००) दे दिया जाय तो आप उसे अपने गाँवों के घरेलू उद्योग-धंधों को सुधारने के लिए किस प्रकार खर्च करेंगे ।

१६—सरकार योजना बना कर किस प्रकार घरेलू उद्योग धंधों की उन्नति कर सकती है ? उदाहरण देकर समझाइये ।

छठा अध्याय

आवश्यकताएँ (Wants)

आवश्यकता का महत्व

(Importance of Wants)

किसी वस्तु की उत्पत्ति उसके उपभोग किये जाने के लिए की जाती है । किसान अनाज क्यों पैदा करता है ? उसके आटे की रोटी बनाकर खाने के वास्ते । आदमी कपड़े क्यों बनवाता है ? उन्हें बदन पर पहनने के लिए । गांव वाले जाड़े में अलाव क्यों जलाते हैं ? आग ताप कर ठंड मिटाने के लिए । अर्थात् उपभोग करने के कारण ही उत्पत्ति का

है। आदमी क्यों खाना खाता है ? काम करने के लिये। और काम क्यों करता है ? उससे पैदा हुये धन से खाना खरीदने के लिये। मनुष्य को तरह-तरह की आवश्यकताएँ रहती हैं। वह भौति-भौति के फल, फूल, कपड़े-लत्ते प्राप्त करना चाहता है। इसलिए संसार में तरह-तरह के काम-धन्ये दिखाई पड़ते हैं। किसानी, बढ़ईगिरी, लोहारी, चमारी, दर्जी का काम, चाँ बनाने का धन्धा आदि जितने काम काज हैं सब की पूर्ति मनुष्य की आवश्यकताओं के हाथ में रहती हैं। अगर आज हमारी आवश्यकताएँ कुछ भी न रहें तो शायद बहुत से काम बंद हो जायँ। बहुत से पेशे वालों को अपना-अपना काम छोड़ना पड़ जाय। अस्तु, कहने का मतलब यह कि उत्पत्ति और उपभोग में बहुत गहरा सम्बन्ध है, और हम किसी वस्तु का उपभोग इसलिए करते हैं कि हमें उस वस्तु के उपभोग की आवश्यकता मालूम पड़ती है और हम उस आवश्यकता को पूरी करना चाहते हैं। अतएव उपभोग की मूल आवश्यकताएँ हैं; और हमें इनके विषय में कुछ जरूरी बातें जान लेनी चाहिए।

आवश्यकता और इच्छा (Want and Desire)

आवश्यकता मनुष्य की उस इच्छा का कहते हैं जिसको पूरा करने के लिए वह मेहनत करता है। आवश्यकता और इच्छा में फर्क है। आपकी इच्छा कलबट्टर, जज और बादशाह बनने के लिए हो सकती हैं। आप सोच सकते हैं कि मैं जमींदार बनूँ और जो इस समय जमींदार हैं वे किसान बनें, और तब अच्छी तरह जमींदार की खबर लेवें। इच्छा करना और मन के लड्डू खाना बहुत कुछ एक ही बात है। लेकिन जब आप किसी इच्छा को कार्य रूप में कर दिखाने की कोशिश करते हैं तब इच्छा आवश्यकता में पलट जाती है। आप कोट पहनने की इच्छा रखते हैं। जब आप कपड़ा मोल लाकर दर्जी से अपना कोट बनवा कर पहनते हैं तो कहा जायगा कि आपको कोट की आवश्यकता थी। इसी तरह बाजार में कई एक वस्तुओं को देख कर उनको खरीदने और उपभोग करने की इच्छा होती है लेकिन अगर हम उन वस्तुओं को प्राप्त करने का प्रयत्न या उद्योग न करें तो वह केवल कोरी इच्छा ही रह जाती है। किसी आवश्यकता को पूरी करने के लिए उद्योग करना निहायत जरूरी है।

आवश्यकता और उद्योग (Want and Effort)

प्राचीन काल से ही मनुष्यों को अनेक वस्तुओं की आवश्यकता रहने लगी है। जिस समय लोग वन में जंगली जानवरों के समान रहते थे उस समय भी उन लोगों को अपने प्राण की रक्षा के लिए पीने के पानी साँस लेने की वायु और पेट भरने के लिए अन्न इत्यादि की आवश्यकता थी। जैसे-जैसे आदमियों की संख्या बढ़ती गई, लोगों की आवश्यकताएँ भी बढ़ती गईं। जब आग का आविष्कार हुआ तब मनुष्यों को नाना प्रकार के भोजनों की आवश्यकता हुई। उन्हें यह मालूम पड़ने लगा कि बिना उबाले चावल नहीं खा सकते, दाल पकानी चाहिए या माँस को भून कर खाना चाहिए। इसी तरह एक के बाद दूसरी आवश्यकता प्रकट होती गई। जब भोजनों की आवश्यकता पूरी हो गई तो वस्त्रों की आवश्यकता हुई। जब पहनने को कपड़े मिलने लगे तो उनको पेड़ के नीचे या पेड़ के ऊपर डालों पर सोना अच्छा नहीं मालूम हुआ और रहने के लिए मकान की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। इन सब की तृप्ति के बाद खास-खास तरह के भोजन जैसे रसगुल्ला, कचौड़ी, पकौड़ी, हलुआ आदि की जरूरत हुई। पहनने के लिए अब उत्तम-उत्तम वस्त्र नेकटार्ड, कालरदार कमीज, कुरता पैजामा वगैरह की आवश्यकता पड़ी। इसी तरह आदमियों ने अपने को पेड़ की पत्तियों और फूलों से सजाना छोड़ दिया और सोने-चाँदी के गहने, कड़े, हँसली, जंजीर आदि बनाकर पहनने लगे। इसके बाद रथ या बैलगाड़ी की सवारी, बल्लम, भाला, तलवार आदि हथियारों, संगीन इत्यादि की आवश्यकताएँ भी प्रकट हुईं। कहने का मतलब यह कि जैसे-जैसे संख्या बढ़ती गई और पुरानी आवश्यकताओं की तृप्ति होती गई, नई-नई आवश्यकताएँ उनके स्थान पर आती गईं, यहाँ तक कि अब उनकी संख्या गिनती से परे हो गई।

आवश्यकता और उद्योग का गहरा सम्बन्ध है। जैसे-जैसे आदमी की आवश्यकताएँ बढ़ती जाती हैं, वह उनकी तृप्ति के लिए उद्योग करता रहता है। शुरु में यही ढर्रा चलता रहता है, लेकिन कभी-कभी उद्योग से भी नई नई आवश्यकताएँ पैदा हो जाती हैं। यह सबको मालूम है कि रेल के इंजन का आविष्कार स्टेफेन्सन नाम के एक मनुष्य ने किया था, लेकिन कैसे एक

दिन आग पर पानी से भरी डेकची चढ़ी हुई थी और उस डेकची का मुँह एक रिकाबी से ढका था। स्टेफेन्सन चाहता था कि भाप बाहर न निकलने पाये। इसलिये वह रिकाबी पर वजनी चीजें रखने लगा। लेकिन तिस पर भी वह भाप को निकलना बन्द नहीं कर सका। अब उसने सोचा कि जब भाप में इतनी ताकत है तो इससे माल खींचने की गाड़ी बनाई जा सकती है। स्टेफेन्सन के भाप का निकलना रोकने के उद्योग के कारण रेल की आवश्यकता पैदा हो गई। बहुत से मनुष्य किसी खास आवश्यकता को पूरा करने के लिये ही मेहनत नहीं करते। ये लोग अपनी कुरसत का समय आलस में नहीं बिता देते। इस समय में वे विज्ञान, साहित्य इत्यादि के बारे में पढ़ते-लिखते हैं और नयी-नयी बातों को ढूँढ़ निकालते हैं। इन नये आविष्कारों की सहायता से नई-नई वस्तुएँ बनाई जाती हैं और मनुष्य को इन वस्तुओं की भी आवश्यकता मालूम होती है।

आवश्यकता के लक्षण

आवश्यकताएँ अपरिमित हैं। इनका कोई अन्त नहीं है। आमतौर पर आदमी को भौति-भौतिके के भोजन, तरह-तरह के कपड़ों, नई-नई किताबों और दूसरी वस्तुओं की इच्छा बनी रहती है। कहा जाता है कि जिनके पास धन है वे अपनी सारी आवश्यकताओं को पूरा कर सकते हैं। परन्तु जरा सोचा जाय तो मालूम पड़ता है कि कोई भी धनवान मनुष्य यह नहीं कह सकता कि उसकी सब आवश्यकताएँ पूरी हो गई हैं, क्योंकि ज्योंही एक आवश्यकता की तृप्ति होती है त्योंही दूसरी उसके स्थान पर आ खड़ी होती है। आवश्यकताओं की वृद्धि होने से ही सभ्यता की भी उन्नति होती है। मनुष्य की आवश्यकताएँ अपरिमित तो हैं ही लेकिन यदि यथेष्ट साधन हों तो मनुष्य की प्रत्येक आवश्यकता किसी एक समय में पूरी की जा सकती है। उदाहरण के लिये एक मूँख आदमी को लीजिये। उसको भोजन की आवश्यकता है लेकिन उसके भोजन की भी एक सीमा है। चार पाँच रोटियों से उसका पेट भर जाता है और उसको उसके बाद फिर रोटियों की जरूरत नहीं रहती। इसी प्रकार किसी एक आवश्यकता को पूरी करने का सब सामान रहने से किसी खास समय में उसकी तृप्ति की जा सकती है।

कहा जा सकता है कि कई इच्छाएँ ऐसी हैं जिनकी पूर्ति हो ही नहीं सकती। जैसे धन की इच्छा, अधिकार की इच्छा, बड़प्पन की इच्छा इत्यादि। यह सहसा कहा भी नहीं जा सकता कि कितने धन सामग्री या गहने से कोई आदमी या औरत सन्तुष्ट होगी। लेकिन इनमें से हर एक इच्छा कई इच्छाओं से मिल कर बनती है। ये एक-एक इच्छा नहीं हैं। उदाहरण के लिये धन की इच्छा को ले लीजिये। देखने में तो यह एक इच्छा है पर इसके पीछे उस धन से मिलने वाली अनेक वस्तुओं की इच्छा छिपी रहती है।

इसके साथ ही यह भी जान लेने की जरूरत है कि मनुष्यों को अपनी सब आवश्यकताओं को पूरी करने के लिये एक सी जल्दी नहीं रहती। कोई आवश्यकता अधिक जरूरी होती है तो कोई कम। साथ ही रामू के लिये जो आवश्यकता सब से अधिक जरूरी है, श्याम के लिये वह जरूरी नहीं है। मान लो रामू पढ़ता है और श्याम नहीं पढ़ता। रामू को तो किताब की जरूरत है लेकिन श्याम को इसकी कोई जरूरत नहीं पड़ेगी। लेकिन कोई आवश्यकता ऐसी भी हो सकती है जो कि तुम्हारे लिये अभी जरूरत हो, पर मेरे लिए नहीं। हाँ कुछ देर के बाद वह मेरे लिये भी जरूरी बन सकती है। मान लो, मैं खा चुका हूँ और तुमने अभी खाना नहीं खाया है, इसीलिए तुम्हारे अभी खाना खाने के लिये भोजन चाहिये। कुछ बच्चों के बाद जब तुम्हें फिर से भूख लगेगी तब तुम्हें भी भोजन की जरूरत पड़ेगी।

किसी आवश्यकता की तृप्ति के लिये एक से अधिक साधन होते हैं। अगर आप की धूम्रपान की इच्छा है तो आप तम्बाकू, सिगरेट, सिगार और बीड़ी इनमें से कोई भी चीज पी सकते हैं। इसी से ये चीजें एक दूसरे की जगह लेने की कोशिश करती हैं। अकाल के दिनों में गरीब लोग गेहूँ की रोटी के बदले चना, ज्वार, बाजरा इत्यादि की रोटी खाते हैं। इसी तरह आजकल किसी वस्तु को एक जगह से दूसरी जगह भेजने के लिये रेलगाड़ी और मोटर कारियों में लाग-डाँट चल रही है।

जब हम किसी आवश्यकता को कभी-कभी पूरी करते हैं तो वह आवश्यकता हमारे लिये अनिवार्य बनने की कोशिश करती है। जैसे कोई

मनुष्य किसी के कहने से कभी शराब पी ले तो फिर बाद को उसको शराब पीने की आदत ऐसी जबरदस्त हो जाती है कि वह आसानी से उस आदत को नहीं छोड़ सकता। इसी प्रकार और आवश्यकताओं की भी आदत पड़ जाती है।

आवश्यकता के भेद (Kinds of Want)

यह तो हम जान गये कि आवश्यकता किसे कहते हैं और उसके लक्षण क्या हैं। अब यह जानना जरूरी है कि आवश्यकताएँ कितने प्रकार की होती हैं। यों तो हम आवश्यकता के लक्षणों के मुताबिक कह सकते हैं कि कुछ जरूरतों को शीघ्र पूरा करना पड़ता है, कुछ को देर में। जैसे पहनने के लिये कपड़ा चाहे न मिले लेकिन भूख लगने पर खाना अवश्य मिलना चाहिये। कुछ आवश्यकताएँ ऐसी होती हैं कि उसको पूरा करने के लिये बहुत से साधन होते हैं, जैसे धूम्रपान के लिये हम बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू, या सिगार पी सकते हैं। इसी प्रकार नशा करने के लिये हम भांग, अफीम, ताड़ी, शराब वगैरह पी सकते हैं। ठीक, लेकिन इस तरह के तो शायद सैकड़ों विभाग बनाए जायँ तब भी काम न चलेगा। सबसे अच्छा तरीका वह है जिसमें आवश्यकताओं को तीन हिस्सों में बाँटते हैं। पहले तो वे आवश्यकताएँ आती हैं जिनको हम आवश्यक (Necessaries) समझते हैं। अर्थात् अपाहिज कैसा ही मनुष्य क्यों न हो वह अपने शरीर को नाश होने से बचाने की हमेशा कोशिश करता है। पेट भरने के लिये सब को भोजन और पीने को पानी चाहिये। पहनने के लिए कपड़े की आवश्यकता पड़ती है। यहाँ पर एक बात नोट करने लायक है। राम साधारण भोजन करता है, फटा-पुराना कपड़ा पहनता है और टूटी-फूटी भोपड़ी में रहता है। इसके विपरीत श्याम अच्छा अनाज, दूध, फल इत्यादि खाता है। वह साफ-सुथरे कपड़े पहनता है और हवादार मकान में रहता है। एक तरह से राम और श्याम दोनों ही जीवन-रक्षा के लिए जरूरी वस्तुओं का उपभोग करते हैं; परन्तु कुछ वर्षों में राम कमजोर और रोगी बन जायगा और श्याम मजबूत व तगड़ा। कहने का मतलब यह है कि आवश्यक वस्तुओं में से कुछ तो केवल मनुष्य को ज़िन्दा बनाए रखती हैं और कुछ आदमी को जीवन-रक्षा के अलावा

तन्दुरुस्ती भी प्रदान करती हैं। जीवन रक्षा (Necessaries for existence) के लिये आवश्यक वस्तुओं के अंतर्गत उन चीजों का भी शुमार किया जाता है, जो मनुष्य के आदत के कारण जरूरी पड़ जाती हैं। उदाहरण के लिए किसान तम्बाकू पीते हैं। परन्तु क्या यह जीवन-निर्वाह के लिये जरूरी है? क्या इसके बिना किसान जिन्दा नहीं रह सकते हैं। उत्तर है, रह सकते हैं। परन्तु शुरू से ही तम्बाकू पीते पीते उनकी आदत ऐसी हो गई है कि अब वे बिना तम्बाकू पिये कुछ काम ही नहीं कर सकते। अतएव कुछ वस्तुओं की आवश्यकता तो आदमी को जिन्दा रखने के लिए पड़ती है, कुछ मनुष्य को स्वस्थ और निपुण बनाए रखती है और कुछ हमारी आदतों के कारण अनिवार्य बन गई हैं। इस प्रकार आवश्यक वस्तुओं के तीन भेद हुए:—जीवन रक्षा, निपुणतादायक और कृत्रिम आवश्यक (Conventional necessities) दूसरे हिस्से में वे आवश्यकताएँ रखी जाती हैं जिनकी मनुष्य को आराम करने के लिए जरूरत मालूम पड़ती है। आराम की वस्तुओं (Comforts) से शरीर को सुख मिलता है और काम करने की ताकत भी बढ़ती है। लेकिन इन पर जितना खर्च किया जाता है उस हिस्से से कार्य-कुशलता नहीं बढ़ती। जैसे किसी गरीब आदमी के लिये धोती, कुर्ता और चप्पल उसकी कार्य-कुशलता बढ़ाता है लेकिन अगर वह बढ़िया महीन धोती, रेशमी कपड़े की कमीज व उम्दा जूता पहने तो ये वस्तुएँ उसके लिए आराम की वस्तुएँ कही जावेंगी। इसी तरह से गरीब किसान के लिये साइकिल, घड़ी, पक्का मकान इत्यादि भी आराम की सामग्रियों में शामिल किये जा सकते हैं।

अन्त में उन आवश्यकताओं की बारी आती है जिनको पूरा करने के लिये मनुष्य विलासिता की वस्तुओं (Luxuries) का उपभोग करता है। इन चीजों पर जो रकम खर्च की जाती है उससे बहुत कम कार्य-कुशलता मिलती है। कभी-कभी तो इन वस्तुओं के उपभोग से कार्य-कुशलता बढ़ने की जगह घटने लगती है। उदाहरण स्वरूप खूब बढ़िया आलीशान मकान, बहुत कीमती भड़कीली पाशाक व विलायती घिहरकी और अंगूरी शराब इत्यादि गिनाई जा सकती हैं। विलासिता की वस्तुओं का सेवन करने से आदमी को आलस घेर लेता है और काम करने को ज़िन्दा नहीं चाहता।

शराब इत्यादि के सेवन से तो आदमी बिल्कुल कमजोर, नाकाम और रोगी बन जाता है ।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि आवश्यकताओं के ये भेद एक दूसरे से भिन्न नहीं हैं । दर-असल इनका भेद आदमी की परिस्थिति की अनुसार समझा जाता है । मनुष्यों की प्रकृति, आदत फैशन आदि पर आवश्यकताओं के भेद में फर्क पड़ जाता है । एक डाक्टर के लिए मोटरकार आवश्यक मालूम पड़ती है क्योंकि उसकी सहायता से वह कम समय में बहुत से मरीजों को देख सकता है, लेकिन कालेज के प्रोफेसर के लिये मोटरकार आराम या विलासिता की ही वस्तु समझी जावेगी । अमीर आदमी के लिये महल, बिजली के लैम्प इत्यादि आराम की वस्तुएँ हों, लेकिन एक गरीब किसान के लिये ये वस्तुएँ एकदम विलासिता की वस्तुएँ समझी जावेगी ।

आवश्यकता की पूर्ति (Satisfaction of want)

अब प्रश्न उठता है कि आवश्यकता पूरी किस प्रकार की जाती है ? यह तो सबको मालूम है कि हर आदमी पहले अपने खाने-पीने की वस्तुएँ खरीदता है । अर्थशास्त्र के नियमों के अनुसार भी यही नतीजा निकलता है कि मनुष्य अधिकतर जीवन-रक्षक वस्तुओं का उपभोग करे और आराम व विलासिता की चीजों का उपभोग करने में रुपया-पैसा की फिजूल खर्ची न करे । परन्तु इस बात पर हम बाद में खयाल करेंगे । यहाँ पर पहले यह जानना आवश्यक है कि बहुत सी आवश्यकताओं को तो आदमी सीधे सीधे पूरा कर लेता है । मान लिया आपको पानी पीना है, आप नदी या तालाब पर जाकर पानी पी लेते हैं । अगर आपको जाड़े के दिन में नहाने के लिए गरम पानी करना है तो आप बटलोई में पानी भर कर आग पर चढ़ा देते हैं । जब कोई आवश्यकता सीधे-सीधे पूरी की जाती है तो किसी सम्पत्ति का उपभोग सीधे-सीधे किया जाता है । जैसे यहाँ पर बटलोई से काम लिया गया था । परन्तु अधिकतर आवश्यकता पूर्ति के लिए पहले रुपए-पैसे कमाए जाते हैं और तब उन रुपयों से आवश्यक वस्तुएँ मोल ली जाती है । बढ़ई हल, कुर्सी, मेज, आदि चीजें बनाकर बेचता है; लोहार काल, खुर्पा, फावड़ा वगैरह लोहे के सामान बनाता है । वस्तुओं को

बैचने से जो पैसे बढ़ई या लोहार को मिलते हैं उनसे वे अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए जरूरी वस्तुएँ खरीदते हैं। कहने का मतलब यह है कि आवश्यकताओं के पूरा करने के प्रश्न की जगह हमें यह सोचना चाहिए कि कोई मनुष्य अपनी आमदनी के रूप-पैसों को किस प्रकार खर्च करता है तथा खर्च करने का कौन सा तरीका सबसे उत्तम होगा।

आय-व्यय (Income and Expenditure)

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है जीवन-रक्षक पदार्थ तो सब लोगों को सेवन करना चाहिए। इन पर किया गया खर्च हमेशा न्याययुक्त कहा जाता है। आराम की वस्तुओं पर किया गया खर्च भी बुरा नहीं है क्योंकि इससे भी कार्य कुशलता बढ़ती है। लेकिन ऐशो-आराम और विलासिता की वस्तु पर तथा मादक वस्तुओं पर किया गया खर्च अक्सर फिजूलखर्ची समझा जाता है। लेकिन सबसे बड़ी कठिनाई तो यह है कि आमतौर पर यह नहीं कहा जा सकता कि कौन सी वस्तु जीवन-रक्षक है, कौन सी आराम की और कौन सी चीज विलासिता की है। क्योंकि मनुष्य की प्रकृति, आदत फैशन व समय के मुताबिक एक वस्तु आवश्यक भी हो सकती है और आराम व विलासिता की सामग्री भी बन सकती है। तब भी अगर कोई किसान एक घड़ी खरीदे तो उसका यह खर्च फिजूलखर्ची में गिना जायगा। लेकिन यदि एक विद्यार्थी घड़ी खरीदता है तो शायद उसकी खरीद न्यायपूर्ण मानी जा सकती है। हमारा गरीब सीतल किसान अगर अपने और अपने बच्चों को भूखा रख कर या कर्ज लेकर घड़ी खरीदता है तो वह जरूर विलासिता की चीज खरीदता है। क्योंकि उसी रुपये से वह ऐसी वस्तुएँ मोल ले सकता था जिससे उससे अधिक उपयोगिता प्राप्त होती। मान लीजिए, वह घड़ी की जगह खाने के लिए चना और जवा खरीदता, तो इससे वह अपना व अपने बच्चों का पेट भर सकता था। पेट भरे रहने पर वह मेहनत करके कुछ कमा सकता था। लेकिन अगर कोई अमीर मनुष्य ऐसा करे तो वह फिजूलखर्ची नहीं कहलाएगी। क्योंकि उसके पास इतना रुपया रहता है कि वह अपनी जरूरी आवश्यकताओं को अच्छी तरह पूरी कर सकता है।

कहा जाता है कि जीवन-रक्षा सम्बन्धी आवश्यकताएँ गिनी गिनाई हैं, और यदि उन्हीं को पूरा करने पर अधिक जोर डाला जायगा तो मनुष्य को अधिक उद्योग नहीं करना पड़ेगा, और मनुष्य जाति असभ्य बन जायगी। अधिक सभ्य बनने के लिए यह आवश्यक है कि हम नई बातों का आविष्कार करें और नई-नई वस्तुएँ बनावें, जैसे रेडियो, टेलीफोन, हवाई जहाज। यह मानी हुई बात है कि ये सब विलासिता की चीजें हैं। अतएव हमको विलासिता की वस्तुओं का उपभोग करना चाहिए। लेकिन हमारे गरीब भारत के लिए यह बात कहाँ तक ठीक है? हमारे किसानों की क्या हालत है? क्या उन्हें जीवन-रक्षक पदार्थ ही प्राप्त हैं? अन्दाज लगाया गया है कि जेल के अन्दर कैदियों को जो भोजन मिलता है वह भी बाहर के अधिकांश मनुष्यों को नसीब नहीं होता। ऐसी हालत में विलासिता की वस्तुओं पर किया गया खर्च बिलकुल फिजूल है।

इसके अलावा हम बता चुके हैं कि हमारे मजदूर और छोटे शिल्पकार अपनी आमदनी का अधिकांश भाग तम्बाकू, शराब, अफीम इत्यादि मादक-वस्तुओं के सेवन में उड़ा देते हैं। ऐसी हालत में हमारे बच्चों को कहाँ से धी-बूध मिल सकता है जिससे वे भविष्य में तन्दुरुस्त और कार्य-कुशल बनें। तो फिर धन को किस प्रकार से खर्च करना चाहिये? उत्तर है इस तरह से जिससे न केवल हमको अधिक से अधिक सुख मिले बल्कि जिससे देश में रहने वाले ज्यादा से ज्यादा जनसमूह को जीवन-रक्षक वस्तुएँ मिलें। जब तक यह हालत न हो जाय तब तक आराम व विलासिता की वस्तुओं को खरीदना फिजूलखर्ची में गिना जाना चाहिये। इसके बाद जब इन चीजों की भी बारी आवे तब ऐसी वस्तुओं का उपभोग न करना चाहिये जिनसे थोड़ी देर के आनन्द के ठिवा और कुछ न मिले; जैसे नाच, खेल-तमाशा, आतिशबाजी। इनमें तो जो सामग्री उसके बनाने में लगाई जाती है वह मिनटों में जल कर खाक हो जाती है अर्थात् देश का उतना धन गष्ट हो जाता है।

बचत (Saving)

एक बात और। क्या मनुष्य को अपनी आमदनी का एक भाग भविष्य के लिये निकाल कर अलग नहीं रख देना चाहिये? कौन जानता है

कि जो मनुष्य आज सम्पन्नशाली है वह भविष्य में भी वैसा ही बना रहेगा। कितनी बार अचानक ऐसे कारण आकर उपस्थित हो जाते हैं कि लखपत्तों मनुष्य भी रोटियों को मोहताज हो जाते हैं।" इसके अलावा जब आदमी बुढ़ा हो जाता है या चारपाई पकड़ लेता है तब अपनी जिन्दगी को पुराने ही तरीके से बिताने के लिये उसे पहले से रुपये बचाने पड़ते हैं। इसके अलावा बहुत से सज्जन अपने पुत्रों को पढ़ा कर कमाने योग्य बनाना चाहते हैं और पढ़ाई के लिये उन्हें पैसा संचय करना पड़ता है। बहुत मनुष्य अपनी मृत्यु के बाद लड़कों को कुछ धन दौलत छोड़ जाना चाहते हैं। कुछ आदमी बाद में तीर्थ-यात्रा करना चाहते हैं। कितने तो दान पुण्य के लिये धन इकट्ठा करना चाहते हैं। इन सब बातों के लिये धन इकट्ठा करना अर्थात् बचाना पड़ता है। बचाई हुई रकम वचत कहलाती है।

वचत कितनी करनी चाहिये और कैसे? इस सम्बन्ध में ध्यान देने योग्य यह बात है कि भविष्य के महत्व के बारे में आदमी-आदमी की राय में फर्क रहता है। कोई भविष्य को मानते ही नहीं। उनका उद्देश्य खा-चाट सब बराबर कर देना रहता है क्योंकि कौन जानता है कि कब यमदेव का बुलावा आ पहुँचे। परन्तु ऐसे लोग अपनी आय का अधिकांश भाग थोड़ी देर तक मजा देने वाली चीजों पर खर्च करते हैं। लेकिन जो दूरन्देश होते हैं वे ऐसे खर्च को ताक पर रख कर रुपये को भविष्य के लिये बचा लेते हैं।

परन्तु बचाना कैसे चाहिये? क्या यह सब से अच्छा होगा कि रुपये को या उन रुपयों से गोना-चाँदी मोल लेकर उनको धरती में गाड़ दें? हमारे भारत में गहनों के रूप में बहुत सा धन बेकार पड़ा हुआ है। और चूँकि यहाँ पर हर एक आदमी की इतनी भी आमदनी नहीं है कि वह जीवन-रक्षक पदार्थ भी प्राप्त कर सके, इस बात की बड़ी जरूरत है कि वचत की रकम ऐसे काम में लगाई जाय, जिससे देश की पूँजी बढ़े। लेकिन यह तो बहुत दूर की बात है। आप यों ही देखिये। वचत के रुपयों को गहने के रूप में रखने से आपको उस रकम पर कोई सूद तक नहीं मिलता। इससे रकम रखने और गाड़ कर रुपया-पैसा रखने में कोई अधिक फर्क नहीं मालूम पड़ता और यह साफ है, कि यह तरीका ठीक नहीं। अस्तु सब

पूँ अच्छा तरीका तो यह होगा कि जैसे-जैसे बचत होती जाय वह डाकघर की किसी अच्छे बैंक के सेविंग बैंक के हिसाब में जमाकर दी जाय। इससे कुछ सूद मिलने के अलावा रुपया सुरक्षित रहता है। दूसरा तरीका, जमान खरीदना या भूकान बनवाना है। इससे भी रकम सुरक्षित रहती है और आमदनी अच्छा होती है। कुछ मनुष्य अपने बुढ़ापे के लिये अथवा अपने सहारे रहने वाले आदमियों को मदद करने के लिये जीवन बीमा करवा लेते हैं। इसके लिये कई साल तक हर-साल एक निश्चित रकम बीमा कम्पनी को देनी पड़ती है। अर्वाध खतम हो जाने पर बीमा का रकम बीमा कराने वाले बुढ़े को या उसकी मृत्यु पर उसके आश्रितों को मिल जाती है।

कहा जाता है कि प्रत्येक व्यक्ति को जिसे अन्न और कपड़े-लत्ते का दुःख नहीं है अपनी आय में से कम से कम दसवाँ हिस्सा हर साल बचाने का दृढ़ प्रयत्न करना चाहिये। यदि वह ऐसा करने में सफल होगा तो इस बचत की वजह से मुसीबत के बुरे दिनों में कर्जदार होने से बच जायगा और हमेशा सुखा बना रहेगा।

अभ्यास के प्रश्न

१—उपभोग की परिभाषा लिखिये और उसका महत्व समझाइये।

२—आवश्यकताओं की विशेषताएँ लिखिये और उन पर नियंत्रण की जरूरत समझाइये।

३—आवश्यक वस्तुओं के भेद उदाहरणों सहित समझाइये। अपने निपुणतादायक आवश्यक पदार्थ और कृत्रिम आवश्यक पदार्थों की सूची दीजिये।

४—आराम की वस्तुएँ और विलासिता की वस्तुओं के भेद बतलाइये। किसी किसान की विलासिता की वस्तुओं की सूची तैयार कीजिये।

५—मादक वस्तुओं के उपभोग से क्या हानियाँ होती हैं?

६—गाँवों में तम्बाकू का उपभोग बहुत होता है। क्या आप इसे अच्छा समझते हैं?

७—कुछ स्थानों में चाय का उपभोग बढ़ रहा है। क्या इसका प्रचार करना आवश्यक है?

८—सिद्ध कीजिये कि सादा जीवन और उच्च विचार से भी सर्वोत्तम ध्येय है ।

९—बिना आमदनी के बढ़ाये संतोष की मात्रा कैसे बढ़ाई जा सकती है ?

१०—खर्च में बचत की आवश्यकता समझाइये । साधारण परिस्थिति के व्यक्तियों का कम से कम प्रतिमास कितनी बचत करनी चाहिये ।

११—आर्थिक दृष्टि से दानधर्म की सर्वोत्तम प्रणाली कौन सी है ? भारत में इस प्रणाली के अनुसार दान कहाँ तक होता है ?

१२—अपनी बचत के धन से सोने-चाँदी के गहना बनवा लेना कहाँ तक उचित है ?

सातवाँ अध्याय

भारतीय रहन-सहन का दर्जा

रहन-सहन का दर्जा (Standard of Living)

पिछले अध्याय में हम देख चुके हैं कि मनुष्य की आवश्यकताएँ अपरिमित होती हैं । फिर भी आदमी अपनी आमदनी अपनी दशा और परिस्थिति के अनुसार कुछ वस्तुओं का उपभोग करने में लगाता है । इन चीजों के उपभोग का जो ढर्रा पड़ जाता है वह बहुत कम बदलता है, और यदि बदलता है तो बहुत धीरे-धीरे । जितनी आमदनी होगी उतना ही खर्च भी किया जा सकेगा । आमतौर पर एक-ही आमदनी वाले मनुष्य या परिवार करीब-करीब एक ही समान रहते हैं । अर्थात् उनका रहन-सहन का दर्जा एक-सा ही होता है, और जैसे-जैसे आमदनी में कमी-वृद्धि होगी वैसे ही वैसे रहन-सहन के दर्जों में भिन्नता पाई जाती है । यों तो एक तरह से प्रत्येक मनुष्य अथवा प्रत्येक परिवार एक दूसरे से सभी बातों में कभी भी मिलता-जुलता नहीं है, इसलिये जितने परिवार हैं, उतने ही रहन-सहन के दर्जे हो सकते हैं । लेकिन साधारणतः रहन-सहन के दर्जे चार भागों में बाँटे जाते हैं । पहले दर्जे में वे लोग शामिल रहते हैं जिन्हें जीवन-रक्षक पदार्थ

प्राप्त नहीं होते तथा जिन्हें कई-कई दिन तक उपवास करना पड़ता है। इस दर्जे के मनुष्य भीख मांगते हैं और कर्ज भी लेते हैं। इन्हें दरिद्र कहा जाय तो गलत न होगा। हमारे गरीब मजदूर व किसान इसी दर्जे में रखे जा सकते हैं। दूसरा दर्जा उन लोगों का है जिन्हें जीवन-रक्षा सम्बन्धी साधारण पदार्थ ही प्राप्त हो सकते हैं। दोनों वक्त सूखा-सूखा भोजन खाना, फटा पुराना कपड़ा पहनना व टूटे-फूटे मकान में रहना ही इन लोगों का काम रहता है। तीसरे दर्जे वाले मनुष्यों को जीवन-रक्षक वस्तुओं के अलावा आराम की भी वस्तुएँ मिल जाती हैं। दफ्तर में काम करने वाले हमारे हेडक्लर्क साहब खूब अच्छा खाना खाते हैं, साफ-सुथरा कपड़ा पहनते हैं तथा खुले हुए हवादार मकान में रहते हैं। ये आराम की वस्तुओं का भी सेवन करते हैं। चौथे दर्जे में रईस और अमीर आदमी आते हैं, जिनके पास धन की कमी न रहती। वे जो चाहें खरीद सकते हैं। उनका जीवन पूरी तरह से विलासिता से पूर्ण होता है। परन्तु यह कोई जरूरी नहीं कि जो लखपती है उसके रहन-सहन का दर्जा सबसे ऊँचा हो। अगर रईस मनुष्य का स्वास्थ्य खराब रहता है और उसे कोई चीज नहीं पचती, तो उसका रहन-सहन सुख देने लायक नहीं होगा। इसी तरह से आदमियों को ऐसा रोग पकड़ लेता है कि उसका असर उसके रहन-सहन पर बहुत पड़ता है। मेवा लाल की आँखें खराब हों, हीरा बहरा हो, प्रेम की आँतों में कीड़े पड़ गये हो तो ये लोग उपभोग की चीजों से पूरा पूरा संतोष और आनन्द नहीं उठा सकते। इसी तरह बहुत से तन्दुरुस्त और तगड़े आदमी शराब, ताड़ी वगैरह पीकर या अनाप-शनाप खाकर या बुरी सोहबत में पड़ जाने के कारण अपने को बरबाद कर देते हैं। फलस्वरूप उनका रहन-सहन का दर्जा गिर जाता है।

भारतीय रहन-सहन का दर्जा

ऊपर बताई बातें हमारे भारत पर कुछ लागू होती हैं। यहाँ पहले तो आमदनी की कमी है। अंदाजा लगाया गया है कि हिन्दुस्तान का राजा महाराजा, सेठ-साहूकार, रईस वगैरह को मिला कर भी, पर १९३० की औसत की दैनिक आमदनी का औसत छै सात पैसे पड़ता है। इसके अलावा

उपभोग की भी कमी मालूम पड़ती है। सरकार की ओर से यह कहा जा-
 है कि हिन्दुस्तानियों का रहन-सहन का दर्जा बढ़ता जा रहा है, क्योंकि पहाड़ी
 यहाँ आराम की जितनी सामग्री आती थी, उनसे कहीं अधिक वस्तुएँ आ-
 कल आती हैं। देहातों में पक्के मकान बनने जाते हैं। साइमिल का प्रचार
 बहुत अधिक हो गया है। चाय और सिगरेट की खपत अधिक हो गई है
 इत्यादि। परन्तु इस तरह कहने वाले एक बात भूल जाते हैं कि यह मनुष्य
 की स्वाभाविक आदत है कि वह भोगविलास के पदार्थों का सेवन करना
 चाहता है और यदि कोई मनुष्य जीवन रक्षक वस्तुओं को खाने के बजाय
 शौकीनी करने लग जाय तो क्या इसके यह मतलब होते हैं कि उसका रहन-
 सहन ऊँचा हो गया। यदि आप खयाल करिये तो आपको अपने साथियों में
 ही कितने ऐसे मिल जायेंगे जिनके घर में भूँजी भाँग न होगी पर स्कूल खूब
 टाट बाट से आते हैं। आप अपने घर के बड़े बाबा से पूछिये तो वे आपको
 बतलावेंगे कि भारत का पतन हो रहा है। इसका कारण पूछने पर वे
 शायद आपको यही जवाब देंगे कि जहाँ पहले वे पौष्टिक पदार्थों का सेवन
 करते थे और सदैव व्यायाम का खयाल रखते थे, वहाँ आनकल ऐसी बातों
 पर अधिक खर्च किया जाता है जिसे शरीर को भी नुकसान पहुँचता है
 और मानसिक हानि भी होती है।

रहन-सहन का दर्जा ऊँचा करने का उपाय

अतएव यह बहुत जरूरी है कि भारतवासियों के रहन-सहन का दर्जा
 ऊँचा किया जाय, परन्तु हमारा मतलब यह नहीं है कि केवल भोग-विलास
 को वस्तुओं के उपयोग में वृद्धि हो, या आराम देने वाले पदार्थों का उपभोग
 बहुत अधिक बढ़ जाय। दल-बीग फीमदी मनुष्यों के रहन-सहन के दर्जे के
 ऊँचा होने से देश के रहन-सहन का दर्जा ऊँचा नहीं कहा जा सकता।
 आवश्यकता तो इस बात की है कि पहले तो हर एक आदमी को जीवन-
 रक्षक वस्तुएँ तथा वे पदार्थ मिल जायँ जिनसे वह कार्य कुशल भी बना
 । देश के सब आदिमियों का जीवन सुखमय होना चाहिये। ऐसे मनुष्य
 अत्यन्त न बचें जो अपने जीवन-रक्षक पदार्थों के लिए ही लालायित हों।
 हमारे गिरे हुए दर्जे को ऊँचा करने के लिए यह आवश्यक है कि हमें अच्छा

स्वास्थ्य-प्रद भोजन पेट भर मिले। भोजन अच्छा हाने के लिये यह जरूरी है कि खाना साफ बर्तनों में पकाया जाय। भोजन के बाद कपड़े को धोकर आती है। हम जानते हैं कि गरमी, जाड़ा, बरसात इत्यादि का शरीर पर बहुत असर पड़ता है। अगर आप जाड़े में रुई की मिर्छी न पहनेंगे अथवा कम्बल न ओढ़ेंगे तो आप का ठंड लग जायगी। हर समय गंदे कपड़े पहने रहने से तरह-तरह की बीमारी पैदा हो जाती हैं। इसी प्रकार रहने के मकान साफ जगह पर बने होने चाहिए। उसके कमरों में रोशनी, लफाई पानी इत्यादि का इन्तजाम होना चाहिये। एक परिवार के रहने के लिए मकान में, जिसमें पाँच छै आदमी हों, कम से कम चार पाँच कमरे होने चाहिए। तन्दुरुस्ती के लिए कसरत, खेल कूद नींद भी बहुत आवश्यक है और थक जाने पर किसी प्रकार के मनोरंजन का इन्तजाम रहना चाहिये।

भारत के रहन-सहन के दर्जे को ऊँचा करने के लिये यह जरूरी है कि शिक्षा का पूरा प्रबन्ध किया जाय। शिक्षा प्राप्त मनुष्य अधिक कमा सकते हैं। इसके अलावा वे उपयोगी वस्तुओं का उपभोग इस प्रकार से करते हैं कि उससे अधिक आराम मिलता है। इसके अलावा ऐसी शिक्षा दी जानी चाहिये जिससे भारत में संतान वृद्ध कम हावे। इस समय हिन्दुस्तान की आबादी सैतीब करोड़ के लगभग मानी जाता है। यदि जनसंख्या घट जाय तो हमको उद्योग के लिये अधिक सामग्री मिलने लग जाय। बहुधा देखा गया है कि दूसरों को देख कर आदमी उसी की तरह रहने का प्रयत्न करता है। इससे रहन-सहन का दर्जा ऊँचा हो जाता है। यात्रा करने से हमको बाहर का तजुर्वा होता है और हम अच्छी वस्तुओं का उपभोग करने लगते हैं। इन सब बातों के अलावा इस बात की कोशिश होनी चाहिये जिससे हमारे किसानों का कर्ज किसी प्रकार कम हो। हमारे किसान भाई कर्ज में पैदा होते हैं, कर्ज में पलते हैं और कर्ज छोड़ कर ही मर जाते हैं। परन्तु ये सब काम उस समय तक नहीं हो सकते जब तक कि हमारी सरकार हमारी मदद की न आवे। सरकार की ओर से स्कूल, लाइब्रेरी, दवाखाने पार्क इत्यादि का प्रबन्ध होना चाहिए। गरीबों को मुफ्त में ही प्रारम्भिक शिक्षा देने का इन्तजाम आवश्यक है। सरकार चाहे तो किसानों का कर्ज घट जाए। इसके अलावा सरकार उद्योग धंधों को मदद दे सकती है।

पारिवारिक बजट (Family Budget)

अब तक जो कुछ कहा गया है उसकी जड़ मनुष्य के रहन-सहन के दर्जे में है। उसको भली भाँति समझने के लिए हमको यह पता लगाना चाहिये कि कौन व्यक्ति, कितनी आमदनी करता है तथा, वह उस धन को किस प्रकार खर्च करता है। रहन-सहन का दर्जा निश्चय करने के लिए मनुष्यों के आय-व्यय का अध्ययन करना अनिवार्य है। अंग्रेजी में आय-व्यय सम्बन्धी लेखे को बजट कहते हैं। इस शब्द का अब हिन्दी में भी प्रयोग होने लग गया है। किसी मनुष्य या परिवार के बजट के अंदर यह देखा जाता है कि उस परिवार में कितने शेरुष्य हैं, कितने कमाई करते हैं, वे कैसे मकान में रहते हैं, उनकी उम्र, योग्यता, शिक्षा आदि क्या है ? परिवार की होने वाली आय क्या है, यह किम प्रकार खर्च की जाती है ? अन्त में कुछ बचत भी होती है अथवा परिवार वालों को कर्ज लेना पड़ता है ? रहन-सहन का दर्जा निश्चय करने के लिए व्यय सम्बन्धी अङ्कों से बड़ी सहायता मिलती है।

पारिवारिक बजट से केवल रहन-सहन का दर्जा ही नहीं निश्चित होता, इसका आय का भी है। उनमें से दो एक का उल्लेख किया जाता है। प्रथम, पारिवारिक बजट को ठीक से इकट्ठा करने पर यह मालूम किया जा सकता है कि परिवार का वृत्त अनावश्यक कामों में व्यतीत तो नहीं हो रहा है। उदाहरणार्थ आजकल के जमाने में यह संभव है कि किसी परिवार में अच्छा भोजन न किया जाता हो और बीमारी पर अधिक खर्च होता हो। इन बातों का पता लग जाने से सरकार शिक्षा द्वारा जनता की आदत सुधारने का प्रयत्न कर सकती है। द्वितीय, यदि पारिवारिक बजट ऐसा हो कि उससे मालूम पड़े जाय कि पारिवारिक आय किन-किन वस्तुओं की खरीद में खर्च की गई तो सरकार तथा उत्पादक उन वस्तुओं की उत्पत्ति करने का प्रयत्न करेंगे। भारत की अर्थिक उन्नति हो रही है। भाँति भाँति के उद्योग-धंधे खोले जा रहे हैं। यह प्रश्न उठता है कि कौन से उद्योग-धंधे खोले जायँ ? किस वस्तु की उत्पत्ति कहाँ तक बढ़ाई जाय ? यदि पारिवारिक बजट के उपयुक्त आँकड़े प्राप्त हों तो इन प्रश्नों का उत्तर दिया जा सकता है।

विवांच व्यय सम्बन्धा अको के अध्ययन करन स यह नश्चय हुआ है कि जिस दर से एक कुटुम्ब की आमदनी बढ़ती है, भोजन का व्यय उमी दर से नहीं बढ़ता। लेकिन गन्ध, मकान-भाड़े का खर्च उमी दर से बढ़ता है। शिक्षा, स्वास्थ्य मन रंजन की सामग्री के व्यय की वृद्धि का दर आमदनी की वृद्धि की दर से अधिक बढ़ जाता है। जर्मन निवासी डाक्टर एजिल हजारों परिवार के बजट को देख कर इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि कम आमदनी वाले परिवार का अधिकांश भाग जीवन निर्वाह में खर्च हो जाता है। लेकिन वस्त्र पर प्रत्येक परिवार में प्रतिशत खर्च लगभग बराबर होता है अर्थात् यदि पनास रुपये आमदनी वाले का वस्त्र में करीब आठ रुपये खर्च होते हैं तो सौ रुपये आमदनी वाले का सोलह, और हजार रुपया आमदनी वाले का करीब एक सौ आठ रुपया खर्च होता है। इसी तरह किराये में, रोशनी और ईंधन में भी प्रत्येक परिवार में प्रतिशत खर्च बराबर होता है। लेकिन यह बात जरूर है कि अधिक आमदनी वाले परिवार की शिक्षा, स्वास्थ्य-रक्षा इत्यादि में प्रतिशत खर्च बढ़ जाता है।

किसान का खर्च

ऊपर कही बातों को और स्पष्ट करने के लिये दो-तीन परिवार के बजट का विवेचन करना आवश्यक मालूम पड़ता है। और चूँकि भारतवर्ष कृषि प्रधान देश है इसलिये पहले किसानों की ओर ही दृष्टि डालना उचित जान पड़ता है। यों तो आपको सुखी किसान भी शायद कहीं-कहीं मिल जायेंगे। हमको उनसे अधिक मतलब नहीं क्योंकि उनकी संख्या बहुत कम है। अस्तु भारतीय किसान के रहन-सहन का दर्जा बिल्कुल नीचा है। उसके कुटुम्ब की मासिक आमदनी पंद्रह रुपये से कम ही रहती है। यह पता लगाया गया है कि संयुक्त प्रान्त में किसानों की वार्षिक आमदनी सत्तर से नब्बे रुपये के बीच रहती है। इसी से हम इनके रहन-सहन के दर्जे का अनुमान लगा सकते हैं। इन बेचारों को साल भर हमेशा दोनो वक्त सूखा-सूखा भोजन भी नहीं मिलता। पहनने का कपड़ा बहुत ही मामूली, फटा और मैला रहता है। अक्सर ये लोग एक साधारण छप्पर में ही गुजर करते हैं। अधिकतर यह पाया गया है कि जो परिवार बहुत गरीब होता है उसमें

(104)

जनसंख्या बहुत अधिक होती है। इन गरीबों के बच्चे खाली एक कपड़ा पहिनते या कभी-कभी नंगे ही घूमा करते हैं। इन बच्चों को दोनों वक्के दूध, घी या अच्छा खाना तक नहीं मिलता। उनकी पढ़ाई-लिखाई की तो कोई परवाह ही नहीं करता। भारत में शायद ही कोई किसान ऐसा होगा जो कर्जदार न हो। किसी का तो यह मत है कि वह कर्ज लेकर पृथ्वी पर आता है, जिन्दगी भर महाजन के यहाँ रुपया भरता है और अन्त में कर्ज छोड़ कर ही मर जाता है। बिना कर्ज के तो इनका काम ही नहीं चलता। बीज, पशु, औजार या व्याह-शादी को तो छोड़ दीजिये, बेचारा किसान अपने रोज के खर्च के लिये भी कर्ज लेता है। उसको सरकारी लगान भी देना पड़ता है। इसी में उसकी आमदनी का काफी बड़ा हिस्सा निकल जाता है। फिर कर्ज की रकम को कौन कहे, वह उसका व्याज तक नहीं चुका पाता।

नीचे एक गरीब और एक मामूली किसान के सालाना पारिवारिक खर्च का व्योग दिखाया गया है :—

	मामूली किसान का खर्च (रुपये में)	गरीब किसान का खर्च (रुपये में)
भोजन	६८	४६
कपड़ा	२१	१३
घर	१३	—
रोशनी व लकड़ी	५	५
दवा	१	२
शिक्षा	४	—
यात्रा दानादि	१२	७
	१२४	७३

गरीब किसान की वार्षिक आमदनी तिहत्तर रुपये थी। मामूली किसान की आमदनी एक सौ चौबीस रुपये थी। गरीब किसान का दवा पर अधिक खर्च हुआ। मामूली किसान ने तो शिक्षा पर चार रुपये खर्च किये परन्तु गरीब किसान ने कुछ नहीं खर्च किया। गरीब किसान की आमदनी का ६० %

अर्थात् लगभग दैर्घ्य भाग भोजन पर खर्च हुआ, परन्तु मामूली किसान ने केवल लगभग आधी आमदनी भोजन पर खर्च की। दोनों परिवारों की आमदनी का लगभग १६% अर्थात् छुट्टा भाग कपड़े पर खर्च हुआ। दान धर्म, यात्रादि पर भी दोनों परिवारों ने अपनी आमदनी का लगभग वही भाग अर्थात् ६% खर्च किया। शिक्षा, दवा आदि की अपेक्षा दान धर्म, आदि पर अधिक खर्च हुआ। इससे भारतीय किसानों की धार्मिक प्रवृत्ति का ज्ञान होता है।

गाँव के मजदूर और उनका खर्च

अतएव यह तो सिद्ध हो गया कि भारतीय किसान बड़े कष्ट और श्रम से अपना जीवन निर्वाह करता है। किसान का दूसरा भाई है गाँव का मजदूर। कुछ सज्जनों का कहना है कि इनकी हालत तो किसानों से भी खराब है। किसान इन लोगों पर ज़मींदारी हुकुम चलाते हैं अर्थात् जैसे ज़मींदार किसानों से बेगार लेते हैं तथा उन्हें कष्ट पहुँचाते हैं, वैसे ही किसान लोग इन मजदूरों के साथ व्यवहार करते हैं। लेकिन ध्यान देने की बात तो यह है कि इससे और मजदूर के पारिवारिक व्यय से विशेष सम्बन्ध नहीं है। पर यह जरूर है कि इससे मजदूरों की आय कम हो जाती है। मजदूरों और किसानों के बीच केवल एक फर्क पाया गया है, और वह यह कि किसानों की आय प्रकृति के ऊपर निर्भर रहती है। लेकिन मजदूरों की मजदूरी कुछ न कुछ नियमित होती है। परन्तु सोचने लायक बात तो यह है कि अक्सर मजदूरों का हिस्सा बाँध दिया जाता है। किसान के पास जो अनाज रहता है वह स्वयं उसके परिवार के लिए पर्याप्त नहीं होता। इसी में से उसको मजदूर की मजदूरी देनी पड़ती है। अतएव मजदूर की मजदूरी के रूप में वह कम से कम अनाज देने का प्रयत्न करता है। ऐसी दशा में मजदूर तो सचमुच किसानों से भी गए बीते बन जाते हैं, तब भी हम उन्हें बिना अधिक गलती किए किसानों के रहन-सहन के दर्जे में रख सकते हैं।

गाँव के कारीगर का व्यय

भारतीय गाँवों में यदि किसी की हालत किसानों और मजदूरों से अच्छी

कही जा सकती है तो वह है गाँव के शिल्पी या कारीगर की हाजत। उसे न तो प्रकृति पर निर्भर रहना पड़ता है और न मजदूरों की तरह उनही चुटिया किसानों ने हाथ दबो रहती है। यदि कहा जाय कि गाँव के कारीगर की मासिक आमदनी पंद्रह रुपये के ऊपर पहुँच जाती है तो कोई गलत बात न होगी। बहुत से परिवारों के बजट को देखने के बाद पता चलता है कि ये लोग भी खाने की चीजों पर आधी से अधिक रकम खर्च कर देते हैं। रोशनी और ईंधन पर इनकी आमदनी का बीसवाँ हिस्सा खर्च होता है और कपड़े लत्ते पर लगभग दस प्रतिशत। मकान का किराया, रोशनी और ईंधन का खर्च बराबर होता है। आमदनी का बचा हुआ पाँचवाँ भाग अन्य वस्तुओं पर खर्च कर दिया जाता है, हालाँकि घी दूध तो इन्हें भी नहीं के बराबर ही मिलता है। सफ़ाई और रोशनी का भी इन्तजाम खराब रहता है और किसानों की तरह इनमें भी शराब या ताड़ी पीने की बुरी आदत पाई जाती है। यह बात भी नहीं है कि ये कर्ज न लेते हों और सूद की दर तो हमेशा की तरह पचहत्तर अस्ती प्रतिशत सालाना से कम नहीं होती। शिक्षा और स्वास्थ्य के सम्बन्ध में ये लोग भी बहुत कम खर्च करते हैं।

अभ्यास के प्रश्न

१—रहन-सहन के दर्जे का अन्दाजा किन-किन बातों से लगाया जाता है ?

२—अपने गाँव के साधारण किसान के रहन-सहन के दर्जे की तुलना उसी गाँव के मजदूर की रहन-सहन के दर्जे से कीजिए।

३—अमीर लोग किन वस्तुओं पर अपना-रुपया अधिक खर्च करते हैं ?

४—अपने गाँव के कम से कम एक साधारण किसान, एक अमीर किसान और एक गरीब किसान के आय-व्यय का एक मास का हिसाब लगाइये और यह बतलाइये कि निम्नलिखित मदों पर कितना प्रतिशत खर्च प्रत्येक दर्जे के किसान ने किया :—

(अ) भोजन (ब), कपड़ा (ख) मकान भाड़ा (उ) शिक्षा (क) मुकदमेबाजी (ख) मादक वस्तु (ग) दानधर्म (घ) अन्य खर्च ।

मा० अ० शा०—६

५—किसी कुटुम्ब के मासिक आय-व्यय का हिसाब देख कर हम यह किस प्रकार बता सकते हैं कि व्यय अच्छे तरीके से किया जा रहा है या नहीं ?

६—रहन-सहन का दर्जा ऊँचा कर देने के क्या तरीके हैं ? उनका उपयोग भारत में कहाँ तक किया जा रहा है ?

७—पारिवारिक आय-व्यय रखने की आवश्यकता समझाइये ।

८—अपने कुटुम्ब के मासिक व्यय की आलोचना कीजिये ।

९—यात्रा का रहन-सहन के दर्जे पर क्या प्रभाव पड़ता है ?

१०—रहन-सहन का दर्जा बढ़ाने में शिक्षा का महत्व समझाइये ।

११—रहन-सहन के दर्जे का अर्थ समझाइये । गाँवों में रहन-सहन का दर्जा क्यों नीचा है ? उसे किस प्रकार ऊँचा किया जा सकता है ?

१२—ग्रामीण जनता की दीनता के कारण स्पष्ट कीजिये । संयुक्त-प्रान्त में उनकी दशा को उन्नत बनाने के लिए कौन से प्रयत्न किये गये हैं ? (१९४६)

१३—आप रहन-सहन के दर्जे से क्या समझते हैं ? गाँवों में यह क्यों बहुत कम है ? इसे किस तरह बढ़ाया जा सकता है ? (१९४४)

आठवाँ अध्याय

भोजन कितना और कैसा हो ?

भोजन की आवश्यकता

अब तुम जान गए होगे कि हमारे रहन-सहन में भोजन बड़े महत्व का स्थान रखता है । अतएव यह बहुत ज़रूरी है कि हम यह जान लें कि हमको कैसा भोजन करना चाहिए । पहले यही बताइये कि आप भोजन क्यों करते हैं ? हम जो वस्तुएँ खाते हैं उनसे क्या मतलब निकलता है ? उत्तर में कहा जा सकता है कि हमें दो बातों की आवश्यकता रहती है । एक तो गर्मी की और दूसरे चर्बी की । आप अभी दिनों दिन लम्बे चौड़े होते जा रहे हैं और

आपका डील डौल बढ़ाने के लिए आवश्यक है कि आप खाना खावें। भोजन करने से करीब पचीस साल की उम्र तक हमारे शरीर और दिमाग की वृद्धि होती है ताकि वे मजबूत बन सकें। दूसरे काम करने से शरीर और दिमाग में जो कमी होती है उसकी भी आहार से पूर्ति होती है। जो वस्तु हम खाते हैं उनमें से कोई बदन को गर्म रखती है और किसी से गोشت बनता है। बदन को चंगा रखने के लिए यह जरूरी है कि हम दोनों तरह की चीजें खाया करें। हमको जितनी गोشت बनाने वाली चीजों की जरूरत पड़ती है उससे चार गुना ज्यादा गर्म रखने वाली चीजों की है। अगर हम एक तरह का खाना जरूरत से ज्यादा खालें और दूसरी तरह का जरूरत से कम, तो हमारा पेट तो भर जायगा लेकिन हमारी तन्दुरुस्ती को नुकसान पहुँचेगा।

चर्बी, प्रोटीन (Protein), चीनी और विटामिन (Vitamin)

ऊपर बताई हुई बातों से यह तो स्पष्ट हो जाता है कि हमको भोजन खाना चाहिए, परन्तु अब यह कैसे समझा जाय कि कौन-कौन सी चीजें अवश्य खानी चाहिए और कितनी। इसके पहले यह बताना जरूरी है कि प्रत्येक भोजन की वस्तु से हमको तीन पदार्थ मिलते हैं—चर्बी, प्रोटीन और चीनी। दही, घी, मक्खन तथा नारियल के तेल आदि में चर्बी की मात्रा अधिक होती है। प्रोटीन एक पदार्थ का अंग्रेजी नाम है। मिर्च, बादाम, मूँगफली, दाल, सूजी, बिना कूटे व पालिस किए हुए चावल और गोشت में प्रोटीन काफी होती है। इसी तरह शकर, शहद, गन्ना, आटा, चावल, जौ व मुरब्बे वगैरह में चीनी बहुत होती है। चर्बी, प्रोटीन और चीनी के अलावा हमको विटामिन नाम के एक तत्व की आवश्यकता पड़ती है। विटामिन कई तरह के होते हैं—जैसे विटामिन A, विटामिन B, विटामिन C, विटामिन D इत्यादि। हमको इनकी भी आवश्यकता पड़ती है। दूध और फलों में पानी की मात्रा अधिक होती है, चर्बी, प्रोटीन व चीनी कम रहती है। लेकिन तब भी उनकी कदर इसीलिए की जाती है कि उनमें विटामिन होता है। गाय के दूध में ऊपर बताए चारों विटामिन होते हैं, लेकिन विटामिन A सबसे अधिक होता है। यह जरूरी नहीं कि हर एक चीज में ये सारे

विटामिन हों, जैसे—मिर्च, चाय, कद्दू में विटामिन होता ही नहीं । गोभी, टमाटर आदि में पहले तीन विटामिन खूब होते हैं । फलों में विटामिन की अधिकता रहती है ।

भोजन के भेद

अस्तु, आजकल के प्रचलित भोजन तीन हिस्सों में बाँटे जा सकते हैं:— फल, अन्न और मास । फल का आहार सबसे श्रेष्ठ समझा जाता है । फलों के ऊपर रहने वाले प्रकृति देवी के पशु-पक्षी कितने सुन्दर, मनमोहक, रंग-विरंगे और मधुर कंठ वाले होते हैं । योरोप के विद्वानों ने यह दूँढ़ निकाला है कि फलों में एक तरह की बिजली होती है जिससे शरीर अच्छी तरह गठ जाता है । फलों के बाद अन्न का नम्बर आता है । रोटी, दाल, भात इन सब की गिनती अन्न में की जाती है । खाना जितना सादा होता है उतना ही अच्छा होता है । हमारे पूर्वजों का उद्देश्य रहता था “सादा जीवन व ऊँचे विचार” । जो मजा तथा फायदा गेहूँ की बालियों में होता है वह गेहूँ में नहीं होता । गेहूँ से उतर कर रोटी का गुण होता है, उससे उतर कर पूड़ी का और अन्त में पकवानों का । आटा जितना मोटा हां उतना ही अच्छा होता है । आजकल चक्की में पिसने वाले आटे की बहुत सी चीनी गरमी के कारण जल जाती है । चावल के पकाने में उसका पानी अर्थात् गाँड़ नहीं फेंकना चाहिए । पके हुए चावल में कुछ नहीं होता, सब गुण तो माँड़ में उतर आते हैं । हम लोगों में फुटे हुए चावल खाने की आदत है । कुटने से चावल का बहुत सा अंश अलग हो जाता है । इसी तरह से दाल को उसके छिलके के साथ खाना चाहिये । मूँग की छिलकेदार दाल में जो गुण होता है वह धुली मूँग की दाल में बिलकुल नहीं रहता । तरकारियाँ खून व पेट को साफ़ करती हैं इसलिए हमारे भोजन में तरकारियों का होना जरूरी है । पेट के हाजमा को कभी बिगड़ने नहीं देती । इसके अलावा इनमें विटामिन A, B, C, खूब होते हैं । डाक्टर लोग अनाहार में दूध को आवश्यक बताते हैं और थोड़ा सा घी भी । माँस खाने वाले के शरीर में अक्सर एक तरह का विष पैदा हो जाता है तथा माँसाहारी का मन उतना बश में नहीं रहता । यूरोप तथा पश्चिम के अन्य देशों में माँसाहारियों का

नम्बर घटता जाता है और फलाहार और अन्नाहार करने वाले मनुष्य तादाद में बढ़ते जा रहे हैं ।

उपयुक्त भोजन की मात्रा :

हमारे पुरखे पहले जो खाना खाते थे अथवा उन्होंने रोटी, दाल, भात, तरकारी, घी, दूध का जो सादा खाना ठीक किया था उसमें हमें सब चीजें मिल जाती हैं । रोटी और भात में चीनी की भरमार है, दाल और दूध से प्रोटीन मिलता है और अन्य पाचक पदार्थ मिल जाते हैं । आप कहेंगे कि यह तो पुराने जमाने की बातें हैं । आपका सार्थ राम पूछ सकता है कि क्या रोटी ज्यादा खाई जाय और दूधरी वस्तुएँ कम । श्याम कह सकता है । कि मैं दूध तो खूब पीऊँगा मगर और चीजें केवल नाम करने को खा लूँगा । इसलिए यह जानना जरूरी है कि कौन सी वस्तु कितनी खानी चाहिए । रोटी या दूध से हमको जितनी चाहिए उतनी गोشت बनाने वाली चीज़ नहीं मिल सकती और शक्कर, चावल, घी, मक्खन तो हमको सिर्फ गरम रख सकते हैं । जो लोग गोشت खाते हैं उनको तो गर्मी पैदा करने वाली और गोشت बनाने वाली चीज़ें उसी से मिल जाती हैं । मगर बहुत से लोग ऐसे हैं जो गोشت नहीं खाते । हिन्दुओं में तो गोشت खाने का रिवाज कम है । उनको इसके बदले क्या खाना चाहिए ? मूंग, मटर, अरहर और इसी तरह की जितनी दालें हैं इन सब में गरमी पैदा करने वाली और गोشت बनाने वाली दोनों तरह की चीज़ें होती हैं । सेर भर मांस में गोشت बनाने वाली जितनी चीज़ें होती हैं उससे कहीं ज्यादा सेर भर दाल में होती हैं ।

किमी ने सच कहा है कि हमारे आहार में मांस, मछली और अंडे रहने की बिल्कुल जरूरत नहीं है । हमें पर्याप्त मात्रा में प्रतिदिन दूध, दही, मट्ठा मिलना चाहिए । इसके अलावा हमारे भोजन में रोज कुछ न कुछ कच्चे (बिना औँच पर पकाए हुए) पदार्थों का रहना बहुत जरूरी है । इसके लिए हरा मटर, हरा चना, टमाटर, मूली गाजर, ताजे फल, बेर, ककड़ी, खरबूजा, खट्टे ब मोठे नींबू का रोज सेवन करना चाहिए । इससे स्वास्थ्य बनने के अलावा हमारी आयु भी बढ़ जाती है । हमारे भोजन में गुड़ और शक्कर का रहना बिल्कुल आवश्यक नहीं है । इन्हें यदि थोड़ा सा खाया

जाय तो कोई हानि नहीं होती पर ज्यादा खाने से ये नुकसान पहुँचाते हैं। बाजार की मिठाइयाँ तो भूल कर भी नहीं खाना चाहिए। अस्तु हिसाब लगा कर निकाला गया है कि स्वस्थ रहने के लिए एक युवा पुरुष को २४ घटों में निम्नलिखित भोजन करना चाहिए:—

घर का पिसा आटा ६ छटाँक, दाल १ छटाँक, चावल २ छटाँक, घी आधी छटाँक, तरकारी ६ छटाँक, फल ४ छटाँक, दूध आधा सेर और थोड़ा सा नमक, जो कि खाना पचाने के लिए बहुत जरूरी है।

भोजन उसी समय करना चाहिए जब खूब भूख लगी हो। यह न होना चाहिए कि बकरी की तरह हर समय मुँह चलता रहे। यह उसी समय हो सकता है जब कि वक्त से खाना खाया जाय। खाने के अलावा पानी पीना भी बहुत जरूरी है। लेकिन ध्यान रखना चाहिए कि पानी हमेशा खाना खाने के घंटा आधा घंटा बाद पिया जाय। यदि पानी पीने की इच्छा बहुत तेज हो तो खाने के साथ दो चार घूँट पानी पी ले। चौबीस घंटे में दो सेर के लगभग पानी जरूर पीना चाहिए। गरमी के दिनों में पानी की मात्रा बढ़ा देनी चाहिए।

अभ्यास के प्रश्न

१—एक युवा मनुष्य के लिए प्रति दिन कितना भोजन स्वस्थ रहने के लिये आवश्यक है ?

२—आपके भोजन में कौन सी बातों का किस परिमाण में होना आवश्यक है ?

३—किसानों और मजदूरों के भोजन में किन बातों की कमी रहती है और यह बिना खर्च बढ़ाये कैसे दूर की जा सकती है ?

४—शहर में रहने वाले और गाँवों में रहने वालों के भोजन में क्या अन्तर रहता है ?

५—जैसे जैसे आमदनी बढ़ने लगती है, भोजन में किस प्रकार का अन्तर होने लगता है ?

६—प्रोटीन, चर्बी और विटामिन किन पदार्थों में अधिक होते हैं ?

७—भोजन में दूध, फल और हरी तरकारी का महत्व समझाइये।

८—सात्विक भोजन के लिए किन् वस्तुओं का उपभोग कितने परिमाण में करना चाहिये ?

९—तामसिक भोजन के पदार्थों की सूची दीजिये ।

१०—मानसिक परिश्रम के करने वाले व्यक्तियों को अपने भोजन में किन् वस्तुओं का अधिक परिमाण में उपयोग करना चाहिये ?

११—भारत में भोजन की वर्तमान कमी के कारण क्या हैं ? इसे दूर करने के क्या उपाय हैं ? (१६४८)

१२—संतुलित भोजन किसे कहते हैं ? इसके मुख्य अंश क्या हैं ? (१६४७) ।

नवां अध्याय

विनिमय (Exchange)

वस्तुओं की अदला-बदली (Barter)

लकड़ी का काम करने वाले बढई को बिना मोल लिए खाने को अनाज नहीं मिल सकता । वह कुर्सी, मेज, खिड़की, हल गाड़ी आदि बना कर बेचता है । बेचने से जो दाम आता है उससे मंडो में जाकर वह अनाज खरीदता है । परन्तु क्या यह जरूरी है कि बढई माल को रुपये-पैसे के बदले बेचे ? हमारे गाँव में अधिकतर यह होना है कि किसान अनाज देकर अपने मतलब की वस्तु दूसरे से ले लेते हैं । अगर रामू को एक जोड़ा धोती लेना होता है तो वह पन्द्रह-बीस सेर अनाज देकर बजाज से उस धोती को ले लेता है । लोहार को जब अनाज की जरूरत पड़ती है तो वह किसी किसान को जिसे फावड़े आदि की जरूरत होती है, वह औजार देकर अनाज ले लेता है । पुराने समय में रुपया-पैसा तो चलना नहीं था । उस समय इसी तरह की अदला-बदली होती थी । हमारे गाँवों की तरह ही अफ्रीका, आस्ट्रेलिया आदि देशों के असभ्य जङ्गली अब भी हाथी दाँत, गोंद, मोम, शुतुर्मुर्ग के पर वगैरह देकर उनके बदले में हथियार, औजार और खाने-पीने की चीजें लेते हैं ।

बदले के लिए कम से कम दो चीजों की जरूर दरकार होती है । जब हम

यह कहते हैं कि किसी का बदला हो सकता है, तो हमारा मतलब यह रहता है कि उस चीज का बदला किसी और चीज से हो सकता है। लेकिन एक बात है। मान लो कि बड़ई ने एक हल तैयार किया और वह उसके बदले अनाज लेना चाहता है। पर अनाज पैदा करने वाले किसान को उस समय हल की दरकार नहीं है। या अगर उसे हल की जरूरत है तो हो सकता है कि उसके पास बदले में देने के लिये काफी अनाज न हो। यह भी हो सकता है कि किसान हल की जगह अनाज का ज्यादा काम की वस्तु समझता हो और इस लिए हल की जगह अनाज न देना चाहता हो। ऐसी हालत में बेचारे बड़ई को किसी ऐसे किसान को ढूँढ़ना पड़ेगा जिसे हल की जरूरत हो, जिसके पास अनाज भी काफी मात्रा में हो और जो हल को अनाज से अधिक उपयोगी समझता हो। बदला-बदली हो जाने से दोनों को लाभ होता है। किसान को अनाज को अपेक्षा अधिक काम की चीज मिल जाती है; इसी तरह बड़ई को भी हल के बदले अनाज मिल जाने से लाभ होता है। अगर बड़ई का ऐसा कोई किसान नहीं मिलेगा तो वह भूखों मरने लगेगा। और फिर खाली अनाज से बड़ई का काम नहीं चलता। उसे नमक, मिर्च, तेल, खट्टाई आदि भी चाहिए। मान लो उसे हल के बदले अनाज मिल भी गया तो उसे ऐसे आदमियों की तलाश करनी पड़ेगी जो नमक, मिर्च, मसाला आदि देकर अनाज ले लें। इसी तरह दूसरे पेशे वालों को भी तंग होना पड़ेगा क्योंकि सब को चाँजे बदलने की जरूरत होती है। लेकिन अगर इसी तरह सब लोग अपनी चीजें लेने वालों का पता लगाने लगें तो बहुत बखेड़ा पैदा हो जाय। इन दृष्टिनाइयों को दूर करने के लिए रुपये पैसे चलाए गए और आजकल हमें जब किसी वस्तु की आवश्यकता पड़ती है तो हम बाजार जाकर उसे मोल लेते हैं। अर्थात् जिस मनुष्य के पास वह वस्तु रहती है उसे कुछ पैसे या रुपये देकर बदले में उस वस्तु को ले लेते हैं। किसी वस्तु की बिक्री से खरीदने और बेचने वालों का लाभ ही होता है, नुकसान नहीं। खरीदार रुपये की जगह उस वस्तु को ज्यादा काम की समझता है और बेचने वाले को रुपये की जरूरत रहती है।

माल की खरीद और बिक्री (Sale and Purchase)

हम जिस मनुष्य के पास से चीज मोल लेते हैं, वह सौदागर या व्यापारी

कहलाता है, लेकिन सौदागर और व्यापारी में एक फर्क रहता है। व्यापारी थोक माल खरीदता है और ज़रूरत के मुताबिक बेचता है। सौदागर व्यापारियों से माल खरीद कर खाने या उपभोग करने वालों के हाथ बेचता है। व्यापारी एक फसल को एक जगह इकट्ठा करता है, फिर उनको साफ कराकर फुटकर बेचने वालों के हाथ बेच देता है। व्यापारी कम से कम दामों में अनाज को मोल लेकर अधिक दाम पर बेचता है। किसान फसल तैयार होते ही बेच देते हैं। उस समय अनाज का भाव सस्ता रहता है। किसानों को यह विश्वास नहीं होता कि अगर अनाज रक्खा रहेगा तो आगे चल कर उससे काफ़ी लाभ होगा। लेकिन दरअसल बात तो यह है कि हमारे किसानों की हालत ऐसी बुरी है और वे इतने कर्जदार रहते हैं कि वे अनाज को घर में रख नहीं सकते। व्यापारी सस्ते अनाज को मोल ले लेकर बड़े भर लेता है और जब भाव खूब तेज होता है तब उसे बेचता है।

फसल तैयार होने के समय तो किसान प्रायः सब अनाज बेच देते हैं। पर थोड़े दिन बाद उनकी रसद चुक जाती है। तब वे बगिए की शरण जाते हैं। बगिया उस समय अनाज किसानों को बाँटता है। और उनसे वादा करा लेता है कि फसल पर वे उसका सवाया दे देंगे। इसी तरह बोवाई के समय वह किसानों को तेज भाव पर अनाज देता है। आप हिसाब लगा सकते हैं कि बगिए का क्या लाभ होता है। गान लो फसल पर वह एक रुपये का चार सेर गेहूँ खरीदता है। और बाद में आवश्यकता पड़ने पर वह तीन सेर का अनाज बेचता है और वादा करा लेता है कि दूसरी फसल पर व्याज सहित इन रुपये का अनाज लगेगा। फसल पर छे सात महीने में व्याज सहित रुपये का फिर चार सेर के भाव से गेहूँ ले लेता है। इस तरह एक ही साल में दोगुना फायदा उठाता है। फसल की बिक्री में लाभ हानि देर-ग़वेर, तेज़ी मन्दी का ध्यान रखने से यही लाभ होता है।

इस खरीद और बिक्री से बगिए व्यापारी को ही फायदा होता है। बेचादे किसान को तो नुकसान ही रहता है। अगर उपज कम होती है तो किसानों को अधिक दाम तो मिलते नहीं। हाँ, बगियाराम ज़रूरी माल को अधिक ऊँचे भाव पर बेचकर खरीदारों से ज्यादा फायदा उठा लेते हैं।

किसानों को लाभ पहुँचाने के लिए उन्हें इन बनियों के हथकण्डे से बचाने तथा उनकी हालत को अच्छी बनाने के लिए गाँवों में माल बेचने तथा किसानों के लिए उनके जरूरत की वस्तु खरीदने वाली कमेटियाँ। (समितियाँ) बन गई हैं। इन कमेटियों को क्रय-विक्रय सहकारी समितियाँ कहते हैं। उन समितियों का काम यह होता है कि ये अपने सदस्यों की उपज अच्छे से अच्छे दामों पर बेचने की कोशिश करती हैं। इसके अलावा समिति किसानों के लिए अच्छे अच्छे एक तरह के बोज इकट्ठा करती है, अच्छी खाद का इन्तजाम करती है इत्यादि। आगे के किसी अध्याय में हमें इन समितियों के बारे में खुल कर हाल बतलाया जायगा।

बाजार (Market)

अब प्रश्न उठता है कि माल कहाँ बेचा और खरीदा जाता है? हम जवाब दोगे “बाजार में” लेकिन बाजार से क्या समझा जाता है? आमतौर पर जहाँ पर हम तरकारी भाजी मोल लेते हैं अथवा जहाँ अपनी जरूरत की वस्तु या वस्तुएँ खरीदते हैं उस जगह को बाजार या मण्डी कहते हैं। गाँव में हम जानते हैं कि दूसरे तीसरे दिन या हर हफ्ते बाजार लगता है। जगह जगह, म्युनिसिपैलिटी पक्की इमारत या घेरा बनवा देती है जिसमें तरह तरह के सामान बेचने के लिए दुकानें लगाई जाती हैं। पर साधारण तौर पर हम बाजार या मण्डी से जिस स्थान को समझते हैं वह अर्थशास्त्र के अन्दर बाजार नहीं कहलाता। अर्थशास्त्र में किसी पदार्थ के बाजार से उस सारे क्षेत्र में हमारा मतलब होता है जिसमें बेचने और खरीदने वाले आपस में इस तरह से सम्बन्ध रखते हैं कि उस बाजार में वस्तु का अनकरीब एक सा दाम रहता है। यदि गेहूँ का व्यापार दुनियाँ के भिन्न भिन्न देशों में आसानी से और कम खर्च से होता है तो तमाम दुनियाँ गेहूँ का बाजार कहा जायगा। यह जरूरी नहीं है कि बेचने और खरीदने वाले एक ही स्थान में इकट्ठा हों। वे दूर दूर रह सकते हैं।

उदाहरण के लिये उस बाजार को ले लीजिए जिसमें कम्पनियों के हिस्से बिकते हैं। आप जानते हैं कि अक्सर बड़ी कम्पनियों और बैंकों में केवल एक ही व्यक्ति का रूपया तो लगा नहीं रहता। बल्कि कम्पनी में पाँच-पाँच, दस

दस या सौ सौ रुपयों के हिस्से होते हैं। शेयरों में हर हिस्से के खरीदार को हिस्से के दाम देने पड़ते हैं जब कम्पनी चल निकलती है और कम्पनी को खूब मुनाफा होने लगता है तो हर हिस्से पर प्राप्त होने वाले मुनाफे की रकम बढ़ जाती है। इससे हिस्सों का दाम बढ़ जाता है अर्थात् यदि कोई अपने एक सौ के हिस्से को बेचे तो लोग उन्हें सौ अधिक दाम पर खरीद लेंगे। चूँकि आदमी घर बैठे इन हिस्सों की खरीद-फरोख्त कर सकता है अतएव हिस्से का बाज़ार बहुत विस्तृत होता है।

हमने ऊपर कहा है कि बाज़ार में वस्तु की कीमत अनकरीब एक सी रहती है। आप पूछ सकते हैं क्यों ? उत्तर है लागू ट के कारण। एक छोटे सा उदाहरण अपने अनाज की मंडी का ले लीजिये। उसमें बहुत से चावल, दाल, गेहूँ बेचने वाले बैठते हैं। मान लो गेहूँ का भाव चार सेर की रुपए का है ? अब अगर मेवालाल एक रुपए में तीन ही सेर गेहूँ देना चाहेगा तो खरीदने वाले उसे छोड़ कर औरों से गेहूँ मील लेंगे। इसी तरह अगर रामचन्द्र सवा चार सेर का गेहूँ बेचने लगे तो खरीदने वाले और दूसरे बनिपे जल्दी उसका सारा गेहूँ माल ले लेंगे और भाव फिर चार सेर का हो जायगा। इस तरह गेहूँ का भाव चार सेर का ही बना रहेगा। जिन पदार्थों का बाज़ार फैला हुआ होता है उनके साथ भी यही होता है। अगर बाज़ार के किसी काने में भाव मँहंगा है तो दूसरी जगह वाले माल बेचने के लिए वहाँ पहुँच जाएँगे। और जहाँ पर माल सस्ता होता है वहाँ का माल दूसरी जगह वाले जल्दी से खरीद लेते हैं और वहाँ भी फिर भाव बढ़ जाता है।

बाज़ार का क्षेत्र (Extent of the market)

किसी वस्तु की कीमत जितने क्षेत्र में समान हो उतना हो अच्छा होता है। डाक, तार टेलीफोन इत्यादि की सहायता से वस्तुओं के मूल्य में घट-बढ़ का समाचार आसानी से किसी स्थान में तुरन्त भेजा जा सकता है, और रेल, नहर, सड़कें, मोटर आदि से माल एक स्थान से दूसरे स्थान पर आसानी से पहुँचाया जाता है। इससे समय और धन दोनों में किरायत होती है और इससे बाज़ार का क्षेत्र बढ़ता है। यों तो बाज़ार बढ़ाने के लिए पाँच बातों का होना ज़रूरी है। पहले तो वस्तु ऐसी होनी चाहिए जो

जगह से दूसरी जगह ले जाई जा सके। मकान आदि की तरह बड़ी व स्थिर न होना चाहिये। छोटी होने के अलावा वस्तु जल्दी न बिगड़ती है। फल और मछली की कीमत एक सी नहीं रह सकती। लेकिन सोना, चाँदा वगैरह की कीमत बाजार में एक सी रहती है। दूसरी बात यह है कि पदार्थ को ले जाने में समय कम लगे। साथ ही खर्च भी कम पड़ना चाहिये। फल वगैरह ऐसी चीजें हैं कि जब तक उन्हें सावधानी से न रखा जाय तब तक ये दूर नहीं भेजे जा सकते। पत्थर की नक्काशी व शीशे की चीजों के टूट-फूट जाने का बड़ा डर रहता है और उन्हें दूर भेजने के लिये बड़ी होशियारी से उनकी पैकेज बनानी पड़ती है। इसका व्यय तथा मार्ग में उनके टूट जाने का डर, उनकी कीमत और खर्च बढ़ा देता है। तीसरी बात यह है कि वस्तु की माँग काफी और चारों ओर होनी चाहिये। इसी तरह पदार्थ ऐसे होने चाहिये कि लोगों को उसके बारे में सारा हाल अच्छी तरह बताया जा सके तथा दूर दूर रहने वाले खरीददार अच्छी तरह यह जान सकें कि वे किस तरह का माल मगा रहे हैं। खेती करने से जो अनाज आदि चीजें पैदा की जाती हैं वे कई प्रकार की होती हैं। गेहूँ भी कई प्रकार का होता है। इनका दूर दूर रहने वाले आदिमियों को ठीक ठीक परिचय देना बड़ा कठिन होता है। इससे कीमत के विचार से गेहूँ, चना आदि चीजें सोना-चाँदी की बनिस्बत बहुत ज्यादा जगह घेरते हैं। इसी कारण गेहूँ, चना आदि का बाजार बहुत विस्तृत नहीं होता। इस तरह जमीन का बाजार बहुत कम विस्तृत होता है क्योंकि वह बिल्कुल स्थिर होती है। मकानों और अपने अपने मन के पसन्द की चीजों की भी यही हालत है।

वस्तु की कीमत किस प्रकार निश्चित होती है

किसी वस्तु के बाजार के सम्बन्ध में बताते समय हमने कहा है कि बाजार में कीमत एक सी रहती है। सवाल उठता है कि बाजार में वही कीमत निश्चित की जाती है। विनिमय के सम्बन्ध में हमने कहा था कि किसी वस्तु की बिक्री उसी समय हो सकती है जब कि वह आधुनी से प्राप्त हो तथा खरीददार को उसकी आवश्यकता हो। जब किसी वस्तु में उपरोक्त दोनों गुण होते हैं तब उसकी माँग तथा पूर्ति के अनुसार कीमत निश्चित होती

है। माँग में हलका मतलब वस्तु की उन मूल्य या वजन से है जिसे कुल खरीदार मोल लेने को तैयार रहते हैं; और पूर्ति वस्तु की उस मात्रा के बराबर है जिसे व्यापारी बेचने का तैयार रहता है। यदि माँग अधिक है तो खरीददार आपस में चढ़ा-चढ़ी करते हैं और बेचने वाले को अधिक दाम मिलता है। यदि पूर्ति ज्यादा है व खरीद कम, तो कम दाम पर ही चीजें बिकेंगी। परन्तु यदि किसी वस्तु के सब व्यापारी आपस में किसी तरह का समझौता करके यह निश्चय कर लें कि हम प्रायः कीमत से कम पर माल नहीं बेचेंगे तो खरीददार को शायद उम्मीद ही कीमत देनी पड़े। खरीददार क्यों उम्र निश्चित कीमत को देगा? क्योंकि उसे उन चीज की आवश्यकता है और जैसे जैसे समय बीतेगा वैसे ही वह उस वस्तु की जरूरत को और अधिक ही महसूस करता जायगा। यह तो सब कोई जानता है कि गरज बावली होती है। अगर अपनी गरज (स्वार्थ या आवश्यकता) है तो हम उतने ही दाम देकर उस चीज का खरीदेंगे। मान लीं घर में आटा नहीं है और बाजार में पिसा हुआ आटा नहीं मिल सकता तब तुमको मंडी जाकर अनाज मोल लेना पड़ेगा। उस समय यदि मंडी वाले चार सेर की जगह तीन सेर की रुपये की दर से ही मेहँ आदि देने का निश्चय कर लें तो तुम क्या करोगे। बिना अनाज लिये तुम्हारा पेट का काम चल नहीं सकता। अगर तुम इतना दाम न देना चाहोगे तो जैसे जैसे समय बीतेगा वैसे वैसे तुम्हें अनाज की जरूरत ज्यादा महसूस होती जायगी और तुम अधिक दाम देने को तैयार होते जाओगे, यहाँ तक कि अंत में तुम व्यापारी का मुँह माँगा दाम देकर उस पदार्थ को भी खरीद लोगे।

यदि सोच कर देखा जाय तो मालूम होगा कि ऊपर दिये हुये उदाहरण में पूर्ति तो कम थी और खरीददार की माँग बहुत अधिक। माँग और पूर्ति का किसी वस्तु की कीमत पर क्या असर पड़ता है इसका एक और उदाहरण लीजिए। मान लीजिए आपको अनार लेना है। फल की मंडी में जाने पर आपने कई फलवालों के पास अनार देखा, मगर भाव पूछने पर सब ने एक रुक्या सेर बताया। अगर आपको अनार लेना बहुत ही जरूरी है तो आप फल वालों के रईस गिर्द इस प्रकार चक्कर लगावेंगे। जैसे दूध के चारों ओर बिस्ली फलवाले इससे आपकी आवश्यकता की थाह पा लेंगे।

और फिर तो आप उनसे कभी भी रुपये सेर से कम पर अनार न ले सकेंगे। मान लीजिये आपके ले चुकने पर एक सज्जन और आ पहुँचे। उन्हें अनार का भाव मालूम पड़ा तो वे बोले तेरह आने सेर दोगे ? अनार वाला बोला कि देखिए बाबू साहब खड़े हैं, पूछ लीजिए। उन महोदय को अनार की आवश्यकता है इसलिये उन्होंने चौदह आने सेर पर अनार माँगा। भाव कुछ बढ़ते देखकर अनार वाले ठेढ़े पड़ने लगे। उस पर खरीददार जाने लगा। इस पर अनारवाला सोचता है कि शायद इससे ज्यादा दाम नहीं देना चाहते। साथ ही वह इस बात पर भी ध्यान देता है कि रुपये में उसे चार आने का फायदा होता है। चार आने न सही ढाई या तीन आने सही। तब वह आवाज लगाता है “बाबू जी यहाँ तो आर्ये” आखिर क्या भाव लेना चाहते हैं”, “कुछ और दीजिए” “आप के खातिर दं पैसा घटा दूँगा ” होते होते आखिर पन्द्रह आने पर सौदा तय हो गया। देखा आपने दूसरे सज्जन की माँग इतनी अधिक नहीं थी कि वे रुपये सेर का दाम देने को तैयार हो जाते। उन्होंने देखा कि इन अनार वालों का गुट्ट अधिक दाम माँग रहा है तो वे जाने लगे। अनार के रहते माँग कम हो गई और इसीलिए गुट्ट में से एक को कम दाम पर अनार बेचना पड़ा। यदि दूसरे सज्जन के सामने और लोग भी आने लगते तो अनार का भाव पन्द्रह आने पर ही बना रहता।

यदि माँग बिल्कुल ही कम हो तो कीमत और भी गिर जाती है। अनार जल्दी बिगड़ने वाला फल है। मान लो रात हो गई और बाजार में सन्नाटा छाने लगे अर्थात् ग्राहकों का आना कम हो गया। उसी समय एक मनचला खवान आ पहुँचा। भाव पूँछ कर वह बोला कि चौदह आने सेर दो तो दो सेर दे दो। अनारवाला मन में सोचता है कि क्या पता दो सेर अनार बेचने के लिए मुझे कल कब तक ठहरना पड़े। फिर रात को कुछ अनार बिगड़ने लगेंगे। इसके अलावा तुरन्त नफे के चार आने मिल जायेंगे, यह सोच कर वह चौदह आने सेर पर ही अनार बेच देता है।

किसी चीज के भाव के निश्चित होने पर उस चीज की मात्रा या वजन का असर जरूर पड़ता है। तीसरे सौदे में अनार वाले ने इसका ख्याल किया

था। यही क्या, आप कहीं भी थोक अधिक माल लीजिये तो आपको कम कीमत देनी पड़ेगी। बाजार में आप आम खरीदने जाइये, अगर पैसे में एक आम मिलता है तो शायद दस में एक दर्जन और अठारह आने में सौ आम मिल जायेंगे। इसके अलावा अनार वाले ने भविष्य का भी ख्याल किया था।

यदि अनाज वालों को यह पता चल जाय कि वर्षा की कमी के कारण अबकी बार खेती खराब हो रही है तो वे अभी से भाव तेज कर देंगे। वे जानते हैं कि यदि आज कोई तेज भाव पर अनाज नहीं खरीदेंगे तो कल आवश्यकता बढ़ जाने पर लोग अवश्य ही अनाज खरीदेंगे। व्यापार में भविष्य कितना खेल खेलता है इसका अंदाजा लगाना कठिन है। कितने सेठ साहूकारों ने इसी की बदौलत कोठियाँ खड़ी कर लीं और इसी वजह से अपनी आजीविका पैदा कर रहे हैं। समय के साथ भी कीमत घटती बढ़ती है। यदि आज गेहूँ चार सेर का बिकता है तो हो सकता है कल पौने चार सेर का बिकने लगे। क्यों? मान लीजिए कल सुबह गाँव से गेहूँ की बीस गाड़ियाँ आ गईं। इससे गेहूँ की पूर्ति केलिहाज से माँग के कम पड़ जाने से भाव गिर गया और गेहूँ पौने चार सेर का बिकने लगा। खयाल कीजिए कि किसी वर्ष खेत में खूब अनाज पैदा हुआ। परन्तु इसी समय यूरप में लड़ाई छिड़ जाने से वहाँ अनाज की माँग बहुत बढ़ गई। किसानों और व्यापारियों ने अच्छे दाम पर अनाज बाहर भेजना शुरू किया। इस समय देश में अच्छी फसल होने पर भी अनाज की कीमत बढ़ जायगी।

यदि हम अनार वाला उदाहरण फिर से ले लें तो क्या अनार बेचने वाला बारह आने। सेर का दाम ले लेगा? कदापि नहीं। बारह आने तो उसका लागत खर्च है। मुनाफा व मेहनत के दाम कहाँ गये? बारह आने छोड़ वह तेरा आने पर भी अनार बेचने को तैयार नहीं होगा। लेकिन वस्तु की हालत खराब हो जाने पर कीमत अवश्य गिर जाती है। मान लो कोई जलेबी वाला है। रात हो जाने पर जलेबी सूख कर बाधी हो जाती है। वह जानता है कि दूसरे दिन ताजी जलेबियाँ वनेंगी उस समय बासी जलेबियों को कोई नहीं पूछेगा। इसलिये रात को भाव और कम कर देगा या अंत में जलेबियों को स्वयं खा लेगा।

किसी वस्तु की उत्पत्ति में जो खर्च बैठता है उस वस्तु की कीमत उस खर्च के आस पास ही रहती है। यदि आशा, निराशा, रुपये की तंगी इत्यादि का खयाल न किया जाय तो उस चीज की कीमत हमेशा चीज को उत्पन्न करने के व्यय से थोड़ा सा अधिक ही रहती है। इस अधिकता में बेचने वाले का मुनाफा शामिल रहता है। एक किसान को उपज करने में खेतों को जाँतना, बोना व सींचना पड़ता है। इनके अलावा अनाज की कटाई, मँड़ाई करके बाजार में लाने में खर्च होता है। यह सब खर्च तथा उनकी मजदूरी मुनाफा और खेत का लगान, उत्पादन व्यय में शामिल रहता है। तुमको मातूम है कि कई मिलें एक ही तरह का माल तैयार करती हैं। परन्तु सब का लागत खर्च भिन्न होता है; किसी का कम किसी का ज्यादा। ऐसी हालत में क्या तुम बता सकते हो कि बाजार में उस वस्तु का मूल्य सबसे कम लागत के हिसाब से निश्चित होगा या सबसे अधिक लागत के अनुसार। इन दशाओं में हमेशा किसी चीज की कीमत सबसे अधिक लागत का ध्यान रखकर निश्चित होती है। हाँ यदि लागडाट हो तो सबसे कम लागत वाली मिल कम कीमत पर माल बेचेगी। परन्तु यदि ऐसा हुआ तो दूसरी मिलें बन्द हो जाएँगी।

कुछ वस्तुएँ ऐसी होती हैं कि उनकी मात्रा कभी बढ़ाई नहीं जा सकती जैसे पुराने चित्र, सिकके इत्यादि। इनकी कीमत माँग और पूर्ति के हिसाब से ही तैयार की जाती है। उत्पादन-व्यय का उस पर कोई असर नहीं पड़ता।

खेती से उत्पादन पदार्थों की कीमत

ऊपर कीमत निश्चित होने के सम्बन्ध में जो बातें बतलाई गई हैं वे हमारे गाँव में बिकने वाली चीजों के ऊपर नहीं लागू होतीं। इसकी एक खास वजह है। हमारे किसान कर्जदार रहते हैं। गाँव के महाजन किसानों को खाने के लिये अनाज उधार देते हैं। लेकिन वे खाते में अनाज का वजन लिख कर बाजार भाव से सेर आधा सेर कम भाव अनाज का दाम लगा कर खाते में लिख लेते हैं। फसल पर ये लोग रुपये के बदले में अनाज लेते हैं। परन्तु किस भाव ? इस बार अनाज बाजार से सेर आधा

सेर अधिक भाव पर लिया जाता है। उदाहरण के लिये यदि चार सेर का भाव है तो उधार देने के समय अनाज का भाव पौने चार सेर का लगाया जाता है और फसल पर लेते समय पाँच सेर का भाव लगाया जाता है। बेचारे किसानों को इससे काफी घाटा सहना पड़ता है।

इसके अलावा बहुत सी उपज को किसान व्यापारी के हाथ बेचता है। व्यापारी फसल के समय तो सस्ते दामों में अनाज खरीदता है, फिर कुछ दिनों बाद उसी अनाज को किसानों के हाथ मँहंगा दामों में बेचता है। आप कह सकते हैं कि किसान अपने लिये अनाज बचा कर क्यों नहीं रख लेता। ठीक है, परन्तु हमारे किसान की ऐसी हालत है कि वह फसल को अपने पास रख तो सकता ही नहीं। किसान जितना अनाज पैदा करता है उसका एक बड़ा भाग तो नाई, धोबी, लोहार वगैरह के पास चला जाता है। कर्ज पटाने व लगान देने के लिए रुपए की जरूरत पड़ती है। इसीलिए बाकी भाग भी फौरन बेचना पड़ता है। किसान जब मंडी में अनाज बेचने जाता है तो उसके और व्यापारों के बीच में दलाल आ पड़ता है। फिर उसे अनाज उतारने वाले को, तौलने वाले को, रसोइया को, भिंती और मेहतर को कुछ न कुछ देना पड़ता है। इसके अलावा मन्डी के कुएँ के लिये गंगाजली के नाम पर व धर्मखाते के नाम अनाज वसूल किया जाता है। फिर जिस बाट से तौल कर व्यापारी अनाज लेता है वे गड़बड़ होते हैं। इन सब बातों से किसान जिस भाव से अनाज बेचता है वह और सस्ता हो जाता है। बल्कि यह कहा जाय कि हमारे किसान की हालत ऐसी गिरी हुई है कि माल बेचते समय किसान लूटा जाता है। किसानों की बिगड़ी हुई हालत के अलावा अनाज को बेचने के लिये उसे अच्छे तरीके नहीं प्राप्त हैं। हमारे किसानों की पहुँच अच्छे बाजारों तक नहीं होती। खेतों से उत्पन्न पदार्थों को बाजार में बेचने के प्रश्न के ऊपर हम अगले किसी अध्याय में अच्छी तरह विचार करेंगे।

अभ्यास के प्रश्न

१—अदला-बदली को सुविधाएँ उदाहरणों सहित समझाइये।

प्रा० अ० शा०—७

२—किसी वस्तु को बिक्री में बेचने वाले और खरीदने वाले दोनों को लाभ होता है। उदाहरणों सहित समझाइये।

३—अदला-बदली क्या है? क्या यह आपके गाँव में पाई जाती है? क्रय-विक्रय ने इसका स्थान क्यों ले लिया है?

४—फसल बेचते समय भारतीय किसानों को किस प्रकार हानि उठानी पड़ती है?

५—अपने गाँव के किसी किसान के साथ मंडी जाकर यह पता लगाइये कि अपना अनाज बेचते समय तौलने वाले को, नौकरों को तथा धर्म के नाम पर कितना अनाज देना पड़ा।

६—यदि किसी वर्ष वर्षा कम हो जाय तो उसका असर अनाज की कीमतों और अन्य वस्तुओं की कीमतों पर कैसा पड़ेगा?

७—यदि किसी वर्ष वर्षा बहुत अच्छी हो और फसल अच्छी आवे परन्तु विदेश से अनाज की माँग बढ़ जाय तो अनाज की कीमत पर तथा अन्य वस्तुओं की कीमत पर क्या प्रभाव पड़ेगा?

८—स्वदेशी आंदोलन का गाँधी टोपी की कीमत पर क्या प्रभाव पड़ा? इसका प्रभाव विदेशी टोपियों की कीमत पर क्या हुआ?

९—वस्तु की कीमत का उसके लागत खर्च से क्या सम्बन्ध रहता है?

१०—लागत खर्च में जो खर्च शामिल किये जाते हैं उनकी सूची एक किसी वस्तु का उदाहरण लेकर तैयार कीजिए।

११—सूती कपड़ा भारत में सैकड़ों मिलों में तैयार किया जाता है और प्रत्येक का औसत लागत खर्च भिन्न भिन्न है। ऐसी दशा में सूती कपड़े का मूल्य किस मिल के लागत खर्च के बराबर होगा?

१२—लागत खर्च से कम कीमत पर वस्तु किन दशाओं में बेची जाती है?

१३—आप 'बाजार के क्षेत्र' से क्या समझते हैं? किसी वस्तु के बाजार का क्षेत्र किन बातों पर निर्भर रहता है? विस्तृत बाजार वाली कम से कम दस वस्तुओं की सूची तैयार कीजिए।

१४—निम्नलिखित वस्तुओं का बाजार किन दशाओं में विस्तृत हो सकता है?

कलमी आम, लकड़ी, कम्पनी का हिस्सा (शेयर), पुस्तक, नयी मशीन ।

१५—किसी वस्तु की कारखाने की कीमत और फुटकर बिक्री की कीमत के पारस्परिक सम्बन्ध उदाहरणों सहित समझाइये ।

१६—सफल दूकानदार में किन गुणों की आवश्यकता है ?

दसवाँ अध्याय

ग्रामीण फसल की बिक्री

प्रकथन

पिछले अध्याय में हमने फसल की बिक्री के बारे में थोड़ा सा हाल बताया था । हम यह बता चुके हैं कि किसानों को ज्यादातर अपना माल उन महाजनों के हाथ बेचना पड़ता है जिनसे वे रुपया उधार लिए रहते हैं । यह कहने की जरूरत नहीं मालूम पड़ती कि वे माल लेते समय बाज़ार से बहुत सस्ता दाम लगाते हैं । परन्तु कुछ किसान ऐसे भी हैं जो स्वयं मंडी में जाकर अनाज बेचते हैं । आप पूछ सकते हैं कि किसान किस मंडी में अपना अनाज बेचता है और किस प्रकार बेचता है ।

इसके पहले कि हम मंडी और बिक्री के ढंग के बारे में कुछ बताएँ, यह कहना गलत न होगा कि किसान और खरीददारों के बीच में व्यापारी का होना जरूरी है । सब खरीददार फसल तैयार होते ही साल भर के लिए अनाज या अन्य उपज यों खरीद नहीं सकते । उन्हें जब जरूरत होती है तथा जब जब में पैसे होते हैं तब अनाज खरीद लेते हैं । परन्तु हमारे किसान के लिए यह सख्त जरूरी है कि फसल तैयार होने के बाद जितनी जल्दी हो सके वह बिक जाय । वह साल छै महीने तक अनाज को लिये बैठा नहीं रह सकता । पहले तो उसके पास इतनी जगह ही नहीं होती कि वह उपज को रक्खे । आप जानते ही हैं कि फसल काट कर वह खलिहान में रखता है । दूसरी बात यह है कि किसान कां. लगाव, सूद, मज़दूरी आदि देनी पड़ती है ।

सरकार ख़ुशमान अधिकतर रुपये में माँगती है। कुछ मज़दूरी भी पैसों में देनी पड़ती है। अतएव यह जरूरी हो जाता है कि किसान फसल रख नहीं सकते, इस लिए इन दोनों के बीच व्यापारी का होना जरूरी है। इन व्यापारियों से बड़ा काम निकलता है। यह एक फसल को एक स्थान में इकट्ठा करते हैं। फिर उन्हें साफ़ करा कर तथा उनकी किस्मों को अलग अलग करके बाज़ारों में भेज देते हैं। वहाँ छोटे दूकानदार अनाज को खरीद कर फुटकर खरीदारों के हाथ बेच देते हैं।

बिक्री की बातें

अस्तु, उपज को मुनाफ़े के साथ बेचने के लिए यह अत्यन्त जरूरी है। एक बेचने वाले को बाज़ार भाव व बाज़ार की दशा का पूरा ज्ञान हो। कौन चीज़ कहाँ सस्ती बिकती है, कहाँ ले जाने से महँगी बियेगी, किस रास्ते तथा किस तरह ले जाने से भाड़ा कम पड़ेगा, इन सब बातों का पूरा ज्ञान होना जरूरी है। उसे यह भी मालूम होना चाहिए कि उपज को किस समय अथवा कितने दिनों के अन्दर बेच देना चाहिए। परन्तु हमारे किसान तो अशिक्षित और निर्धन हैं। वे भाव ताव के बारे में कुछ नहीं जानते। प्रायः उन्हें बाहर की मंडियों का भाव मालूम नहीं रहता, और न उन्हें बाहर जाकर बेचने का सुभीता ही रहता है। इसलिये उन्हें गाँव में या पास की किसी मंडी में जो दाम मिलता है उसी में सतोष करना पड़ता है।

मंडी में फसल का बिक्री

प्रथम तो किसान को यही नहीं मालूम पड़ता कि उसका माल उचित भाव से बिक रहा है या नहीं, और उसे ठीक ठीक दाम मिल रहे हैं या नहीं। फिर म्युनिसिपल टैक्स (चुँगी) के अलावा किसान का मंडी में गाड़ी ठहराने का शुल्क, दलाल की दलाली देना पड़ता है। फिर अनाज उतारने वाले पल्लेदार को, माल तौलने वाले को, भूमा निकालने वाले को तथा गौशाला, मंदिर, प्याऊ आदि न जाने उससे किम किस के लिए दान लिया जाता है। तम्बाकू खरीदने वाला तौलाई की गिनती के लिए मन पीछे तम्बाकू का एक पूड़ा लेता है, गंगा जी के नाम पर दूसरा पूड़ा लिया जाता है। तौलने वाला अपने काम के लिए एक पूड़ा लेता है। फिर तौलाई

और दलाली अलग लगती है। इस तरह से बेचने वाले की खासी रकम निकल जाती है। इसके अलावा अनाज जिस बाट से तौला जाता है वह अक्सर बनाबटी होता है। व्यापारी सरकारी पसेरी की जगह पत्थर के बाट काम में लाते हैं। बेचारे किसान इस बाबत भी कुछ नहीं कह सकते। यही नहीं, कभी तौलने वाला डंडी मारता है, तराजू में पासंगा रखता है इत्यादि।

गाँव में बनी वस्तुओं की बिक्री

इसी प्रकार की हालत हमारे गाँवों के शिल्पी और कारीगरों की भी है। गाँव में अधिकतर जुलाहे, बढ़ई, रस्सी बटने वाले, तेली, मोची आदि कारीगर और दस्तकार रहते हैं। इनको भी बाजार भाव का ज्ञान नहीं होता। जुलाहा बुनकर कपड़ा तैयार करता है। बढ़ई बिना माँग के हल को बना लेता है। रामू किसान फुरसत के वक्त सन को बट कर रस्सी तैयार करता है। बालदीन टोकरी बना डालता है। शंकर तेली अलसी और सरसों का तेल तैयार करता है। इनको बेचने के लिए वे पहले गाँव में ही खरीदार ढूँढते हैं। अपने तैयार माल को गाँव के महाजन या साहूकार के पास ले जाते हैं। उससे पूछते हैं कि क्या उसे कपड़े, रस्सी आदि की जरूरत है। परन्तु एक बात है। इन महाजनों और साहूकारों के हाथ माल बेचने से उन बेचारों को पूरा दाम कभी नहीं मिलता। गाँव के ये कारीगर अपने माल को गाँव के हाट में भी बेचते हैं। यदि गाँव के पास कहीं मेला होता है तो बेचने की गरज से माल को वहाँ ले जाते हैं।

ग्रामीण सड़क

माल को बेचने की प्रथा में जो बुराईयों हैं उनको दूर करने के लिए देश की सरकार कोशिश करती रहती है। माल को अच्छी मंडी में पहुँचाने के लिए पहले तो इस बात की आवश्यकता है कि गाँवों का मंडियों से सम्बन्ध हो। अर्थात् मंडियों को मिलाने के लिए अच्छी उमदा सड़कें हों। आप यदि गाँवों की आरजाने का कष्ट करें तो आप को मालूम होगा कि प्रथम तो गाँवों में जाने के लिए रास्ता ही नहीं होता, यदि होता भी है तो बच्चा, घूल और गड्डो से भरा हुआ, जिसमें से नैल-गाड़ी को निकाल ले

जाना मुश्किल जान पड़ता है। फिर बैल गाड़ी, ऊँट तथा घोड़े-गदहे होते ही कितने किसानों के पास हैं। गाँव में मुश्किल से दो तीन बैलगाड़ियाँ निकल सकती हैं। ऐसी हालत में यह बड़ा जरूरी है कि गाँव में पक्की सड़कें बनाई जावें। बीसवीं शताब्दी के नए जमाने में बैलगाड़ी का काम नहीं। यदि मोटर लारी का इन्तजाम हो सके तो बड़ा ही अच्छा हो और किसान अपने माल को अच्छी मंडी में कम खर्च से पहुँचा सकें। द्वितीय महायुद्ध खतम हो जाने के कारण फौज की मोटर लारियों से पदार्थों की ढुलाई का काम लिया जा सकता है।

यह संतोष की बात है कि भारत सरकार और प्रान्तीय सरकार यातायात की उन्नति के लिये प्रयत्नशील हैं और इस हेतु योजनाएँ बना रही हैं। इन योजनाओं में लारी रेल की लागडाट बिस्कुल घट जाएगी।

सहकारी संस्थाएँ और बिका (Marketing Cooperative Societies)

लेकिन किसानों की तो अवस्था ऐसी है कि माल को मंडी में पहुँचाने का इन्तजाम हो जाने-से भी उनकी हालत अधिक नहीं सुधर सकती। हर एक किसान के पास शायद इतनी अधिक फसल नहीं होती कि वह उसे मोटर पर लाद कर मंडी ले जाए। इससे भी अधिक मार्केट की बात तो यह है कि किसान यह नहीं जानता कि फसल को किस मंडी में ले जाएँ। फिर भाव ताव और मंडी में लिए जाने वाले तरह तरह की उगाही का सवाल तो बाकी रह जाता है। यह देखा गया है कि सहकारी संस्थाएँ किसानों को इस दुख से उबार सकती हैं। सहकारी संस्था वह संस्था है जो सरकार के सहकारी विभाग की ओर से खोली जाती है। इसमें गाँव वाले सदस्य बनाए जाते हैं। संस्था का मैनेजर, जिसकी नियुक्ति सरकार की ओर से होती है, किसानों की उपज को खरीद कर उसे महुँगी से महुँगी मंडी में बेचता है। इस प्रकार से संस्था को जो लाभ होता है उसमें मैनेजर वगैरह की तनखाह काटने के बाद जो बचता है वह तो मँबरो को ही बाँट दिया जाता है। यही नहीं बाजार सम्बन्धी अन्य बातों की जानकारी प्राप्त करने के बाद सहकारी समिति माल को अंतिम खरीददार के हाथ भी बेच सकती है।

ऐसा करने से बीच के कई दलालों की दलाली तथा नाना प्रकार के शुल्क आदि से सहज ही में छुटकारा मिल जाता है और किसानों को भी अधिक से अधिक दाम मिल जाता है ।

विदेशों में तो इन संस्थाओं को काफी सफलता मिली है । इंग्लैण्ड, अमरीका आदि देशों में हजारों ऐसी समितियाँ काम कर रही हैं । हमारे देश में भी ऐसी समितियाँ खोलने का प्रयत्न किया जा रहा है । जब प्रांतीय इंतजाम कांग्रेस के हाथ में आया तब ये समितियाँ खूब जोर-शोर से खोली गईं । प्रांतीय सरकारों ने अब इन समितियों को अधिक संख्या में व्यवस्था और उन्नति करने की योजना बनाई है । इन समितियों को माल रखने की सुविधा देने के लिये सरकारी व्यय से छोटी बड़ी सीमेंट की खत्तियाँ (जमीन के अन्दर गोदाम) बनाई जाएँगी । परन्तु भारत में एक और विशेष बात है । हमारे किसान बहुत श्रृणी हैं । यह बात किसी से नहीं छिपी है । पहले तो इस कर्ज के मारे किसानों को अपना माल महाजन के हाथों में ही बँचना पड़ता है । दूसरे कर्ज अधिक होने से महाजन किसी प्रकार किसान से अपना रुपया निकालना चाहता है । महाजन भी समिति के मेम्बर बन तो सकते ही हैं । बस वे उस समिति से किसान को रुपया कर्ज दिला देते हैं । यह रुपया वे किसानों से खुद दिये हुये कर्ज की अदाएँ में वसूल कर लेते हैं । और फिर महाजन साहब समिति की मेम्बरी छोड़ देते हैं । बाद में किसान के रुपया चुका न सकने के कारण समिति का काम रुक जाता और फिर सब चौपट हो जाता है । परन्तु समिति के इन गुण-दोषों के बारे में बताने की यह जगह नहीं है । आगे चल कर साल के सम्बन्ध में बताते समय इन संस्थाओं के बारे में और खुल कर बताएँगे ।

हमारे सामने सबसे बड़ा प्रश्न तो यह है कि हमको अपने अपढ़ और मूर्ख किसान समूह को पढ़ा लिखा कर एक ऐसे व्यापारी मंडल में बदल देना है कि वे आजकल के व्यापारी मंडल का सफलता पूर्वक सामना कर सकें । इस बात की अत्यन्त आवश्यकता है कि किसानों की पुश्तैनी आलस और असमर्थता को उनसे भगा दिया जाय । व्यापारियों के दिमाग में यह बात अच्छी तरह घुसा देने की जरूरत है कि वे उचित लाभ लेते हुये

किसानी से मिलकर काम करें। अब तो व्यापारियों को कन्ट्रोल में लाने के लिये तथा बड़ी मंडियों में सुप्रबन्ध के लिये कमेटियाँ बनाई जाएँगी। ये कमेटियाँ उन सब बेइमानी और दिक्कतों को दूर करने तथा किसान को ठहरने की सुविधा देंगी।

ग्रामीण बाजार

रोजमर्रा के काम के लिये गाँव में कुछ दूकानें तो रहती ही हैं जैसे तेली की दूकान, मोची की दूकान, बढ़ई की दूकान, भुंजवा की दूकान इत्यादि। परन्तु बात यह है कि गाँव का बढ़ई, चमार, तेली वगैरह हर समय लकड़ी, चमड़े और तेल का ही काम नहीं करते। अधिकतर इनके पास खेत हाँते हैं और ये अपना अधिक समय खेती करने में लगाते हैं। बिहारी चमार के पास चमड़े की कटाई, सिलाई आदि करने के औजार रहते हैं, परन्तु वह उनको तभी निकालता है जब गाँव का कोई मनुष्य उसे अपना जूता मरम्मत करने का दे जाता है। या जब कुएँ से पानी निकालने वाले चमड़े का डोल फट जाता है और उसका मालिक उस डोल को ठीक कराने के लिए बिहारी के पास लाता है। बिहारी बाजार के महादेव चमार की तरह दूकान खोलकर दिन भर नहीं बैठा रहता। इसी प्रकार बाजार में दूकान कर शीतल बढ़ई लकड़ी का कोई न कोई काम करता ही रहता है, उसका मुख्य पेशा लकड़ी का काम करना है। जब उसके पास मरम्मत के लिये कोई काम नहीं रहता तब वह अपने मन से कुर्सी, मेज खाट आदि चीजें बनाया करता है। जब कहीं पर चमार, बढ़ई, तेली, कुम्हार आदि दूकान खोल कर काम करते हैं तब हम कहते हैं कि उस जगह पर बाजार है। अधिकतर गाँवों में बाजार नहीं होता। गाँव में कुछ ऐसे आदमी होते हैं जो खेती करने के अलावा, बढ़ई, चमार, कुम्हार आदि का काम भी जानते हैं। अतएव जब रामू को चारपाई की जरूरत पड़ती है तो गोपाल बढ़ई कुरसत के समय में लकड़ी को काट छील कर रामू के लिए एक चारपाई बना देता है। इसी तरह जूता फट जाने पर हामिद चमार अपने कामों से कुरसत पाकर जब बैठता है तो औजार निकाल कर जूते को सी देता है। यह जरूरी नहीं कि प्रत्येक गाँव में एक बाजार हो। शहरों में तो

बाजारों का होना अनिवार्य है क्योंकि वहाँ तो हर समय कोई न कोई व्यक्ति माल खरीदने अथवा कोई वस्तु बनवाने के लिये नैयार रहता है। बड़ई, चमार, लोहार वगैरह को सुबह हो शाम तक करने के लिये काफी काम रहता है। लेकिन गाँवों में इतना काम कहाँ से आया? अतएव कुछ बड़े-बड़े गाँवों में ही बाजार रहते हैं बाकी में नहीं। और जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं बाजारों की जरूरत भी वहाँ नहीं रहती है।

हाट

यदि गाँवों में बाजार हो तब भी गाँव वालों के हर एक आवश्यक चीज वहाँ नहीं मिल सकती। मान लीजिये कोई वस्तु गाँव में नहीं बनती और रामू किसान को उसकी बड़ी जरूरत है। एक दूसरे गाँव में वह वस्तु बनाई जाती है। परन्तु उस वस्तु के बनाने वाले को क्या गरज पड़ी है कि वह रोज रामू के गाँव में उस वस्तु को बेचने आया करे। इसलिये हफ्ते में कहीं एक बार, कहीं दो बार बाजार लगता है। इसे हाट कहते हैं। ग्राम समूह के बीच के किसी एक गाँव को हाट के लिये चुन लिया जाता है हाट के दिन उस गाँव के चारो ओर स्थिति गाँवों से लोग अपनी अपनी वस्तुओं को लेकर आते हैं। कोई तरकारी भाजी बेचने लाता है, कोई टोकरी, कोई रस्सी, कोई कपड़ा। इसी तरह वे जो जिसके पास होता है वह उसे बेचने के लिये लाता है। तेली तेल लाता है। लोहार फावड़ा, कुदाली लाता है, और चमार जूता, चमड़े का डोल आदि चीजें लाता है। बेचने वालों के अलावा गाँवों से माल खरीदने वाले भी आते हैं जो जिसको जरूरत होती है वह उस वस्तु को खरीद लेता है। अधिकतर हाट दफ्तर के बाद लगता है और रात होते होते हाट उठ जाता है।

गाँव का मेला

हाट के अलावा त्योहारों पर मेला लगता है। चूँकि त्योहार साल भर में एक बार आते हैं इसलिये मेला साल में लगता है। मेला किसी कसब या बड़े गाँव में लगता है। उसमें बड़ी भीड़ होती है मेले में दूर दूर के गाँवों से लोग आते हैं। जब मेला लगता है तो गाँव में सब लोगों के घर पर मेहमान आते हैं। भुंड के भुंड लोग देखने आते हैं। मेले में

जो भाँड़ होती है उसमें यदि कोई छूट जाय तो बड़ी मुश्किल से मिलता है। इसलिए मेले में सब लोग इस बात का ध्यान रखते हैं कि कहीं कोई भटक न जाय। ऊपर बताई बात से यह तो मालूम पड़ जाता है कि मेले में सैकड़ों आदमी इकट्ठा होते हैं। मेले में तरह तरह की दुकानें आती हैं। कहीं खिलौने बिकते हैं, कोई कागज के फूल, चिड़ियाँ और बाँसुरी बेच रहा है। कहीं फल बिकते हैं, कहीं मिठाई और कहीं बरतनों के ढेर लगे रहते हैं। मेले में खेल भी बहुत होते हैं। मेले में हिंडोले भी गड़ते हैं। लड़के और बड़े लोग उन पर झूलते हैं। कहीं कहीं बड़े मेले लगते हैं। जो चीजें गाँव के हाट व बाजारों में बिकने नहीं आती, वे मेलों में बिकने आती हैं। बड़े बड़े मेलों में गाय, बैल, घोड़े आदि भी बिकने आते हैं।

हाट और मेले का महत्व

गाँव और गाँव के रहने वालों का खयाल रखते हुए यदि हाट और मेलों के बारे में सोचा जाय तो वे काफी महत्व रखते हैं। हाटों में अधिकतर अनाज आदि की बिक्री अधिक होती है। इसके विपरीत मेलों में खेल-खिलौने और मिठाई के अलावा दस्तकारी की वस्तुओं और जानवरों की खरीद-फरोख्त होती है। अतएव हाट ता किसानों के लिए उपयोगी होते हैं और मेले कारीगरों और दस्तकारों के वास्ते। इसके अलावा यदि गाँव भर का खयाल किया जाय तो हाट मेलों से बढ़कर स्थान रखते हैं। क्योंकि हाट में अनाज, तरकारी व हाथ की बनी हुई चीजें बिकने आती हैं। व्यापारी लोग अक्सर हाटों से अनाज खरीद ले जाते हैं।

हाट और मेले का संगठन

परन्तु कुछ गाँवों से हाट व मेले का स्थान पास नहीं पड़ता। यह बहुत जरूरी है कि हाट लगाने के स्थान इस प्रकार चुने जाएँ कि आस-पास के गाँव के निवासियों को उसमें पहुँचाने का मौका मिले। इसके अलावा किसानों को ठगे जाने से बचाने के लिए उन्हें बाजार-भाव का ज्ञान करना बड़ा आवश्यक है और आजकल न तो हाट ही व्यवस्थित रूप में लगते हैं और न मेले ही। हालांकि इनके जरिए किसान व गाँव के कारीगर अपना बहुत कुछ माल बेच सकते हैं। परन्तु देखा जाता है कि इनमें और खास

कर मेले में मजा उड़ाने, तमाशा देखने आदि की गरज से लोग ज्यादा आते हैं। हलवाईयों, खिलौने बेचने वालों, चटपटे बेचने वालों और झूल झूलाने वालों को तो काफी आमदनी होती है परन्तु औरों की बिक्री बहुत कम होती है। इस बान की बड़ी जरूरत है कि इनका इस प्रकार से संगठन किया जाय कि हाट और मेलों में बड़ी तादाद में बेचने और खरीदने वाल आवे और खूब खरीद-फरोख्त होवे, लेकिन इस तरह से कि किसानों को धोखा न खाना पड़े।

अभ्यास के प्रश्न

१—उन व्यापारियों की सूची तैयार कीजिये जो आपके गाँव से अनाज खरीदकर मंडी में लं जाते हैं। यह भी पता लगाइये कि किस व्यापारी ने अनाज आप के गाँव में किस भाव में खरीदा और उस समय पास की मंडी में उसका क्या भाव था ?

२—फसल तैयार होते ही किसानों को क्यों बेंच देनी पड़ती है ? इससे उनको क्या हानियाँ होती हैं ? ये हानियाँ कैसे रोकी जा सकती हैं ?

३—आपके जिले में खेती की उपज की बिक्री का क्या ढग है ? किसान को अपने माल की उचित कीमत क्यों नहीं मिलती ?

४—क्या आपके गाँव के पास से पक्की सड़क गई है ? यदि नहीं तो उनके न होने से आपके ग्रामवासियों को क्या असुविधाएँ होती हैं ?

५—यदि आपको अपने जिले में नई सड़कों के बनवाने का कार्य सौंपा जाय तो आप किस प्रकार की सड़कों कौन से स्थान से कहाँ तक बनवावेंगे ?

६—बनिए से किसानों को क्या लाभ है ? क्या यह जरूरी है कि उनको हटाने के लिए सहकारी बिक्री समितियाँ बनाई जाँ ?

७—सहकारी बिक्री समिति का संगठन समझाइये और उनके द्वारा प्राप्त होने वाले लाभों का दिग्दर्शन कीजिये।

८—आपके गाँव के आस-पास किन-किन स्थानों में किस किस दिन 'हाट' लगते हैं ? इन हाटों में कौन-कौन सी वस्तुएँ बिकने को आती हैं ? इन हाटों से किसानों को क्या लाभ होते हैं ? इन हाटों की व्यवस्था में किन सुधारों की आवश्यकता है ?

६—आपके गाँव के आस पास किस स्थान में कब 'मेला' लगता है ? इस मेले में अधिकतर कौन सी वस्तुएँ बिकने को आती हैं और इस मेले से किसानों को क्या लाभ होते हैं ?

१०—साप्ताहिक हाट और मेलों का ग्रामीणों के लिए क्या महत्व है ? गाँव का बनिया कौन सी आर्थिक सेवा करता है ? (१६४३)

११—गाँव के कारीगरों को अपनी बनी हुई वस्तुएँ बेचने में किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है और वे किस प्रकार दूर की जा सकती हैं ?

१२—आपके गाँव में ग्वालों की संख्या कितनी है ? प्रति दिन उनके यहाँ कितना दूध होता है और उसके बेचने का क्या प्रबन्ध है ? दूध के बिकने पर शेष दूध का क्या उपयोग किया जाता है ?

१३—यदि आपको अपने गाँव में सहकारी बिक्री समिति स्थापित करने को कहा जाय तो आप अपना कार्य किस प्रकार आरम्भ करेंगे ?

१४—आपकी प्रांतीय सरकार किस प्रकार किसान की बिक्री सम्बन्धी दिक्कतें दूर करने की कोशिश कर रही है ?

१५—आपके जिले में कृषि पदार्थों की बिक्री कैसी होती है ? किसानों को अपने माल का उचित दाम क्यों नहीं मिलता है ?

१६—किसान को अपने माल की बिक्री में क्या कठिनाइयाँ होती हैं ?

१७—वर्तमान भारत में वस्तुओं के भाव क्यों अधिक हैं ? उत्पादकों और व्यापारियों द्वारा अत्यधिक मुनाफा का लेना कहाँ तक इसका कारण है ? (१६४७)

ग्यारहवाँ अध्याय

वितरण (Distribution)

वितरण क्या है ?

अभी तक हमने केवल इस बात पर विचार किया है कि धन किस प्रकार उत्पन्न किया जाता है। परन्तु वह हमने अब तक नहीं बनाया है कि

उत्पन्न के कार्य में हाथ बटाने वाला का उत्पन्न किये धन का हिस्सा किस प्रकार मिलता है। इसके पहले कि यह बताया जाय कि प्रत्येक का किस प्रकार हिस्सा लगाया जाता है यह याद दिलाना जरूरी मात्तूम पड़ता है कि किसी वस्तु की उत्पत्ति के साधन क्या क्या हैं ? तुम जानते ही हो कि भूमि का होना अनिवार्य है। ज़मीन के अलावा मेहनत करना भी जरूरी है। इसके अलावा धन भी लगाना पड़ता है और साथ ही साथ इंतजाम की भी जरूरत पड़ती है। जमान ज़िम्मेदार हाती है वह कुछ रुपये लेकर अपनी ज़मीन दूसरे को लगान पर दे देता है। किसान ज़मींदारों से लगान पर खेत ले लेते हैं। मेहनत करने वाले मजदूर को अपने श्रम के बदले में मजदूरी मिलती है। रुपया कर्ज देने वाला महाजन कर्जदार से सूद वसूल करता है। और इन सब के बाद जो कुछ बच रहता है वह इंतजाम व साहस करने वाले का मुनाफा कहलाता है इस प्रकार उत्पन्न किए धन में से चार हिस्से किए जाते हैं जिनका लगान, मजदूरी, सूद और मुनाफा कहते हैं।

खेती में वितरण

हमारे देश के बहुत से किसान ऐसे हैं जिनके पास निज की जमीन नहीं रहती और न पूंजी या रकम ही होती है। ज़मीन तो ये ज़मींदार से लेते हैं और पूंजी महाजन से। वे तो केवल मेहनत ही करते हैं। फिर मेहनत करने के लिए भी तो किसान कभी कभी मजदूरों को लगा लेता है। अक्सर खेती साँचने, काटने इत्यादि के लिए मजदूर नौकर रखे जाते हैं। फसल काटने पर जब उपज तैयार होती है तब पहले तो उन्हें ज़मींदार का लगान चुकाना पड़ता है। इसके बाद जिस महाजन से किसान कर्ज लेकर बीज आदि मँख लाता है और अनाज पैदा होने तक खाता पीता है, उसे सूद व कर्ज या रुपया अदा करना पड़ता है। यह कोई जरूरी नहीं कि वह कर्ज का सारा रुपया लौटा दे। महाजन तो सूद चाहता है जब तक उसे सूद का रुपया मिलता जाता है वह कुछ नहीं कहता। इसके सिवा मजदूरों की मजदूरी भी तो किसान ही देते हैं। ज्यादातर फसल तैयार होने के पहले ही वह दे दी जाती है, जहाँ नहीं दी जाती वहाँ फसल में से हिस्सा दिया

जाता है। बाकी जो कुछ रह जाता है वह किसान के हाथ लगता है। कहीं कहीं लगान सूद और मजदूरी एक ही मनुष्य को मिलती है और कहीं कहीं भिन्न-भिन्न आदमियों को। जिसकी जमीन है वही यदि पूंजी भी लगावे और मेहनत भी करे तो सब हिस्से उसे ही मिल जायेंगे। लेकिन हिन्दुस्तान में ऐसा हाल बहुत कम है। यहाँ की जमीन का मालिक गवर्नमेन्ट ही समझी जाती है। अतएव यदि कोई शख्स अपनी ओर से पूंजी व मेहनत दोनों ही लगावे तब भी उसे गवर्नमेन्ट को लगान या मालगुजारी देना पड़ता है। और जैसे कि पहले भी कहा जा चुका है यहाँ के किसानों की पूंजी भी महाजन से उधार लेनी पड़ती है। इससे उन्हें जर्मन से पैदा होने वाली सम्पत्ति का केवल मजदूरी और मुनाफे वाला अंश मिलता है। चूँकि उन्हें मजदूरी भी लोगों से करानी पड़ती है, इसलिए उन्हें मजदूरी में से भी कुछ हिस्सा औरों को बाँट देना पड़ता है।

यह सब करने के बाद शायद ही कुछ बचता हो। फिर मुनाफे की कौन कहे। सरकार लगान और मालगुजारी का बन्दोबस्त हर बार बीस तीस साल में करती है। लगान इतना बढ़ गया है कि हर साल हजारों किसानों को लोटा-थाली बेच कर भीख माँगने की नौबत आती है। जब लगान चुकाने में तो बेचारे किसानों की यह हालत होती है तो कैसे कहा जा सकता है कि आजकल किसानों को खेती में मुनाफा भी मिलता है। अर्थशास्त्र की दृष्टि से मुनाफा होना अवश्य चाहिए, लेकिन जिस दशा में हमारे किसान खेती करते हैं उसमें यदि उन्हें मुनाफा और पूरी मजदूरी न मिले तो कोई ताज्जुब नहीं है।

लगान (Rent)

अस्तु, तुम पूछ सकते हो कि लगान शुरू कब से हुआ और वह किस सिद्धान्त के अनुसार लगाया जाता है। जमीन, खेत, जङ्गल, खान आदि को व्यवहार में लाने के लिए उससे स्वामी को दी जाने वाली रकम को लगान कहते हैं। जमीन पर कब और किसका अधिकार हुआ और कैसे? शुरू में आदमियों की संख्या कम थी और उनको देखते हुए जमीन बहुत अधिक थी। अतएव जो जहाँ चाहता खेती करता था। जितनी जमीन जोतना चाहते

ये, जितनी लकड़ी काटना चाहते थे, जितनी धातु खान से खोदना चाहते; सब स्वतंत्रतापूर्वक कर सकते थे। उन्हें रोकने वाला कोई नहीं था। उस समय 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाला मामला सब जगह चलता था। जो अधिक बलवान होता वह दूसरे को बेदखल कर देता था। इसके बाद जन-संख्या जैसे जैसे बढ़ती गई वैसे ही वैसे भूमि की माँग भी बढ़ती गई। भूमि का क्षेत्र परिमित होने के कारण जिसके अधिकार में जो जमीन आगई वही उसका मालिक बनने लगा। अब अगर किसी के पास जरूरत से ज्यादा जमीन होती तो उसने उसके उपयोग करने का अधिकार दूसरे को देकर उसके बदले में उत्पत्ति का कुछ हिस्सा लेना शुरू कर दिया। इस हिस्से का नाम ही लगान है।

प्राचीन काल में जमीन का मालिक राजा नहीं होता था। लेकिन राजा खेती करने वालों से उपज का कुछ हिस्सा लिया करता था। बस राजा का सिर्फ इतना ही हक था। यह एक तरह का टैक्स (कर) कहा जा सकता है, लेकिन लगान नहीं क्योंकि राजा इसके पहले से कुछ नहीं देता था।

लगान दो तरह से निश्चित होते हैं। एक तो रिवाज के अनुसार दूसरा चढ़ा ऊपरी से। भारत में कहीं कहीं रीति रिवाज के मुताबिक पैदावार का आधा तिहाई, चौथाई या पाँचवाँ भाग के बराबर लगान लिया जाता है। भारत में चढ़ा ऊपरी वाली रीति भी प्रचलित है अर्थात् जो सबसे अधिक लगान देता है वही जमीन पाता है। इसके अलावा लगान कई तरह के होते हैं। एक तो कुल लगान होता है जिसे बोल-चाल में लगान ही कहते हैं। दूसरा आर्थिक लगान होता है। आर्थिक लगान का हिसाब इस प्रकार लगाया जाता है कि खेत की पूरी उपज के मूल्य में से उसकी खेती की सब प्रकार का लागत खर्च निकाल दिया जाता है। बची हुई सारी रकम आर्थिक लगान कहलाती है। कुछ लगान में आर्थिक लगान के अलावा जमीन में लगे हुए धन का सूद और जमीन के मालिक का मुनाफा भी शामिल रहता है। भारत के कुछ प्रान्तों में तो किसान से सरकार लगान सीधे वसूल करती है। इस प्रथा को रैयतवारी कहते हैं। अन्य जगहों में अधिकतर जमींदारी प्रथा चालू है। सरकार की ओर से जमीन का इन्तजाम जमींदारों के हाथ में रहता है। निश्चित दर के लगान पर किसानों को खेत जोतने का अधिकार

दे देते हैं। ऐसा हालत में किसान जमींदार को अधिक लगान नहीं देता। उसके बजाय वह किस दर से लगान देता है, वह सरकार पहले से ही निश्चित कर देती है। जमींदार भी किसान से वसूल होने वाली सारी रकम सरकारी खजाने में नहीं जमा करता। उसे जो रकम सरकार को देनी पड़ती है वह भी सरकार द्वारा पहले से निश्चित कर दी जाती है। यह रकम प्रायः किसानों से मिलने वाले लगान का ४०% या ५०% होता है।

यह जरूरी नहीं कि दो बराबर क्षेत्र वाले जमीन के टुकड़ों का लगान बराबर हो। उन टुकड़ों के गुण भिन्न-भिन्न हो सकते हैं, अतएव उनके लगान में भी फर्क होगा। जब आबादी के बढ़ने के अथवा पाम से रेल निकल जाने के कारण जमीन की माँग बढ़ जाती है तो लगान भी बढ़ जाता है। जैसा कि पहले बताया गया है भारत में पहले रीत रिवाज के मुताबिक ही लगान लिया जाता था। जब तक किसान दस्तूर के मुताबिक लगान देता रहता था तब तक उसे बेदखल नहीं कराया जा सकता था। लेकिन फिर आबादी की वृद्धि और उपज के बाजार का क्षेत्र बढ़ने के कारण भूमि की माँग बढ़ गई। इससे लगान सम्बन्धी दस्तूर टूट गया और अब अधिकांश किसानों का लगान बन्दोबस्त के समय सरकार निश्चित करती है।

(मजदूरी (Wages)

भारतीय किसान साधारणतया यदि अपनी ओर से कोई चीज लगाता है तो वह उसकी मेहनत है। इसके बदले में उसे मजदूरी मिलना चाहिये। लेकिन उसे मजदूरी देने वाला तो कोई होता नहीं, वह स्वयं जो उपज पैदा करता है उसी में उसकी मजदूरी शामिल रहती है। बर्दई, लोहार आदि जो अपने औजारों से अपनी ही भूमि पर काम करते हैं उन्हें जो मजदूरी मिलती है उसमें उनकी मजदूरी ही नहीं बल्कि जमीन का लगान और औजार में लगे धन का सूद भी मिला रहता है।

अस्तु, आजकल वस्तु बनाने वाले मजदूरों को उनकी बनाई वस्तु नहीं दी जाती। यदि दी जाय तो बड़ी मुश्किल आ पड़े। मान लीजिए, कोई मजदूर कोयले की खान में काम करता है। अब यदि उसकी मेहनत के बदले उसे मजदूरी के रूप में कोयला ही दिया जाय, तो वह उसका क्या करे?

कोयले की खान शहरों के पास तो होती नहीं जाँ मजदूर उसे बेचने की कोशिश करे। मजदूर को तो अपना पेट पालने के लिए आटा-दाल और पहनने को कपड़ा लुत्ता चाहिये। मजदूरी के बदले कायला मिलने से उसे हर वक्त और हर जगह पर कोयले के बदले उसकी आवश्यकता की ये वस्तुएँ तो मिल नहीं सकती हैं इसलिये आजकल मजदूरों की मजदूरी रुपए-पैसे में चुकाई जाती है। इस प्रकार की मजदूरी को नकद मजदूरी कहते हैं।

असली मजदूरी और नकद मजदूरी में बहुत फर्क होता है। मजदूर अपनी मजदूरी के पैसों से खाने पीने की वस्तुएँ कपड़ा आदि मोल लेता है। यदि मजदूरी के पैसों से वह इन वस्तुओं को अधिक मात्रा में खरीद सकता है तब तो असली मजदूरी अधिक कही जायगी। परन्तु यदि वह अब कम सामान खरीद सकता है तब हम कहेंगे कि उसकी असली मजदूरी घट गई। यह कोई जरूरी नहीं है कि नकद मजदूरी बढ़ने से असली मजदूरी भी बढ़ जाय। मान लो पहले रामलाल को एक रुपया रोज मिलता था। उस समय गेहूँ सोलह सेर का था। लेकिन अब उसकी मजदूरी दो रुपया हो गई। दूसरी ओर गेहूँ का भाव केवल रुपये में छै सेर रह गया। पहले तो रामलाल सोलह सेर गेहूँ खरीद सकता था लेकिन अब मजदूरी दुगुनी हो जाने पर भी वह केवल बारह सेर ही गेहूँ खरीद सकता है। अतएव उसकी असली मजदूरी तो घट गई।

मजदूरों को नकद मजदूरी तो अधिकतर कारखानों में ही मिलती है और यह जोर डाला जाता है कि मजदूरी की रकम इतनी हो कि मजदूर अपना भरण-पोषण कर सकें। तिस पर देखा जाता है कि मजदूरी तय करते समय यह बात नहीं उठाई जाती। फिर भारत के सम्बन्ध में एक बात और है। यहाँ पर दिन पर दिन जनसंख्या बढ़ती ही जाती है। इसलिये मजदूरों की माँग तो वही रहती है लेकिन काम करने वालों की तादाद बढ़ती जाती है। है। फलतः आपस में काम पाने के लिये लाग-डाँट चलती है। कारखाने वाले इसका फायदा उठा कर मजदूरी कम कर देते हैं। मजदूरों की पूति के सम्बन्ध में जानने योग्य बात यह है कि यह जल्दी घटती बढ़ती नहीं। नए कारखानों के खुलने पर ज्यादातर मजदूरी और जगह की अपेक्षा चढ़ी हुई ही रहती है। एक बात और है, कारखानों या किसी व्यापारी के दफ्तर

में काम करने के लिये मजदूर का पढ़ा-लिखा होशियार और विश्वास-पात्र होना बहुत जरूरी है। हमारे मजदूर अधिकतर पढ़े-लिखे नहीं होते अतएव वे नहीं जानते कि कहाँ अधिक मजदूरी मिलती है। मजदूरी बाँटने वाले तथा अन्य लोग उन्हें खूब धोखा देते हैं। खेती में काम करने वाले मजदूरों को, जोकि अधिकतर जिन्स में मजदूरी पाते हैं, बहुत कम मजदूरी मिलती है। फसल काटने के समय उन्हें कुछ ज्यादा मजदूरी मिलती है और उसमें भी उनका पेट नहीं भर सकता, फिर और दिनों की तो बात ही क्या। लेकिन बेचारों को उसमें ही संतोष करना पड़ता है। अधिकतर ऐसा होता है कि बीमारी तथा विवाह के लिये मजदूर उधार लेता है और जब तक ऋण अदा न हो जाय तब तक ऋण दाता के यहाँ मुफ्त में या चबैनी पर काम करता है। पुश्त दर पुश्त गुजर जाते हैं। परन्तु ऋण अदा नहीं होता और ऋणी मजदूर—नहीं, गुलाम बना रहता है। इसे दूर करना चाहिये। अस्तु जैसा कि योरोप वगैरह में होता है वैसे ही भारत में भी यह बड़ा जरूरी है कि मजदूरों को इतनी मजदूरी मिले जिसमें उन्हें जीवन की आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त हो सकें। भारत सरकार ने एक नया राजनियम बना दिया है जिसके अंतर्गत प्रत्येक मजदूर की निम्नतम मजदूरी निश्चित की जाएगी।

सूद (Interest)

हमारे किसानों की हालत इतनी खराब रहती है कि उन्हें अपने श्रम का पूरी तौर से बदला भी नहीं मिलता। फसल तैयार होने नहीं पाती कि जमींदार का कारिन्दा, मजदूर, महाजन सब उसे लूटने आ पहुँचते हैं। महाजन उसे बीज खरीदने, बैल मोल लेने आदि कार्यों को रुपया उधार देता है। इस रुपये को काम में लाने के लिये किसान को सूद देना पड़ता है। यदि तुम मुझे एक रुपया देते हो तो महीने भर बाद तुम मुझसे एक रुपया और एक पैसा पाने के हकदार हो जाते हो। यह एक पैसा एक रुपये पर एक महीने का सूद हुआ। सूद की दर निश्चित नहीं होती। कर्ज लेते वक्त यह कर्जदार और महाजन के बीच ठीक कर ली जाती है। हमारे महाजन गाँव के अपढ़ किसानों को खूब लूटते हैं। तीस चालीस रुपये देकर पचास के रुक्के पर अंगूठा लगावा लेना तो आसान काम है। इसके

अलावा सूद की दर पैसे दो पैसे रुपये से लेकर आना दो आना रुपया माहवार तक होती है। बेचारे किसानों का रुपया उधार लिये बगैर काम ही नहीं चल सकता। कहाँ तक कहा जाय, यदि वे उधार न लें तो उनके रोजाना खाने-पीने का खर्च न चले। सचमुच उधार लेने को हद हो गई है और यही कारण है कि आजकल हमारे गरीब किसान कर्ज में पैदा होते हैं, कर्ज में पलते हैं और कर्ज छोड़ कर ही मर जाते हैं।

शहरों में सेठ-साहूकार जायदाद रहन करके या गहना गिरबी रखकर रुपया कर्ज देते हैं। परन्तु यह जरूरी नहीं कि रुपया उधार देने के लिये कोई वस्तु गिरवी रखी जाय। अक्सर महाजन विश्वासपात्र सज्जनों को हाथ का रुक्का लिखा कर ही रुपया उधार दे देते हैं। कभी-कभी रुक्के में फेर पड़ने से या उसके खो जाने पर महाजन को असल से भी हाथ धोना पड़ता है। महाजनों के अलावा काबुली पठान भी रुपया उधार देते हैं। ये ज्यादातर अपना रुपया बहुत गरीब लोगों को देते हैं और उनसे आने दो आने प्रति रुपया प्रति मास या उससे भी अधिक सूद वसूल करते हैं। ये पठान अदालत में बहुत कम जाते हैं। क्योंकि इन्हें अपने डंडे का विश्वास होता है और उसके जोर से अपनी रकम वसूल कर लेते हैं।

सूद की दर के बारे में हम बहुत कुछ ऊपर बता आये हैं। रुपयों की माँग और पूर्ति के मुताबिक यह घटती और बढ़ती रहती है। शहरों में बैंक वगैरह तो १० प्रतिशत या १२ प्रतिशत पर ही उधार दे देती है लेकिन किसानों और मजदूरों से २० प्रतिशत से लेकर ३० प्रतिशत सालाना तक सूद वसूल किया जाता है। आजकल यदि देखा जाय तो रुपया के लेन-देन के बगैर कुछ काम ही नहीं चल सकता। विदेशों से करोड़ों रुपये का माल आता है और वहाँ जाता है। व्यापार में उन्नति करने के लिये यह बड़ा जरूरी है कि उसमें रकम लगाई जाय। व्यापारी के पास पर्याप्त रकम तो होती नहीं। उसे बैंकों से रुपया उधार लेकर लगाना पड़ता है। कहाँ तक बताएँ, सरकार को भी कर्ज लेना पड़ता है। कर्ज में कोई बुराई नहीं समझी जाती। लेकिन यह बात उसी वक्त तक लागू होती है जब कर्ज से होने वाली उन्नति से सूद से अधिक फायदा होता रहता है।

लेकिन भारतीय किसान और मजदूर तो फिजूलखर्ची और अनुत्पादक

कार्य के लिये भी कर्ज लेते हैं। विवाह-शादी या जन्म-मरण सम्बन्धी रिवाज में बहुत खर्च कर दिया जाता है। फिर अपने रोजाना खर्च के लिए किसान जो रुपया उधार लेते हैं वह अनुत्पादक होता है। उनसे सूद का मिलना तो अलग रहा असल का भी खातमा हो जाता है। इसके अलावा किसानों की साख और हैरियत कम होने से उनसे अधिक दर से सूद लिया जाता है। अधिक सूद की दर का यह भी कारण है कि कृषि अनिश्चित है। अतः यह निश्चय नहीं है कि रबी या खरीफ की फसल के बाद रुपया अवश्य वापस मिल जाएगा।

मुनाफा (Profit)

लगान, मजदूरी और सूद चुकाने के बाद मुनाफा ही बच रहता है — जहाँ तक गरीब किसानों का सम्बन्ध है उन्हें मुनाफे के नाम शायद कुछ नहीं मिलता क्योंकि पहिले तो उन्हें मजदूरी चाहिये। अर्थात् उपज से खाने-पीने का खर्च चलाने लायक धन मिलना चाहिये। लेकिन जब उसकी उपज से उसका खर्च ही नहीं चलता तब फिर मुनाफे की पूछ कहाँ? तब भी किसान खेती नहीं छोड़ता। कारण, वह दूसरा धंधा कहाँ प्राप्त करे। द्वितीय खेती उसका पेशा नहीं है वरन जीवन-क्रम है। तृतीय वह बाप दादों की भूमि तथा पेशे को छोड़कर उनकी आत्मा को कैसे दुखी कर सकता है। व्यापार संसार में बिना मुनाफे के कोई काम नहीं किया जाता। छोटी से छोटी दूकान से लेकर बड़े से बड़े कारखाने तक में मुनाफा का होना अनिवार्य है। यदि किसी काम के करने वाले को उस काम से मुनाफा नहीं होगा तो वह व्यर्थ क्यों मेहनत करेगा? कारखाने वाले अपना मुनाफा बढ़ाने के लिए कम से कम लागत खर्च देने की कोशिश करते हैं अर्थात् वे श्रम आदि उत्पत्ति के साधनों का कम से कम बदला देने का प्रयत्न करते हैं।

मुनाफे का कम ज्यादा होना कई बातों पर निर्भर रहता है। जैसा कि हमने ऊपर कहा है उत्पादन-व्यय के कम होने से मुनाफा बढ़ जाता है। अब सोचने की बात है कि उत्पादन-व्यय कैसे कम हो सकता है। पहली बात तो यह है कि काम करने वालों से उसी मजदूरी में अधिक काम लिया-

जाय । दूसरा ढंग यह होगा कि मजदूरी की दर घटा दी जाय । इसके लिए यह बड़ा जरूरी है कि खाने-पीने वगैरह की चीजों की कीमत न घटे । क्योंकि हमको तो असली मजदूरी कम करनी चाहिये । नगद मजदूरी कम होने से ही हमारा काम नहीं निकलता । मजदूरों के अलावा समय के ऊपर भी मुनाफा निर्भर रहता है । जितनी जल्दी माल बिक कर मुनाफा निकल आता है, मुनाफे की दर उतनी ही अधिक होती है । माल बिकने के सम्बन्ध में लागदार्ट और प्रतियोगिता का सवाल उठता है । यदि बाजार में चढ़ा-ऊपरी चल रही है तो तुम्हारी वस्तु की कीमत घट जायगी और कीमत के साथ मुनाफा भी घट जायगा । मुनाफा बढ़ाने के लिये यह जरूरी है कि कारखाना या दूकान अच्छी जमीन पर तथा मंडी के पास हो । इसके अलावा कारखाने का प्रबन्ध बड़ी बुद्धिमानी और दूरन्देशी के साथ होना चाहिये । बड़े-बड़े कारखानों में इस प्रबन्ध के लिये मैनेजर रखे जाते हैं और उन्हें हजारों रुपया महीना वेतन मिलता है ।

कारखाने के मालिकों को खूब मुनाफा होता ही है, इसके अलावा हर प्रांत और नगर में कुछ ऐसे बड़े सौदागर होते हैं जो देश के अन्दर और बाहर के भाव का हर वक्त पता लगाये रखते हैं और वे एक ओर से माल खरीद कर दूसरी ओर बेच देते हैं । बीच का मुनाफा वे खुद खा जाते हैं । कुछ सौदागर जिन्हें आदितिया कहते हैं बनियों या किसानों से माल खरीद कर बड़ी बड़ी मंडियों या बन्दरगाहों में भेज देते हैं । ये लोग अपने काम में बड़े चतुर होते हैं और किसानों तथा बनियों की अज्ञानता से खूब लाभ उठाते हैं । दूकानदारी में मुनाफे का एक बिचित्र ही ढंग रहता है । वहाँ पर तो दूकानदार हर एक ग्राहक से मोल करता है, दाम बंधे तो होते नहीं । एक वस्तु का दाम किसी से चार आना, किसी से साढ़े चार या पांच आना लिया जाता है । ग्राहक जितना ही अबोध होता है उतना ही दूकानदार को अधिक मुनाफा होता है ।

आजकल अधिक मुनाफा लेना व्यापार-कुशलता का चिन्ह माना जाता है । जिस मनुष्य को सबसे अधिक मुनाफा होता है लोग उसकी ही नकल करने की कोशिश करते हैं । मुनाफा बढ़ाने के लिये कंपनियां अपने नौकरों से कह देती हैं कि यदि किसी निश्चित सीमा से अधिक लाभ हुआ तो

इस अधिक लाभ का एक हिस्सा लुमकों भी दिया जायगा। इससे मजदूर और दिल लगाकर काम करते हैं परन्तु याद रखना चाहिए कि अधिक मुनाफा करने से कुछ थोड़े से ही मनुष्यों के पास द्रव्य और रुपये इकट्ठा हो जाता है। इसके विपरीत हमारा उद्देश्य यह होना चाहिए कि हम सब की आवश्यकताओं को पूरा करें। मनुष्य का उद्देश्य सुख-शांति प्राप्त करना रहता है। परन्तु केवल रुपया पैसा से ही आदमी को सुख-शांति नहीं मिल सकती। अलग किसी अभ्यास में हम जमींदारी प्रथा, किसान का जमींदार से क्या सम्बन्ध रहता है इत्यादि के बारे में तुम्हें कुछ हाल बताएँगे।

अभ्यास के प्रश्न

- १—वितरण का अर्थ उदाहरणों सहित समझाइये।
- २—लगान का सिद्धान्त समझाइये। अत्यधिक लगान किन दशाओं में लिया जा सकता है ?
- ३—युक्तप्रान्त में लगान और मालगुजारी का क्या सम्बन्ध है ?
- ४—जमीन कितने प्रकार की होती है ? उनके गुणों का लगान से क्या संबंध है ? जमीन की स्थिति का लगान से क्या सम्बन्ध है ?
- ५—नई सड़कों के बनने, नई रेल की लाइन खुलने, मनुष्य की संख्या वृद्धि इत्यादि का लगान पर क्या प्रभाव है ?
- ६—अनाज की मूल्य वृद्धि का लगान पर क्या प्रभाव पड़ता है ?
- ७—मजदूरी किस सिद्धान्त के अनुसार निश्चित होती है ? भारत में मजदूरी कम होने के प्रधान कारण क्या हैं ?
- ८—असली मजदूरी और नक़द मजदूरी के भेद उदाहरणों सहित समझाइये।
- ९—युक्तप्रान्त में मजदूरों को कम से कम कितनी मजदूरी मिलनी चाहिये ?
- १०—सूद की दर किस प्रकार निर्धारित होती है ? गाँवों में सूद की दर अधिक होने के प्रधान कारण क्या हैं ?
- ११—किस कर्ज के लिए सूद की दर अधिक होती है—उत्पादक कर्ज के लिए अथवा अनुत्पादक कर्ज के लिये ?

१२—अपने गाँव के पाँच किसानों के आया-व्यय का कम से कम एक फसल का पूरा हिसाब रखिए और यह पता लगाइये कि प्रत्येक को कितना मुनाफा हुआ। यदि किसी किसान को कुछ भी मुनाफा न हुआ हो तो उसके न होने के कारणों का पता भी लगाइये।

१३—लागत खर्च में कौन कौन सी मदें सम्मिलित की जाती हैं ?

१४—किन उद्योग-धंधों में अधिक मुनाफा होता और क्यों ?

१५—बहुत लोगों की यह धारणा हो गई है कि इस प्रान्त में अधिकांश किसानों को खेती से कुछ भी मुनाफा नहीं होता। यह कदाँ तक सत्य है ? यदि यह सत्य है तो किसान फिर खेती क्यों नहीं छोड़ देते ?

१६—भारतीय गाँवों में सूद की दर अधिक क्यों है ? उसे घटाने के लिए आप क्या उपाय करिएगा। (१९४३)।

१७—गाँव के विभिन्न काम करने वालों को किस प्रकार मजदूरी मिलती है ? मजदूरी के इस ढंग का उनकी क्षमता पर क्या प्रभाव पड़ता है ? (१९४४)

१८—'लगान का अर्थ' समझाइए। गाँव में लगान किस प्रकार निश्चित होता है ? हाल में किसान को अत्यधिक लगान से बचने के लिए क्या उपाय किए गए हैं ? (१९४५)

१९—(अ) सूद क्यों दिया जाता है ?

(व) (i) काबुली ३६% सूद पर रुपया उधार देता है।

(ii) साहकारी समिति १२% सूद लेती है।

(iii) बैंक व्यापारियों को ६% पर सूद देती है।

संक्षेप में समझाइए कि उपयुक्त सूद की दरों में अंतर क्यों है ? (१९४६)

२०—'मजदूरी' की व्याख्या कीजिए। गाँव का मजदूर कानपुर जाकर अढ़ाई रुपए रोज पर काम नहीं करता और अपने ही गाँव में बारह आने रोज पर मजदूरी करना पसंद करता है। इसका क्या कारण है ? (१९४६)

२१—(अ) विभिन्न कृषि मजदूर को भिन्न मजदूरी क्यों मिलती है ?

(व) यदि कृषि-मजदूर प्रत्येक कृषि कार्य के लिए एक समान योग्य हों क्या तब भी मजदूरी भिन्न होगी ? (१९४८)

बारहवाँ अध्याय

औद्योगिक मजदूर

गंदी बस्तियाँ

कारखानों और मिलों में काम करने वाले तीस चालीस लाख मजदूरों की जिन्दगी मनुष्य की जिन्दगी नहीं कही जा सकती। मजदूर को अपनी आय का चौथाई से छठवाँ भाग किराये पर व्यय करना पड़ता है। तब गंदी सी कोठरी मिलती है। इस निवास स्थान में हवा की गुजर नहीं होती। यहाँ पाखाने और स्नान का कोई प्रबन्ध नहीं होता। गन्दा पानी निकलने और बहने के लिये उपर्युक्त नालियाँ नहीं होतीं। यहाँ सफाई नहीं की जाती। घर के अन्दर और बाहर एकसा संकुचित और गन्दा वातावरण रहता है। जो मजदूर अपनी गृहस्थियों के साथ रहते हैं उन्हें उसी कमरे में रहना, सोना, उठना, बैठना, खाना, पकाना आदि की व्यवस्था करनी पड़ती है। प्रति छोटी कोठरी में पाँच छः प्राणी रहते हैं। साँस लेने के लिये पर्याप्त वायु भी नहीं मिलती। ऐसी स्थिति में यदि इन मजदूरों में बीमारियाँ फैल जायँ तो कोई आश्चर्य नहीं है। मरने वालों, विशेषतः बालमृत्यु की संख्या भी बढ़ जाती है।

हमारे कारखाने के मजदूरों की बढ़ती हुई बीमारियों के इलाज का भी तो कोई प्रबन्ध नहीं है। न कोई यह शिक्षा देता है कि उन्हें किस प्रकार का भोजन करना चाहिये, न उनके खेलकूद का प्रबन्ध है, न मनोरंजन या क्लब की व्यवस्था है। परन्तु अब मजदूरों के दिन पलट रहे हैं। इन गंदी बस्तियों का शीघ्र ही रूप बदल जाएगा।

औद्योगिक सुख-सुविधा

एक जमाना था जब मिलों और कारखानों में काम करने वालों की दशा की कोई परवाह नहीं की जाती थी, न काम करने के घन्टे का नियंत्रण था, न वेतन का। मुसीबत के दिनों में पैसों का कोई सिलसिला नहीं

रह जाता था। उनकी शिक्षा और उनके स्वास्थ्य की किसी को चिन्ता नहीं थी। वह कहाँ काम करते हैं किस प्रकार के वातावरण में काम करते हैं, किस प्रकार का काम करते और कैसा जीवन-व्यतीत करते हैं, इन सब बातों का किसी को ध्यान नहीं था। मजदूर निम्नश्रेणी में थे।

परन्तु अब भारत सरकार कारखानों के मजदूरों के लिए उचित सुविधाएँ और वेतनादि प्राप्त करने के लिये वचन बद्ध है। गत वर्ष (१९४८) भारत सरकार ने सामाजिक बीमे का कानून बनाया है। मिल मालिक और एक रुपये प्रति दिन से अधिक वेतन पाने वाले मजदूरों से चन्दा लेकर एक कोष स्थापित किया जायगा। जब कोई मजदूर बीमार पड़ेगा तो उसे इस कोष से डाक्टरी सहायता पहुँचाई जावेगी। उसे ५६ दिन तक अपनी मजदूरी भी दी जायेगी और अशक्त होने पर सहायता भी की जाएगी। नौकरी पर किसी मजदूर की मृत्यु हो जाने पर उसके आश्रितों को पेन्शन दी जाएगी। स्त्रियों को मातृत्व-काल में १२ सप्ताह तक छुट्टी मिलेगी और उस काल में इसी कोष से वारह आने प्रति दिन सहायता मिलेगी।

इसी प्रकार कारखाना-कानून में संशोधन किया गया है। अब मजदूरों को अधिक स्वास्थ्यप्रद, साफ सुथरी और अधिक सुरक्षित परिस्थिति में काम करने को मिलेगा। उन्हें सवेतन छुट्टियाँ भी मिलेंगी। अब तक मिलों में मजदूरों को ठेकेदारों के द्वारा नौकरी मिलती थी। यह ठेकेदार उन्हें लुटता था। अब सरकार नौकरी दिलाऊ केन्द्रों को स्थापित कर रही है। ये केन्द्र बिना किसी से फीस लिये मजदूरों को नौकरी दिलाते हैं। मजदूरों के लिये प्राविडेंट फंड की भी व्यवस्था की जा रही है।

मजदूरों के लिये उपयुक्त मकानों की व्यवस्था करने के लिए भी सरकार कानून बना रही है। इस समय भारत सरकार दस लाख मजदूर गृहों को बनाने की एक योजना चला रही है। कोयले की खान में काम करने वाले मजदूरों के लिये तो पचास हजार मकान बनाना आरंभ हो गया है।

भारत सरकार ने मजदूरों के वेतन के सम्बन्ध में भी एक न्यूनतम वेतन कानून बनाया है। इसके अन्तर्गत सरकार यह निश्चित कर देगी कि किस काम के लिये कम से कम कितनी मजदूरी दी जाय। इसी कानून में

‘खेती में काम करने वाले मजदूरों की मजदूरी निश्चित करने की भी, ‘व्यवस्था’ है।

• ट्रेड यूनियन

भारतीय ट्रेड यूनियन कानून के द्वारा मजदूरों को यह अधिकार दिया गया है कि वे अपने सघ (ट्रेड यूनियन) बनाएँ। वे इन संघों के द्वारा कारखानेदारों से सामूहिक ढंग पर सोदा कर सकते हैं।

भारत में अभी तक ट्रेड यूनियनों की संख्या कम है। लगभग तीन चौथाई ट्रेड यूनियन छोटी छोटी हैं। रेल, कपड़े की मिलों और मल्लाही सम्बन्धी काम करने वाले मजदूरों की ट्रेड यूनियन सबसे अधिक हैं। ट्रेड-यूनियनों के लगभग दो तिहाई सदस्य इन्हीं तीन क्षेत्रों में काम करते हैं। अन्य उद्योग धंधों में मजदूरों के जो सघ बनते थे उन्हें अधिकतर मिल-मालिक नहीं मानते थे। सरकार भी इस ओर चुप रहती थी। परन्तु जैसा ऊपर बताया जा चुका है, अब सरकार ने इन संघों को कानूनी रूप देने का निश्चय कर लिया है।

परन्तु हमारी ट्रेड यूनियनों में अक्षमता भरी पड़ी है। हमारे मजदूरों की शिक्षा-दीक्षा तो नहीं के बराबर रहती है। अतः ट्रेड यूनियन की नेतागिरी कुछ पढ़े लिखे लोगों के हाथ में होती है। मजदूर उन्हीं के इशारे पर नाचते हैं। शीघ्र प्रसिद्धि प्राप्ति के लालच में ये नेतागण मजदूरों को तरह तरह के लालच दे देते हैं। और फिर उसकी पूर्ति के लिये वे उन्हें हड़ताल करने के लिये उकसाते हैं। हड़तालों के कारण उत्पादन घट जाता है और वस्तुओं की उत्पत्ति कम होती है। आजकल हमारे आजाद देश में मिल के तैयार माल की जो कमी है उसका एक महत्वपूर्ण कारण हमारी ट्रेड यूनियनें कही जा सकती हैं। उनके कारण ही मजदूरों में अधिक वेतन माँगने और धीरे-धीरे काम करने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। इस समय तो यह जरूरी है कि मजदूर नेता मजदूरों को समझा कर हड़तालों को रोकें और उन्हें अधिक उत्पत्ति के लिये प्रेरित और प्रोत्साहित करें।

ट्रेड यूनियनों मजदूरों की नकारात्मक ढंग से तो सहायता करने का प्रयत्न करती हैं। परन्तु रचनात्मक ढंग से कोई काम नहीं करती। उदाहरणार्थ मजदूरों की कमाई श्रमण चुकाने और बनिए की दाम देने में।

उड़ जाती है। ट्रेड यूनियनों का कर्तव्य है कि वे मजदूरों की अपनी दूकाने खोलें ताकि वे बनियों के चंगुल से बच सकें। मजदूरों को वर्तमान व्यय में अधिक सामान दिलाने का कोई प्रयत्न नहीं किया जाता। इसी प्रकार मजदूरों की ओर से ट्रेड यूनियनों को मकान-मालिकों से मोर्चा लेना चाहिये जो अधिक किराया लेकर तग और गन्दी वस्तियों में रहने पर बाध्य करते हैं। परन्तु ट्रेड यूनियने ऐसे काम नहीं करती। कहा जाता है यदि उनके नेता इस प्रकार मजदूरों की कठिनाइयाँ हल कर दें तो उनकी पूछ कम होगी। उनकी नामवरी नहीं होगी। उनके नाम और उनके वक्तव्य समाचार पत्रों में स्थान नहीं पायेंगे। यदि ऐसा है, तो उनका ख्याल गलत है। देश में सच्चे चुपचाप कार्य करने वाले व्यक्ति का नाम धीरे-धीरे फैल जाता है। सब उनको जानने लगते हैं। वह प्रसिद्धि अधिक टिकाऊ होती है। कम से कम देश को इसी प्रकार के काम करने वालों की आवश्यकता है।

हमारी ट्रेड यूनियनों में धन की भी कमी रहती है। आय व्यय का कोई हिसाब नहीं रखा जाता। मेम्बरो की कोई पूरी सूची नहीं रहती। अतः हड़ताल के दमियान मजदूरों को अधिक सहायता नहीं पहुंचाई जा सकती और अधिकतर हड़तालें असफल गवित होती हैं।

तेरहवाँ अध्याय

बटाई प्रथा

पिछले अध्याय में तुमको धन के वितरण के बारे में बताया गया था। लगान का जिक्र करते समय देश में चालू जमींदारी प्रथा, स्थाई बन्दोबस्त आदि का थोड़ा सा हाल लिखा गया था। लगान के इन विभिन्न बन्दोबस्तों तथा जमींदार और किरान के सम्बन्ध के बारे में हम आगले अध्याय में खुल कर हाल लिखेंगे। सरकार जमीन जमींदार के सुपुर्द कर देती है। इसके बदले में जमींदार सरकार को मालगुजारी देने के लिये बाध्य हो जाते हैं। सरकार को अधिकतर मालगुजारी से ही मतलब रहता है। जमींदार को इस बात की स्वतन्त्रता रहती है कि वह जिस प्रकार चाहे उस प्रकार उन खेतों को काम में लावे। चाहे वह स्वयं मजदूर लगा करके जमीन

जोते बोवे और फसल पैदा करे चाहे वह लगान के ऊपर उस जमीन को किसान को उठा दे। ज़मीन को लगान पर देने से जमींदार को किसान से एक निश्चित दर से रुपया मिलता है। यह दर खेत के क्षेत्र के हिसाब होती है जैसा कि पिछले अध्याय में बताया गया था। सरकार द्वारा यह निश्चित कर दिया जाता है कि ज़मींदार किसी खेत से किसी निश्चित रकम से (जो भी ठीक हो जाय) अधिक लगान नहीं ले सकता। किसान जमींदार को यही लगान देकर रह जाता है। लगान पर दी गई जमीन के जोतने-बोने का सारा खर्च किसान के ऊपर रहता है। जमींदार को उससे कोई मतलब नहीं रहता। किसान अपना हल बैल लावे, अपनी ओर से मेहनत, धन तथा बीज आदि लगावे। चूँकि जमींदार को केवल लगान से मतलब रहता है, अतएव उसको इस बात की चिन्ता नहीं रहती कि किसान के खेत में कितना अनाज पैदा होता है।

बटाई-प्रथा क्या है ?

ऊपर बताई प्रथा के अलावा हमारे देश में एक और रीति चालू है। ज़मींदार या मौरूसी किसान अक्सर अपनी ज़मीन किसान को इस शर्त पर जोतने बोने के लिए दे देते हैं कि वे उनसे नकद लगान तो लेंगे नहीं परन्तु पैदा होने वाली उपज का एक हिस्सा ले लेंगे इसको बटाई प्रथा कहते हैं। अधिकतर ज़मींदार कुछ ज़मीन तो स्वयं जोतते-बोते हैं, कुछ बटाई पर किसानों को दे देते हैं। लेकिन आमतौर पर जमींदार ज़मीन को बटाई पर देना पसन्द नहीं करते। इसका कारण हम आगे चलकर बताएँगे। बटाई पर ज़मीन देने से पहले ज़मींदार और किसान आपस में तय कर लेते हैं कि हल बैल, बीज आदि कौन देगा ? यदि ये सब चीज़ें किसान लगाता है तो जहाँ तक होता है आधा-आधा हिस्सा तय होता है अर्थात् यदि दो सौ मन अनाज पैदा होगा तो सौ मन अनाज ज़मींदार ले लेगा। कहीं कहीं ज़मींदार किसान को बीज दे देता है। कभी हल-बैल भी मिल जाते हैं। ऐसी हालत में ज़मींदार पैदावार का दो तिहाई हिस्सा ले सकता है।

बटाई की दर

वैसे तो बटाई-प्रथा के अन्तर्गत किसान को मालगुजारी नहीं देनी

पड़ती। लेकिन कुछ जगहों में ऐसी भी शर्त रखी जाती है कि मालगुजारी कौन देगा। यदि किसान मालगुजारी भी देता है तो जमींदार का हिस्सा केवल चौथाई भी रह सकता है। मध्यप्रान्त में कहीं कहीं ऐसा पाया जाता है। लेकिन संयुक्त प्रान्त में जहाँ भी बटाई पर ज़मीन उठाई जाती है, वहाँ मालगुजारी जमींदार के ही जिम्मे रहती है। बटाई प्रथा में यू० पी० में अधिकतर आधा हिस्सा लिया जाता है। लेकिन जैसा कि पहले भी बताया गया है यह जरूरी नहीं है कि आधा हिस्सा ही लिया जाय। ज़मीन की हालत के ऊपर भी हिस्सा निर्भर रहता है। उदाहरण के लिए जमींदार के पास पड़ी हुई बेकार ज़मीन का ले लीजिए। कुछ ज़मीन परती पड़ी रहती है। कुछ ऊसर हांती है। किसी ज़मीन के साथ उससे जगा हुआ ताल-तलैया भी दे दिया जाता है। इसके अलावा जिस ज़मीन में खेती होती है उसके किनारे कुछ बेकार ज़मीन पड़ी रहती है। जमींदार अक्सर ऐसी ज़मीन बहुत कम बटाई पर किसानों को दे देते हैं। जब ऊसर या बेकार पड़ी ज़मीन किसान को दी जाती है तब लगान नहीं लिया जाता। वह ज़मीन उसे मुफ्त में जोतने बोने को मिल जाती है। किसान मेहनत-मजदूरी लगा कर उस ज़मीन में खेती करता है और जो कुछ पैदा होता है उसे अपने काम में लाता है। लेकिन साल-दो साल के बाद जमींदार अपना हक जाहिर करता है। ज़मीन तो अब उपजाऊ बन गई और दूसरे लोग उपज का कुछ हिस्सा देकर उस ज़मीन को लेने के लिये तैयार हो जाते हैं। अतएव जिस किसान ने उस ज़मीन में पहले पहल खेती की है वह जमींदार को उपज का एक हिस्सा देने पर मजबूर हो जाता है, हालाँकि यह बात जरूर है कि आरम्भ में यह हिस्सा बहुत छोटा रहता है। किसान जमींदार को चौथाई या तिहाई हिस्सा देने लगता है।

यों तो मामूली ज़मीन और बेकार ज़मीन ही अधिकतर बटाई पर दी जाती है। परन्तु कभी-कभी उपजाऊ भूमि भी बटाई पर उठाई जाती है। आमतौर पर झच्छी व उपजाऊ ज़मीन लगान तय हो जाने पर बटाई के ऊपर उठाई जाती है। ऐसी हालत में बटाई का हिस्सा आधे से कभी कम नहीं होता। किसान भी कभी कभी इस प्रकार से अपने खेत दूसरों को जोतने के लिए दे देते हैं। मान लीजिए किसान के पास

सत्तर. अस्सी बीघा खेत है। लेकिन घर में बीमारी फैल जाने से या घर के किसी कामकाजी आदमी की अचानक मृत्यु अथवा अन्य किसी कारण से रामू किसान सारी ज़मीन को अपने काम में नहीं ला सकता। ऐसी हालत में कुछ ज़मीन उसके पास बेकार हो जाती है। अतएव वह बीस तीस बीघा खेत किसी दूसरे किसान शंकर को इस शर्त पर दे देता है कि शंकर उतने खेत में जो पैदा करेगा उसका आधा हिस्सा रामू ले लेगा। मान लीजिये रामू ने सोहनसिंह से स्वयं भी वह ज़मीन बटाई पर ले रखी है, और रामू व सोहनसिंह के बीच यह तैय हुआ है कि रामू अपने खेत में होने वाली उपज का आधा हिस्सा सोहनसिंह को देगा। ऐसी हालत में रामू कभी भी शंकर को आधे हिस्से पर खेत न देगा। उसकी नियत यही रहेगी कि वह शंकर से अधिक से अधिक हिस्से पर मामला तय करे। परन्तु जैसा कि हम पहले बता आए हैं मामले तय होने में माँग और पूर्ति का हाथ रहेगा। यदि शंकर को खेती करने की गरज है तो वह रामू को शायद दो तिहाई तक दे देवे। परन्तु इसके विपरीत यदि फसल के बीच किसी कारण रामू अपना खेत किसी दूसरे को देना चाहता है तो शायद रामू को आधा हिस्सा मिलना भी मुश्किल हो जाय।

बटाई प्रथा के गुण-दोष

जैसे और बातों में गुण-दोष होते हैं वैसे ही बटाई प्रथा में कुछ अच्छाइयाँ भी हैं और बुराइयाँ भी। यदि किसान की दृष्टि से देखा जाय तो बटाई-प्रथा लगान प्रथा से कहीं बेहतर है। लगान पर ली हुई ज़मीन में उपज हो या न हो किसान को लगान तो देना ही पड़ता है। किसान यदि बहुत रोया गाया तो कुछ माफ़ी मिल जाती है। परन्तु बटाई पर दी हुई ज़मीन में तो किसान और जमींदार दोनों ही आपस में पहले से तय किये हिस्से में उपज बाँटते हैं। यदि अनावृष्टि या अन्य किसी कारण से किसी साल फसल मारी जाती है तो किसान जमींदार को बाकी फसल का ही हिस्सा देता है। इसी तरह यदि फसल बहुत अच्छी होती है तो किसान के साथ जमींदार को अधिक मात्रा में फसल मिल जाती है। परन्तु इसके लावा कुछ ऐसे फायदे भी हैं जिन्हें किसान उठा सकता है। जैसे यदि

किसान के पास हल, बीज न हो तो वे जमींदार से मिल सकते हैं। इस प्रथा में जमींदार को अलग नुकसान ही नुकसान दिखलाई पड़ता है। फसल खराब होने पर उसे किसान से ज्यादा दाम तो मिलता नहीं है। अतएव उस समय उसे अपनी गाँठ से मालगुजारी देनी पड़ती है।

इसके अलावा बटाई प्रथा के अन्तर्गत जमींदार को रुपये तो मिलते नहीं। उसे अनाज मिलता है। यहाँ पर भी किसान को फायदा ही रहता है। मान लो खेत में सौ मन अनाज पैदा हुआ। मान लो किसान अपने खाने-पीने के लिए दस मन अनाज रख कर नब्बे मन बेच देता है और फिर जमींदार को लगान के रुपये दे देता है। परन्तु यदि किसान ने खेत आधे हिस्से की बटाई पर लिया होता तो किसान को पचास मन अनाज मिलता। इस पचास में से उसे अब केवल चालीस मन अनाज बेचने की तकलीफ उठानी पड़ेगी और जमींदार को पचास मन अनाज बेचना पड़ेगा। ऐसी दशा में एक बात और होती है। यदि कहीं फसल के बाद अनाज की बाजार भाव गिर जाय अर्थात् सस्ता बिकने लग जाय तो जमींदार का और घाटा होता है। क्योंकि चढ़े हुए भाव से बेचने पर उसे जो रुपये मिलते हैं उतने रुपये अब नहीं मिल सकते। इसके अलावा किसान कुछ नाजायज फायदे उठा सकता है। जैसे कुछ बेहमान किसान रात में या जमींदार की गैरहाजिरी में अनाज काट लाते हैं या कटा अनाज खलिहान से अपने घर उठा लाते हैं। इसके अलावा यह तो मामूली बात है कि बटवारा होते समय यदि जमींदार वा उसका आदमी नहीं पहुँचता तो किसान अपने घर अधिक माल उठवा देता है !

बटाई प्रथा विधवाओं, नाबालिगों व उन व्यक्तियों की दृष्टि से भी अच्छी है जो विशेष कारणवश स्वयं खेती नहीं कर सकते और जो अधिकतर मजदूर रखकर खेती नहीं करा सकते।

परन्तु बटाई प्रथा के तीन मुख्य दोष हैं। प्रथम बटाई वाले किसानों को अधिकतर खेत में कोई हक नहीं प्राप्त होता। यह जरूरी है कि जिस प्रकार संयुक्त प्रान्त में लगभग प्रत्येक खेतिहर को कम से कम लगातार पाँच साल तक खेती करने का हक मिल गया है वैसे ही हक दूसरी जगह भी दिए

जायँ। सन् १९४० के बंगाल कमीशन ने बंगाल प्रान्त के बटाई पर खेती करने वाले बरगादार किसानों के लिए ऐसी ही सिफारिश की थी।

द्वितीय, बटाई प्रथा में किसान अपनी मेहनत द्वारा उपज में जो वृद्धि करता है उसका केवल एक भाग उसे मिलता है। किसान को उपज बढ़ाने से लिए उत्साहित करने के लिए यह आवश्यक है कि ऐसी वृद्धि में जमीदार का हिस्सा न हो।

तृतीय, कहीं-कहीं लगान पर खेती करने वाले किसानों की अपेक्षा बटाई पर खेती करने वाले किसानों की हालत अच्छी नहीं है। उदाहरण के लिए बंगाल में बटाई की दर आधी उपज है। यदि यह घटा कर एक तिहाई भी कर दी जाए तब भी उन्हें इस प्रकार जितना लगान पड़ेगा वह खेतों के मालिक की देन का साढ़े पाँच गुना होगा। अतः यह आवश्यक है कि बटाई की दर उपज को घटा कर चौथाई या पाँचवाँ हिस्सा कर दिया जाय। अतः इस समय बटाई प्रथा के कारण देश की भूमि की उर्वरता नहीं बढ़ पाती है। इसलिए अनुपयुक्त रूप में होने के कारण बटाई प्रथा देश के हितमें रुकावट पैदा करती है।

मजदूरी सम्बन्धी बटाई

अब तक हमने जिस बटाई का हाल बताया है उसके अलावा गाँव में एक और बटाई होती है। यह बड़ा जरूरी है कि इस दूसरी बटाई को भी स्पष्ट कर दिया जाय। यह दूसरी बटाई भी खलिहान में ही होती है; परन्तु इसके हिस्सेदार बनिए, ब्राह्मण, नाई, चमार, धोबी, बढ़ई, लोहार आदि गाँव के काम करने वाले होते हैं। भारतीय गाँवों में यह रिवाज है कि ये लोग साल भर किसानों को जिस वस्तु की जरूरत होती है देते रहते हैं। तेल की जरूरत पड़ने पर तेली को तेल देना पड़ता है। मतई का जूता फट जाने पर हामिद उसके वास्ते दूसरा जूता बना देता है। धोबी सब घर वालों के कपड़े धोता है। वह हर एक बड़े आदमी या औरत के पीछे चार-पाँच पसेरी अनाज लेता है। उसे छोटे बच्चों का कुछ नहीं मिलता। इसी प्रकार लोहार, बढ़ई आदि कारीगर भी गाँव भर की सेवा करते हैं और फल तैयार हो जाने पर हर एक के खलिहान से अपने अपने हिस्से का अनाज

ले आते हैं। इन लोगों के साथ हमें खेती में काम करने वाले मजदूरों को नही भूल जाना चाहिये। इन्हें अधिकांश मजदूरी काम करने के साथ ही साथ रोजाना मिलती जाती है क्योंकि इनको तो रोज ही खाने के लिए अन्न चाहिये। परन्तु फिर भी फसल के समय कुछ मजदूर फसल तैयार हो जाने पर अनाज मिलने की शर्त पर लगाए जाते हैं। कुछ मजदूर पैसों पर काम करते हैं। परन्तु उन्हें भी फसल में से कुछ मिल जाता है। फसल कट जाने पर किसान ऐसा खुश रहता है कि उस समय उसके पाम जो पहुँच जाय, उसे हाँ कुछ न कुछ मिल जाता है।

अस्तु, अब समझ में आ गया होगा कि इस बटाई और पहले बटाई हुई बटाई में क्या फर्क है? पहली बटाई तो लगान का एक रूप मात्र है। फर्क यही है कि लगान में आमतौर पर कमी नहीं की जाती और फसल में होने वाली घट बढ़ का किसान ही जिम्मेदार हाँता है, परन्तु बटाई में किसान के साथ जमींदार भी कुछ अंश में उसके सुख-दुख का साथी बनता है। दूसरी किस्म की बटाई में किसान उन सब कारीगरों और काम करने वाले मजदूरों की मजदूरी चुकाता है, जो बिना कुछ लिये साल भर तक किसान की सेवा करते हैं तथा उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। पहली भाँति की बटाई का अन्न लगान है, तो दूसरी में दी हुई उपज मजदूरी और कीमत स्वरूप है।

बटाई और रीति-रिवाज

ऊपर बताई बटाई-प्रथाओं की दर में दस्तूर और रीति-रिवाज का बहुत कुछ असर पड़ता है। यदि यह दस्तूर चला आ रहा है, कि सोहनसिंह कुएँ के पास वाले खेत को उठाने में किसान से दो-तिहाई हिस्सा लेता है तो चाहे इस साल रामू खेत को ले चाहे पारसाल श्याम उस खेत को ले, सोहनसिंह का उस खेत में दो-तिहाई का हिस्सा रहेगा। इसी प्रकार यदि किसी खेत के साथ सोहनसिंह बीज भी देता है तो उसे दस्तूर के मुताबिक उस खेत को लेने वाले को बीज देना ही पड़ेगा। इसी प्रकार धोबी, चमार, मेहतर आदि के हिस्सों के बारे में भी दस्तूर और रीति-रिवाज का बोलबाला रहता है। वंश-परम्परा से धोबी का छोटे बच्चों और विधवाओं के पीछे कुछ भी अन्न नहीं मिलता। इसी प्रकार आदमी पीछे

गाँव के धोबी को जो चार पसेरी अनाज मिलता है। उस दर में भी कोई परिवर्तन नहीं होता। कहने का मतलब यह कि रीति-रिवाज के इस प्रभाव के कारण गाँवों के आदमियों के हिस्सों की दर बहुत पीढ़ियों तक स्थायी बनी रहती है। इससे महँगी और सस्ती के समय गाँव वालों की आर्थिक दशा पर बहुत बड़ा असर पड़ता है। महँगी के समय में गरीब किसानों की हालत गिर जाती है। परन्तु लोहार, चमार आदि के जीवन में कुछ दिनों तक कोई प्रभाव नहीं दिखाई पड़ता। भिन्न भिन्न काम करने वालों की क्षमता में कुछ न कुछ अंतर होता ही है। यदि उनकी कार्य क्षमता एक सी हो, तब भी मजदूरी में अंतर रहेगा; क्योंकि उनकी मजदूरी अधिकतर रीति-रिवाज पर निर्भर है।

अस्तु, जैसा कि हम आरम्भ में कह चुके हैं अगले अध्याय में हम सरकार और किसानों के सम्बन्ध में कुछ बातें बतायेंगे। सरकार किस प्रकार किसानों से लगान का दर निश्चित करती है? क्या सरकार हमेशा जमींदार के जरिये किसान से मालगुजारी वसूल करती है या कहीं हर किसान से सीधे वसूल करती है? जमींदार सरकार का लगान का कौन सा भाग देते हैं? जमींदार और किसानों के बीच आजकल कैसा सम्बन्ध है? इन प्रश्नों के उत्तरों के अलावा खेती सम्बन्धी कामगजातों के बारे में भी कुछ बातें बताई जावेंगी।

अभ्यास के प्रश्न

१—बटाई प्रथा आपके गाँव में कहाँ तक प्रचलित है? आप पटवारी द्वारा यह पता लगाइये कि गत वर्ष कितने खेत बटाई पर किसानों को दिये गये थे।

२—आपके गाँव में बटाई की दर साधारणतः क्या है? इससे अधिक दर किन दशाओं में ली जाती है? रीति-रिवाज का इस दर पर क्या प्रभाव पड़ा है?

३—बटाई पर जोते जाने वाले खेतों की फसल की तुलना उन खेतों की फसल से कीजिये, जिनमें खेतों के मालिक ने स्वयं खेती की है। किन खेतों में फसल अधिक अच्छी होने की आशा की जाय और क्यों?

४—अपने गाँव में जाकर यह पता लगाइये कि फसल तैयार हो जाने पर किसानों को हल पीछे नाई, धोबी, बढई, पुरोहित, चमार, कुम्हार इत्यादि को कितना अनाज प्रति वर्ष देना पड़ता है।

५—बटाई प्रथा के गुण-दोष समझाइये और यह बतलाइये कि उसके दोष किस प्रकार दूर किये जा सकते हैं ?

६—‘बटाई प्रथा में बेईमानी की बहुत गुञ्जाइश है’ यह कथन कहाँ तक सत्य है ?

७—‘बटाई प्रथा किसानों के लिए लाभदायक परन्तु देश के लिये हानिकारक है’ इस कथन की आलोचना कीजिये।

८—इस प्रान्त के गाँवों में रीति-रिवाज का लगान, मजदूरी और सूद की दर पर क्या प्रभाव पड़ रहा है ?

९—विभिन्न कृषि मजदूर को भिन्न मजदूरी क्यों मिलती है ? यदि प्रत्येक कृषि मजदूर प्रत्येक कृषि-कार्य के लिए एक समान योग्य हो, क्या तब भी मजदूरी भिन्न होगी ?

चौदहवाँ अध्याय

जमींदार और किसान

लगान के सम्बन्ध में लिखते समय देश में प्रचलित बन्दोबस्तों का जिक्र आया था। अब हम इन बन्दोबस्तों, जमींदारों तथा किसानों का आपस के सम्बन्ध व खेती के कगजात के बारे में विस्तारपूर्वक विचार करते हैं।

स्थायी बन्दोबस्त (Permanent Settlement)

सन् १८० के लगभग बंगाल के गवर्नर लार्ड कान्वालिस ने सरकार की ओर से भारत के कुछ भागों में मालगुजारी की रकम हमेशा के लिए निश्चित कर दी। यह रकम किसानों से वसूल किये जाने वाले लगान की नब्बे फी सैकड़ा थी। इस बन्दोबस्त से सरकार को बँधी हुई रकम मिलने लगी और फिर हर साल भुंभट से छुट्टी हो गई। इसके अलावा सोचा गया कि हमेशा के लिए बन्दोबस्त हो जाने पर जमींदार किसान की पढ़ाई-

लिखाई, तन्दुरुस्ती, सफाई आदि का इन्तजाम करेंगे। लेकिन स्थायी बन्दोबस्त हो जाने की वजह से खेती में उन्नति होने पर सरकार की आमदनी नहीं बढ़ सकती थी। सन् १८०० से जमीन की पैदावार बहुत बढ़ गई है तथा जमींदार लगान के रूप में किसानों से उस समय की बनिबस्त अब कई गुना रुपया वसूल कर रहे हैं। लेकिन सरकार को एक पाई ज्यादा नहीं मिल सकती, यद्यपि आजकल देश की उन्नति तथा भलाई करने के लिये रुपये की बड़ी जरूरत है। दूसरे कुछ जमींदार दयालु और परोपकारी अवश्य हैं, लेकिन जो आशा की गई थी कि ऊपर बताए बन्दोबस्त के बाद वे लोगों की शिक्षा, स्वास्थ्य आदि की उन्नति करेंगे वह बिल्कुल पूरी नहीं हुई। अस्तु, स्थायी बन्दोबस्त बंगाल, बिहार, आसाम, व यू० पी० के बनारस विवीजन में चालू है।

बंगाल का फ्लाउड कमीशन (Floud Commission)

१९४० में बंगाल सरकार ने श्री फ्लाउड महोदय की अध्यक्षता में वहाँ की जमीन के बन्दोबस्त के सम्बन्ध में एक जाँच कमीशन बिठाया था। उस कमीशन की राय यह है कि बंगाल में स्थायी बन्दोबस्त से भूमि के प्रबन्ध और खेती में कोई भी सुधार नहीं हुआ। जमींदारों ने, जैसी आशा की जाती थी कि वे अपनी जमींदारियों की उन्नति की ओर ध्यान देंगे, ऐसा कुछ नहीं किया और उस प्रथा से किसानों की बहुत हानि हुई। वे भी भूमि तथा खेती की उन्नति नहीं कर पाते, साथ ही प्रान्तीय सरकार को एक बहुत बड़ी हानि यह हुई कि उनकी मालगुजारी (Land Revenue) से होने वाली आमदनी सदैव के लिए निश्चित हो गई। वह कभी भी बढ़ाई नहीं जा सकती। कमीशन का अनुमान था कि अगर आज के हिसाब से बंगाल में मालगुजारी लगाई जावे तो बंगाल सरकार को कई करोड़ रुपये का लाभ हो। अतएव कमीशन की राय थी कि बंगाल में जमींदारी प्रथा नष्ट कर दी जाये और स्थायी बन्दोबस्त तोड़ दिया जावे। सरकार जमींदारों को बदले में रकम देकर उनसे जमींदारी ले ले।

अस्थायी बन्दोबस्त (Temporary Settlement)

भारत की अन्य जगहों में अस्थायी बन्दोबस्त है, अर्थात् वहाँ पच्चीस या तीस साल के लिए मालगुजारी निश्चित की जाती है। इसके बाद फिर से

जमीन की देख भाल की जाती है तथा उपज की जाँच करके मालगुजारी ठीक की जाती है। ज्यादातर यह देखा गया है कि हर नए बन्दोबस्त के साथ मालगुजारी का भार बढ़ता ही रहता है। ये अस्थायी बन्दोबस्त कई तरह के हैं। बम्बई, मद्रास, सिन्ध आदि प्रान्तों में रैयतवारी रिवाज चालू है। इसमें सरकार सीधे किसान से लगान वसूल करती है। किसान और सरकार के बीच में कोई जमींदार नहीं होता। बम्बई या मद्रास में तीस साल में बन्दोबस्त होता है। रैयतवारी के अलावा महालवारी प्रथा होती है। यह मध्यप्रान्त के कुछ भाग में प्रचलित है। रैयतवारी और महालवारी प्रथा में केवल यही फर्क है कि महालवारी के अन्तर्गत गाँव का मालगुजार मालगुजारी चुकाने का जिम्मेदार रहता है। संयुक्त प्रान्त, पंजाब और मध्यप्रान्त के कुछ भागों में जमींदारी प्रथा चालू है। इसमें जमींदार या ताल्लुकदार अपने हिस्से की मालगुजारी देने के जिम्मेदार रहते हैं। जमीन के, लगान की रकम सरकार की ओर से तय कर दी जाती है। जमींदार उस लगान की दर से किसानों को खेती करने के लिये जमीन देते हैं। इस तरह जमीन से जो लगान आ सकता है उसका निश्चित हिस्सा सरकार ले लेती है। मान लो जमींदार सौ रुपया लगान के रूप में वसूल कर सकता है। पहले सरकार इसमें से सत्तर अस्सी रुपये मालगुजारी के रूप में ले लेती थी। लेकिन अब तो घटते घटते यह रकम चालीस पचास फी सैकड़ा के करीब रह गई है।

सरकारी मालगुजारी नगद रूपों में ली जाती है, अनाज वगैरह में नहीं। जिस साल पानी कम बरसता है या ओला और पाला पड़ता अथवा टिंडी आदि लग जाती है, उस साल फसल खराब हो जाती है मालगुजारी का हिस्सा माफ कर दिया जाता है। लोगों की शिकायत है कि छूट नुकसान के हिसाब से कम होती है। मालगुजारी के साथ लगान में भी कमी करनी पड़ती है। लगान मालगुजारी से भिन्न होता है लगान तो किसान देता है और मालगुजारी जमींदार देता है। लगान जमींदार को मिलता है पर मालगुजारी सरकारी खजाने में जमा की जाती है। जहाँ जमींदार नहीं हैं, जैसे उन प्रान्तों में जहाँ रैयतवारी प्रथा चालू है, वहाँ किसानों का सरकार से सीधा सम्बन्ध रहता है। वहाँ सरकार किसानों से मालगुजारी वसूल

करती है। सरकार लगान की दर व मालगुजारी दोनों को निश्चित करती है। संयुक्त प्रान्त में मालगुजारी उस लगान के आधार पर निश्चय होती है जो किसान पिछले बन्दोबस्त के समय जमींदार को देते थे। मध्य प्रान्त में सरकारी अफसर जमीन के गुणों और स्थिति की जाँच करते हैं और उसी हिसाब से लगान निश्चित किया जाता है। अगर किसी जमीन की मिट्टी अच्छी है तथा वह बाजार से बहुत पास है, तो उसका लगान ज्यादा रक्खा जाता है। लेकिन लगान (जमींदार के न रहने से यह मालगुजारी भी कहा जा सकता है) की दर निश्चित करने की जो रीति बम्बई में चालू है वह सबसे अच्छी कही जाती है। वहाँ पर यह जानने की कोशिश की जाती है कि पिछले बन्दोबस्त के समय जो उपज हुई थी उसकी कीमत क्या थी और उस उपज को पैदा करने के लिए क्या खर्च बैठा था। उपज की कीमत से यह खर्च निकाल कर जो बचता है उसका लगभग आधा भाग आगामी बन्दोबस्त तक के लिए मालगुजारी निश्चित की जाती है। यों तो लगान निश्चित करने का यह तरीका हमारे प्रान्त के तरीके से कहीं बेहतर है। लेकिन किसानों को यह शिकायत रहती है कि उपज की कीमत बढ़ा कर और लागत खर्च घटा कर हिसाब लगाया जाता है। कहा जाता है कि इससे किसानों को पूरी मजदूरी भी नहा मिल पाती। किसानों के कई महीने भूखे रहने का एक कारण यह भी है।

जमींदार और किसान

सरकार की ओर से लगान की जो रकम ठीक की जाती है, उसे जमींदार किस प्रकार वसूल करते हैं ? उसी दर से वसूल करते हैं अथवा कम वेशी ? इस सम्बन्ध में यह जानना जरूरी है कि किसान दो तरह के होते हैं। एक मौरूसी किसान या काश्तकार कहलाते हैं, दूसरे गैर-मौरूसी। मौरूसी किसान तो वे होते हैं जिन्हें यह हक मिल जाता है कि वे जब तक लगान देते जायँ और खेती किए जायँ, जमींदार उनके खेत छीन कर दूसरों को नहीं दे सकता। गैर-मौरूसी किसान वे होते हैं जो थोड़े दिन के लिये खेत लगान पर लेते हैं और जिन्हें मौरूसी हक प्राप्त नहीं होते। चाहे स्थायी बन्दोबस्त हो चाहे अस्थायी, मौरूसी किसानों की हालत अच्छी कही जाती है। लेकिन गैर-मौरूसी किसानों की हालत देश के प्रत्येक कोने में शोचनीय है। जमींदार

हमेशा यही सोचते हैं कि कानून के अन्दर रहते हुए इन किसानों से जितना अधिक लगान वसूल लिया जाय उतना ही अच्छा। अतएव बिना किसी सिद्धान्त या उसूल के ही किसान पर ज्यादा लगान लगाया जाता है। संयुक्तप्रांत में सन् १९३६ के कानून लगान के अनुसार अधिकतर किसानों को मौरुती हक मिल गये हैं और लगान अनाज की कीमत के पाँचवें हिस्से से अधिक नहीं होगा। किसानों को खेतों में पेड़ लगाने और मकान बनाने का भी हक मिल गया है। इनके कारण लगान नहीं बढ़ाया जा सकता।

फिर लगान वसूल कैसे किया जाता है? बेचारा किसान अगर अपने आप समय पर लगान का रुपया जमींदार को दे आवे तब तो ठीक, वरना बड़े जमींदार को तो लगान की फिक्र रहती नहीं; उन्हें आराम-तलबी करने और विलासिता का जीवन बिताने से छुट्टी कहाँ रहती है? बहुत से रईस जमींदार तो गाँव में रहना पसन्द नहीं करते। वे गाँवों को छोड़ कर शहरों में आ बसते हैं। क्या तुम जानते हो कि क्यों वे गाँवों में रहना पसन्द नहीं करते? पहले तो हमारे हिन्दोस्तान के गाँवों का रहन-सहन बहुत नीचे दर्जे का है, वहाँ स्वास्थ्य और दवाई दारुका कोई इन्तजाम नहीं रहता है। अगर कहीं कोई अस्पताल होता भी है तो गाँव से कई कोस दूर पर। फिर गाँव में मनोरंजन और खेलकूद का कोई इन्तजाम नहीं रहता। लेकिन हमारे जमींदार के गाँव छोड़ने के कारण अस्पताल या खेलकूद की समाग्री, का अभाव नहीं है। असली कारण तो गाँवों में भोग विलास की समाग्री, ऐशो आराम और नाच रंग का ठीक-ठीक न होना है। गाँवों में थियेटर, वायस्कॉप या गुप्त खेलने के लिए कारनिवल कहाँ मिल सकते हैं? जमींदारों की गैरहाजिरी में उनके कारिन्दे और नौकर ही लगान वसूल करने का काम करते हैं। कहावत है कि बिल्ली के चले जाने पर चूहों का राज्य स्थापित हो जाता है। जमींदारों के चले जाने पर ये कारिन्दे खूब उधम मचाते और मनमाना काम करते हैं। बेचारे गरीब किसानों पर बुरी तरह से अत्याचार किया जाता है। वक्त पर ही नहीं बल्कि कहा जा सकता है कि आए दिन लगान वसूल किया जाता है। बेचारे किसान को दूध-दही, फल फूल आदि चीजें कारिन्दे पर चढ़ाने पड़ती हैं, जिससे कारिन्दे-देवता नाराज न हो जाय। पहले किसानों को जमींदार या कारिन्दा से लगान की रसीद नहीं मिलती थी,

परन्तु अब संयुक्तप्रांत में कानून द्वारा यह तय कर दिया गया है कि प्रत्येक लगान जमा की रसीद दी जाए और उसकी एक कापी जमींदार अगुय रखे। इस कारण पहले की भाँति लगान बकाया दिखाकर किमान वेदखल नही किए जा सकते। ऐसे भी अब बाकी लगान को चुकता करने के लिए मौरूसी किसानों को दो साल तथा ग़ैर-मौरूसी किसानों को छै मास का समय मिलता है।

बेगार और नजराना

लेकिन जब जमींदार गाँव में रहता है तब भी कौनसा अच्छा इन्तज़ाम होता है। उस समय भी कई गाँवों में किसानों को मार-पीट कर कारिन्दे लगान व अपना कमीशन बसूल करते हैं। अब कुछ वर्षों से किसानों पर किये जानेवाले अत्याचारों में कुछ कमी हुई है। तो भी कहीं-कहीं किसानों से रसद और बेगार ली जाती है। हर एक किसान की पारी बँधी रहती है। कहीं-कहीं ऐसा देखा गया है कि जब कोई खास काम पड़ जाता है तब पारी हो या न हो, किसान बेगार के वास्ते पकड़ लिए जाते हैं। उस समय वे खाना खा रहे हों, चाहे जिस हालत में हों; जमींदार का आदमी उसे घसीट कर ले आते हैं और बेगार लेते हैं। जब कोई त्योहार आता है तो नजराना और भेंट ली जाती है। अगर कोई किसान जमींदार माहव का चीजे भेंट देने में चूक जाय तो उसकी बुगी तरह से खबर ली जाती है। नजर के अलावा देश के बहुत से हिस्से में त्याहार पर तरह-तरह के टैक्स बसूल किये जाते हैं। यह तो सब पता ही है कि भारत में त्योहारों की संख्या बहुत अधिक है। आज दशहरा है तो कुछ दिन बाद दिवाली और होली इत्यादि। भला बताइये ता, जिसके पास स्वयं पेट भरने लिए काफ़ी रासमग्री नहीं है, वह कैसे आए दिन जमींदार माहव की मन वमन्द भेंट तैयार कर सकता है? क्या आप सोचते हैं कि यह भेंट जमींदार पर रहती है? वह तो उगी समय जमींदार महाराज के नौकरों और खुशामदियों के पेट में पहुँच जाती है। हाँ, यदि किसी भेंट की रासमग्री कीमती हुई या उसमें कोई मूल्यवान माल हुआ तो वह अदृश्य जमींदारों के घर में रह जाता है। यह तो हम पहले ही यह भुँकें हैं कि किसान बेचारे चाहें कारिन्दों के अत्याचार की शिकोमत लेकर आवें अथवा और किसी कारणावश, उनकी कोई

करियाद नहीं सुनी जाती। एक बात और—यह तो आपको मालूम ही है कि गैर-मौरूसी काश्तकार कुछ दिनों के लिए ही लगान पर जोतने के लिए खेग लेते हैं। जब अवधि खतम होने के करीब आती है तो उन बेचारों को वेदखली से बचने के लिये नज़राना भी देना पड़ता है। बिहार, उड़ीसा व संयुक्तप्रान्त में बेगार और नजराना लेने की कानूनें द्वारा मनाही कर दी गई है, तब भी अभी ज़मींदार कुछ न कुछ वसूल कर लेते हैं। संयुक्तप्रान्त में तो ज़मींदारों ने नए कानून की दफ़ा १७१ का फ़ायदा उठाकर किसानों को ख़ूब वेदखल किया और उन्हें इसका डर दिखाकर मुफ़्त में रुपया वसूल किया। अब तो सरकार कानून की इस गड़बड़ी को सुधार रही है।

ज़मींदार के कर्त्तव्य

कुछ ज़मींदार अपने इन कामों के बुरे परिणाम नहीं समझते। आप ही सोचिए, जहाँ पर किसान को बेदखली का डर लगा रहता है, वह बना कभी काफी रकम लगा करके अच्छी तरह खेती कर सकता है। कभी नहीं, यह धमकी मौरूसी और गैर-मौरूसी किसानों के बीच ज़मीन आसमान का फर्क डाल देती है। मौरूसी किसान निश्चिंत होकर अच्छी तरह खेती कर सकते हैं; लेकिन गैर-मौरूसी किसान को यह विश्वास तो रहता नहीं कि खेत उसके पास रहेंगे। अतएव वह खेत में काफी रुपया कभी नहीं लगाना चाहता, परन्तु यदि सबको मौरूसी हक दे दिये जायें तो देश की उपज भी काफी बढ़ जाय और किसानों की भी हालत दिन दिन सुधरने लगे। अतएव यह बड़ा आवश्यक है कि गैर-मौरूसी किसानों के मन में यह बात अच्छी तरह बैठा दी जाय कि उनके खेत नहीं छीने जाएँगे और जहाँ तक होगा इस बारे में उनके साथ भी मौरूसी किसान की तरह ही वर्तान किया जायगा। दर असल ज़मींदारों के कारण ही गाँवों और किसानों की हालत खराब है। यदि वे चाहें तो ग्राम जीवन को सुधारने में बहुत कुछ हाथ बटा सकते हैं। ज़मींदारी का यह कर्त्तव्य है कि वे परोपकारी वृत्ति और ऐसे काम करें, जिससे गाँव की भलाई और उन्नति हो। वह जानता है कि किसान कर्जदार रहते हैं। क्यों? क्योंकि वे व्याह, शादी और आदक वस्तुओं में पैसे उड़ाते हैं। क्योंकि उनके पास रोजमर्रा अपने पेट भरने के लिए भी अन्न नहीं होता है।

अगर किसान भूखो मरने लगेंगे तो ज़मींदारों को लगान कहाँ से मिलेगा । और यदि लगान नहीं मिलेगा तो उनकी आय नहीं के बराबर हो जायगी और वे भी भूखो मरने लगेंगे । चूँकि ज़मींदार इन बातों के ऊपर ध्यान नहीं देते, अतएव संयुक्त प्रान्त, बिहार, मध्यप्रान्त, मद्रास आदि की सरकारों ने यह कह दिया है कि जमींदारी प्रथा को ही तोड़ देनी चाहिये ।

संयुक्त प्रान्त में ज़मींदारी विनाश बिल

अभी हाल में संयुक्त प्रान्त की एसेम्बली में प्रान्त से ज़मींदारी प्रथा नाश करने का एक बिल विचाराय पेश है । उस बिल के अनुसार ज़मींदारी प्रथा नष्ट कर दी जावेगी । प्रत्येक ज़मींदार को उसके वास्तविक मुनाफे का आठ गुना मुआविज़ा दिया जावेगा । किसानों की दो श्रेणियाँ होगी—(१) भूमिधर और (२) सीरदार । वर्तमान ज़मींदारों को सीर और खुदकाशत भूमि में भूमिधर के अधिकार मिलेंगे । जो किसान अपनी लगान का दसगुना एक साथ दे देगा वह भी उस भूमि का भूमिधर कहलावेगा । भूमिधर किसानों को भूमि बेचने का पूर्ण अधिकार रहेगा । उन्हें भूमि पर मौरूखी हक रहेगा । सीरदार किसानों का भी मौरूखी हक रहेगा । परन्तु वह भूमि को न बेच सकेगा और न गिरवी रख सकेगा । इस प्रकार जो रुपया इकट्ठा होवेगा उसमें से ज़मींदारों को मुआविज़ा दिया जावेगा । जो छोटे जमादार हैं उन्हें मुआविजे के अतिरिक्त काम धंधा करने के लिये कुछ पूँजी ग्रांट के रूप में दी जावेगी । छोटे ज़मींदारों में पुनर्स्थापन ग्रांट उन्हीं को दी जावेगी जिनका वास्तविक मुनाफा ५००० रु० वार्षिक से कम होगा और यह उनके वास्तविक मुनाफे के दो गुने से २० गुने तक होगी । जिनकी आय कम होगी, उनका अधिक और जिनकी आय अधिक होगी, उनको कम ग्रांट मिलेगी । जो दस साल का लगान पेशगी देकर भूमिधर का अधिकार प्राप्त करेंगे उनका लगान जो आज वे देते हैं आधा कर दिया जावेगा । भविष्य में केवल नाबालिग, विधवा, अपंग अथवा शारीरिक दृष्टि से अशक्त व्यक्ति और सेना में नौकरी करने वाले ही अपनी भूमि को उठा सकेंगे ।

पटवारी के कागजात

अस्तु, अब यह बताना बड़ा जरूरी है कि किमान और जमींदार के बीच जो बात ठहरती है तथा लगान वगैरह के बारे में जो फेर-फार होते रहते हैं उनका हिसाब कौन रखता है ? तुम सब ने पटवारी का नाम जरूर सुना होगा। बस यही पटवारी खेतों में सम्बन्ध रखने वाले सब कागजात रखते हैं। इन कागजों को लैंड-रेकॉर्ड्स या जमीन के कागजात कहते हैं। इनके बगैर क्या काश्तकार क्या जमींदार, यहाँ तक कि सरकार का भी काम नहीं चल सकता। सब के लाभ के लिये यह निहायत जरूरी है कि उन कागजों में जो कुछ दर्ज हो, वह ठीक हो। अगर उसमें जरा सी भी गलती हो गई तो फिर कुछ न कुछ गड़बड़ी जरूर होगी। इसलिये यह आवश्यक है कि कागजों में सारी बातें अच्छी व पूरी तरह भरी जायें। यह ठीक मालूम पड़ता है कि हम तुम्हें पटवारी के सभी कागजातों के बारे में याड़ा हाल बता दें।

पटवारी के पास जो कागजात रहते हैं वे सब छुपे हुये फर्कों पर लिखे हुये होते हैं। पटवारी उन्हें एक सरकारी अकबर से जिसका रजिस्ट्रार-कानूनगो कहते हैं, प्राप्त करते हैं। रजिस्ट्रार-कानूनगो को सरकार की तरफ से ये कागजात छुपे छुपाये मिलते हैं। वे ही उन्हें रखते हैं और जिस पटवारी को जरूरत पड़ती है, उसे दे देते हैं। उन कागजों के नाम ये हैं—

शजरा मिलान, खसरा, स्याहा, खतौनो, जामाबन्दी, बहीखाता जिनस-वार और खेवट।

शजरा मिलान

शजरा मिलान गाँव के खेतों और मकानों का नक्काशा होता है। यह मोमजामे के कपड़े या मज़बूत कागज़ का बनाया जाता है। इसमें हर तरह की आराजी का नक्काशा दिया जाता है। जिस खेत का नक्काशा रहता है उसी में उसका नम्बर भी दिया रहता है। यह तुम्हें मालूम हो है कि आराजी या रकबा की हालत बदलती है, क्योंकि किसान खेत बेचते, खरीदते और देखल बेदखल होते रहते हैं। अतएव निश्चित समय के बाद इस नक्कशे में भी फेरफार होता रहता है। इसके लिये पटवारी — — —

की जाँच करता है । साल भर के अन्दर उसमें जो जो रद्दोबदल होते हैं, उनका ठीक ठीक हाल वह लिख लेता है । इस काम के लिये खेत का नापना पड़ता है । यदि नाप में जरा सी भी गलती हो गई तो बड़ी गड़बड़ी पड़ जाती है । इसलिये यह जरूरी हाता है कि जिसका कुछ भी हक ज़मीन में हो, वह पटवारी के साथ साथ जाकर यह देखे कि सब लिखा पढ़ी ठीक ठीक हो रही है या नहीं । शजरा मिलान में तालाब, बाग और कुआँ वगैरह भी दिखाये जाते हैं । यह निहायत जरूरी होता है कि काश्तकार और ज़मींदार पटवारी को मदद करके ठीक ठीक बातें पटवारी को लिखा दे । अस्तु, शजरा मिलान में गाँव की जितनी ज़मीन होती है, उसका इसमें खेतवार हिसाब रहता है । इस नक़्शे को देखकर कोई भी किसान अपना खेत जान सकता है ।

खसरा

शजरा मिलान में तो खेतों का नक़्शा ही रहता है लेकिन खसरे में ज़मीन का पूरा हाल रहता है । नक़्शे में जितने खेत रहते हैं उनमें उनके नम्बर दिये रहते हैं । वही नम्बर खिलसिलेवार खसरे में दर्ज रहते हैं । उन्हीं नम्बरों के साथ उन खेतों का रकबा, लगान, ज़मीन किस तरह की है, ज़मींदार का नाम, किसान का नाम और फसल की किसम आदि सब दर्ज रहते हैं । खसरे का ठीक ठीक लिखा जाना बहुत जरूरी है । खेतों की गलत नापजोख का असर शजरा मिलान में तो नहीं के बराबर रहता है, लेकिन खसरे में अगर कुछ भी गलत लिख जाता है तो बाद में लड़ाई भगड़े, चल जाते हैं और किसान वगैरह मुभीबत में पड़ जाते हैं । इसलिए यह परमावश्यक है कि ज़मींदार और काश्तकार दोनों पटवारी के साथ रह कर अपने खेत की सब बातें खसरे में लिखवा दें । जो जो फेर-फार हुए हो, वे जरूर ही पटवारी के कामजों में दर्ज हो जाने चाहिये ।

स्याहा

स्याहा वह कामज होता है जिसमें पटवारी ज़मींदार के कामजात देख कर लगान की वसूलयाबी का खाना पूरी करता है ।

बहीखाता जिन्सवार

बहीखाता जिन्सवार में लगान का हिसाब लिखा जाता है। इसके साथ ही लगान का तरीका भी दिया रहता है। चाहे वह बटाई से लिया जाय चाहे और किसी तरीके से।

खतौनी

खतौनी जमाबन्दी खसरे के मुताबिक बनाई जाती है। इसमें कब्जे के मुताबिक किसानों के नाम दिए जाते हैं। किसानों और जमींदारों के सब खेत एक जगह दर्ज रहते हैं। उसी में, साथ ही लगान और बकाया लगान भी लिखा रहता है। खतौनी में भी सब जरूरी तबदीलियाँ दर्ज रहनी हैं।

खेवट

ऊपर पटवारी के कागजातों में खेवट का नाम भी आया है। यह मुहालवार तैयार किया जाता है। हर एक मुहाल में सभी दखलकारों का एक रजिस्टर होता है। उसमें रकबे के सब मालिकों का हर एक हक दर्ज रहता है और यह भी लिखा रहता है कि वह हक कितना और किस किस का हैं। खेवट में जो तबदीली होती है, वह रजिस्ट्रार कानूनगो की आज्ञा लेकर होती है। उसके हुकम के बिना कोई फेर-फार नहीं हो सकता। जो भी बटा बढी होती है उस पर उसके दस्तखत होते हैं, जिससे कि उसके लिए वही जिम्मेदार रहे।

पटवारी के ग्रन्थ कार्य

ऊपर बताए छै कागजातों को तो पटवारी पूरा ही करता है। उसके अलावा जब कोई किसान या जमींदार मर जाता है, जब कोई जमीन बेची जाती है, गाँवों की जब सरहद बदली जाती है, तब इन सब का हाल पटवारी को लिख कर देना पड़ता है। इसके अलावा जिस साल वर्षा कम होने के कारण बाढ़ के कारण उपज मारी जाती है, तब भी पटवारी को रिपोर्ट लिखनी पड़ती है।

पटवारी गाँव के बहुत काम का होता है। लेकिन वह किसानों पर होने वाले अत्याचार नहीं रोक सकता। ये अत्याचार तो तभी रोक सकते हैं जब

जमींदारों की आँखें खुलें या किसान मिल कर कुछ काम करें। अब तो गाँव में लोग मिल कर समिति बना लेते हैं। इसे सहकारी समिति कहते हैं। सहकारी समितियाँ किसानों की हालत बहुत कुछ सुधार सकती हैं। हम इनका विचार सहकारिता के अन्तर्गत करेंगे।

अभ्यास के प्रश्न

१—अपने गाँव के किसानों से पूछ कर यह ठीक ठीक पता लगाइये कि उनको गत वर्ष में अपने जमींदार को किस प्रकार की कितनी बेगार देनी पड़ी ?

२—यदि आप किसी गाँव के जमींदार बना दिये जायें तो उस गाँव के किसानों की आर्थिक दशा सुधारने के लिये क्या प्रयत्न करेंगे ?

३—गैर मौरूसी काश्तकार की तुलना में मौरूसी काश्तकार की खेती अच्छी होने के प्रधान कारण क्या हैं ?

—४—किसान गरीब होने से अत में जमींदार भी गरीब हो जाता है।' इस कथन की सिद्ध कीजिये।

५—जिन प्रान्तों में जमींदार नहीं हैं, क्या उनमें किसानों की दशा अच्छी है ? यदि नहीं तो उसके प्रधान कारण क्या है ?

६—स्थायी बरदोबस्त के गुण-दोष लिखिये ?

७—युक्त प्रान्त और बम्बई प्रान्त की मालगुजारी निश्चित करने की प्रणालियों की तुलना कीजिए। अर्थशास्त्र की दृष्टि से कौन-सी प्रणाली उत्तम है ?

८—युक्त प्रान्त में नए कानून द्वारा किसानों को कौन-सी सुविधाएँ हुई हैं ? संक्षेप में लिखिए।

९—गाँव में पटवारी का क्या महत्व है ? इसके द्वारा किसानों का क्या लाभ हो सकता है ?

१०—पटवारी के मुख्य कामजातों का वर्णन कीजिये। ये कामजात ठीक किस प्रकार रखाये जा सकते हैं ?

११—अपने गाँव के पटवारी से 'खसरा' लेकर उसका एक पृष्ठ नकल कर लाइये और यह जाँच कीजिये कि उससे लिखी हुई बातें कहाँ तक ठीक हैं।

१२—शजरा मिलान क्या है ? उसका महत्व समझाइये ।

१३—संयुक्त प्रांत की भूमि-व्यवस्था को संक्षेप में समझाइए । इस समय काश्तकारों की मुख्य श्रेणियाँ क्या हैं (१९४६)

पन्द्रहवाँ अध्याय

ग्रामों की समस्याओं का दिग्दर्शन

(Village Problems)

इस पुस्तक का विषय ग्राम्य अर्थशास्त्र (Rural Economics) है । पहिले अध्यायों में अर्थशास्त्र के मुख्य सिद्धान्तों पर विचार किया जा चुका है । अगले अध्यायों में हम ग्रामों की समस्याओं पर विचार करेंगे । इस अध्याय में इन समस्याओं का दिग्दर्शन कराते हैं ।

भारतवर्ष कृषि-प्रधान देश है । लगभग बत्तीस करोड़ जनसंख्या वाले इस महादेश में लगभग ७५ प्रतिशत जनसंख्या प्रत्यक्ष रूप से खेती पर निर्भर है । जिस देश में लगभग तीन चौथाई जनसंख्या खेती करके गुजारा करती हो, वहाँ गाँवों का बहुतायत होना अवश्यमभावी है । यही कारण है कि हिन्दोस्तान गाँवों का देश है । स्वतंत्र भारत तथा देशी राज्यों को मिलाकर सारे देश में लगभग पाँच छु लाख गाँव हैं, जिनमें देश की ८५ प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है । ऐसी दशा में यदि हिन्दोस्तान को गाँव का देश कहा जाता है तो कोई आश्चर्य नहीं है । महात्मा गाँधी ने ठीक ही कहा है कि वास्तविक भारत की जानकारी कलकत्ता और बम्बई जैसे विशाल नगरों को देखने से नहीं हो सकती; यदि किसी को हिन्दोस्तान का सच्चा स्वरूप देखना है तो उसे गाँवों की ओर जाना चाहिये ।

ऊपर दिये हुए विवरण से यह तो ज्ञात हो गया कि हिन्दोस्तान में गाँवों का बहुत अधिक महत्व है । गाँव कोई नई सस्था नहीं है, वह हजारों वर्ष पुरानी है, और आज भी जब कि उसकी सब ओर से उपेक्षा हो रही है, वह जीवित है । परन्तु गाँवों की दशा अत्यन्त गिरी हुई है । गाँवों में रहने वाले अधिकांश ग्रामीण पशुवत जीवन व्यतीत करते हैं । दरिद्रता, गन्दगी,

लड़ाई-भगड़े, श्रृण और अशिक्षा का गाँवों में एकजुट राज्य है। सच बात तो यह है कि गाँवों की दशा अत्यन्त दयनीय है। न वहाँ स्कूल, अस्पताल और सड़कें ही होती हैं और न सम्भ्रता के कोई दूसरे ही साधन वहाँ मिलते हैं।

सैकड़ों वर्षों से नगरों द्वारा गाँवों का शोषण होता रहा है। गाँवों का केवल आर्थिक शोषण ही हुआ है, यही बात नहीं है। प्रांतीय सरकार अपनी आय का अधिकांश भाग गाँवों से वसूल करके अधिकतर नगरों पर व्यय करती रही, और जमींदार भी लगान वसूल करके अधिकतर नगरों में यह कर व्यय करने लगे। इसका फल यह हुआ कि गाँव निर्धन हो गये। जमींदारों के नगर में जाकर बसने से एक हानि यह हुई कि जो भी गाँवों में शिक्षित और बुद्धिमान व्यक्ति थे गाँव में नहीं रहे। क्रमशः गाँवों में बुद्धि और धन का अकाल हो गया। इसका फल यह हुआ कि गाँवों की दशा अत्यन्त शोचनीय हो गई। उनका सब तरह से पतन हो गया।

हर्ष का विषय है कि सैकड़ों वर्षों के उपरान्त अब सरकार, देश के नेताओं, तथा शिक्षित व्यक्तियों का ध्यान गाँवों की गिरी हुई अवस्था की ओर आकर्षित हुआ है और ग्राम-सुधार आन्दोलन (Rural uplift movement) देश में उठ खड़ा हुआ है। इसमें तो तनिक भी सन्देह नहीं कि यदि हम चाहते हैं, कि अधिकांश जनसंख्या आज जैसी नीची श्रेणी का जीवन व्यतीत न करके अच्छा जीवन व्यतीत करे तो हमें गाँवों का सुधार करना चाहिये।

इससे पहले कि हम गाँवों को सुधारने की बात सोचें, हमें यह जान लेना आवश्यक है कि हिन्दोस्तान के गाँवों में कौन कौन सी ऐसी समस्याएँ हैं, जिनके हल किये बिना गाँवों का सुधार नहीं हो सकता।

गाँवों की समस्याएँ (Village problems)

विद्वानों ने बहुत खोज करने के बाद यह नतीजा निकाला है कि जो कुटुम्ब गाँवों में रहते हैं उनका जीवन और शक्ति शहरों में रहने वाले कुटुम्बों की अपेक्षा अधिक होती है। यदि किन्हीं सौ ग्रामीण कुटुम्बों को ले लिया जाय जो बराबर गाँव में रहते हों और उन्हीं की स्थिति के सौ

शहराती कुटुम्बों को ले लिया जाय तो मालूम होगा कि गाँव में रहने वाले कुटुम्बों की आयु शहरों में रहने वाले कुटुम्बों से अधिक होगी। सच तो यह है कि गाँव, मनुष्य जनसंख्या की नर्सरी है जहाँ से मनुष्य रूपी पौधा शहरों में लगाया जाता है। जिस प्रकार कोई पौधा अपनी प्राकृतिक अवस्था में खूब पनपता है और अप्राकृतिक वातावरण में उसकी बाढ़ रुक जाती है, ठीक उसी तरह से मनुष्य की जीवन-शक्ति शहरों में पीढ़ी पर पीढ़ी कम होती जाती है।

यदि गाँवों से शहरों में नया खून न पहुँचे तो शहरों में बहुत घटिया लोग दिखलाई दे। लेकिन गाँवों से कुछ न कुछ कुटुम्ब सदैव शहरों में जाकर बसते रहते हैं और वहाँ जाकर धीरे धीरे निस्तेज हो जाते हैं। इस लिए ग्रामीण जनसंख्या ही किसी देश की शक्ति का आधार है। यदि ग्रामीण जनसंख्या गिरी हुई दशा में रही तो देश की अवनति हुए बिना नहीं रह सकती। इसके लिए यह जरूरी है कि स्वस्थ, बुद्धिमान और पुरुषार्थी स्त्री-पुरुष गाँवों में रहें।

आज भारतीय गाँवों की दशा यह है कि जो भी गाँव का लड़का पढ़ जाता है, जो चार पैसे वाला हो जाता है, वह सदैव के लिए गाँव छोड़ कर शहरों में जाकर बस जाता है। जमींदार शहरों के आकर्षण के कारण अपनी जमींदारियाँ छोड़ कर शहरों में जाकर बस गये हैं। ये जमींदार किसानों से प्राप्त धन को गाँवों में व्यय न करके शहरों में व्यय करते हैं। इस कारण गाँव निर्धन होते जा रहे हैं। भारत के गाँव का मस्तिष्क और पूँजी बाहर चली जा रही है। गाँव दिवालिया हो रहे हैं। जो भी व्यक्ति बुद्धिमान, साहसी और महत्वाकांक्षी होता है, वही गाँव छोड़कर शहर में जा बसता है। क्रमशः गाँवों में मनुष्यों का ह्रास रह गया है और प्रथम श्रेणी के लोग शहरों में जाकर निस्तेज और क्षीण होते जा रहे हैं। इसका देश पर बुरा प्रभाव पड़ रहा है और हमारा सब तरह से पतन हो रहा है।

कुछ हद तक गाँवों से शहरों की ओर प्रवास होना अनिवार्य है। हमारा कहना यह है कि गाँवों में भी शिक्षित, बुद्धिमान और साहसी व्यक्ति रहना पसंद करें जिससे कि जाति का हास न हो।

अब हमें देखना चाहिए कि लोग गाँवों से भागते क्यों हैं? गाँवों में आय के साधन कम हैं, ऊँचे दर्जे का सामाजिक जीवन, शिक्षा, मनोरंजन,

सड़क, डाक, रेल, तार इत्यादि का अभाव है। यही कारण है कि कुशाग्र बुद्धि और महत्वाकांक्षी युवक शहरों की ओर भागते हैं।

अस्तु, जब तक हम गाँवों में यथेष्ट आय के साधन, शिक्षा, मनोरंजन, सड़कें, डाक-इत्यादि की सुविधायें उपलब्ध नहीं कर देंगे तब तक यह प्रवास नहीं रुक सकता। वास्तव में हमारे आम-सुधार आन्दोलन का यही लक्ष्य होना चाहिए।

मोटे तौर पर हम कह सकते हैं कि गाँवों की नीचे लिखी मुख्य समस्याएँ हैं :—

१—ग्रामवासियों का पूर्ण निराशावादी दृष्टिकोण। गाँव वाला इस बात का विश्वास ही नहीं करता कि उसकी दशा सुधर सकती है, अस्तु वह अपनी दशा सुधारने का प्रयत्न भी नहीं करता।

२—गाँवों में सफ़ाई का अभाव।

३—गाँवों में शिक्षा की कमी।

४—गाँवों में मनोरंजन तथा खेल-कूद के साधनों का अभाव।

५—स्वास्थ्य-रक्षा तथा उसके सिद्धान्तों की जानकारी न होना।

६—पशुओं की समस्या तथा उनकी उन्नति के उपाय।

७—खेती-बारी की उन्नति।

८—गाँव में लड़ाई-भगड़ और मुकदमेबाजी की समस्या।

९—ग्रामीण श्रमण की समस्या।

१०—गाँवों में धंधों की कमी और आय के साधनों का न होना।

११—गाँव में गमनागमन के साधनों का अभाव।

अब हम प्रत्येक समस्या को लेकर उसकी विस्तृत आलोचना अगले अध्यायों में करेंगे।

अभ्यास के प्रश्न

२—भारतवर्ष में गाँवों का महत्व बतलाइये और लिखिए की गाँव वर्तमान समय में इतने महत्वपूर्ण क्यों हो रहे हैं ?

२—हिन्दोस्तान के गाँवों की वर्तमान गिरी हुई दशा के मुख्य कारण क्या हैं ? विस्तारपूर्वक लिखिये।

३—“ग्राम-सुधार” कार्य से आप क्या समझते हैं ? आजकल यह विषय इतना महत्वपूर्ण क्यों बन गया है ?

४—गाँवों की मुख्य समस्याएँ क्या हैं ? संक्षेप में लिखिये ।

५—यदि गाँवों में पुरुषार्थी, बुद्धिमान और महत्वाकांक्षी व्यक्ति न रहें तो क्या हानि होगी ?

६—अपने प्रांत के गाँवों की मुख्य समस्याएँ बतलाइए । ग्राम-सुधार तथा कृषि विभागने उनका कहाँ तक सुधार किया है । (१९४४ तथा १९४६) ।

सोलहवाँ अध्याय

किसानों का निराशावादी दृष्टिकोण

वास्तविक बात तो यह है कि ग्रामवासी इतने अधिक निराशावादी बन गये हैं कि उनको, चाहे कितना कहा जाये, यह विश्वास ही नहीं होता कि उनकी दशा में सुधार हो सकता है । यही कारण है कि जब उनसे किसी नवीन सुधार को स्वीकार करने के लिये कहा जाता है तो वे इच्छापूर्वक उसे कभी स्वीकार नहीं करते । यदि ग्रामीण चेचक का टीका लगवाता है तो इस कारण नहीं कि उसका विश्वास है कि वह लाभदायक है, परन्तु सरकारी कर्मचारियों के भय से अथवा सरकार को प्रसन्न करने के लिए वह ऐसा करता है । सरकार किसानों के हितों की रक्षा करने के लिए कानून बनाती है, परन्तु वह कानूनों का बहुत कम उपयोग करता है । आज कल ग्राम-सुधार-आन्दोलन (Rural uplift movement) का जोर है । किसी किसी गाँव में यह दिखलाई पड़ता है कि मानों किसानों ने सफाई, घरों में हवा और रोशनी तथा अन्य आवश्यक सुधारों को अपना लिया है, किन्तु वास्तविक बात तो यह है कि यह सब सरकारी अफसरों के भय से अथवा उनको प्रसन्न करने के लिए किया जाता है । यदि सरकारी कर्मचारी अथवा जिलाधीश उस गाँव की ओर से अपना ध्यान हटा लेते हैं तो थोड़े ही दिनों में गाँव पुरानी दशा को पहुँच जाता है । इसका मुख्य कारण यह है कि ग्रामवासियों के हृदय में अपनी तथा अपने गाँव की दशा सुधारने की तीव्र इच्छा उत्पन्न नहीं होती । जो कुछ भी वे करते हैं बाहरी दबाव के कारण करते हैं ।

प्रश्न यह है कि ग्रामवासी इतने अधिक निराशावादी क्यों हैं ? क्यों वह अपने सुख स्वास्थ्य, तथा स्मृद्धि के प्रति इतना उदासीन है ? इस प्रश्न का उत्तर जानने के लिये हमें ग्रामवासियों की वास्तविक स्थिति को समझना होगा। वे शताब्दियों से दुर्भिक्ष और रोगों के शिकार होते चले आ रहे हैं। प्रकृति ऐसी चंचल और अस्थिर है कि खेती का धंधा बिल्कुल अनिश्चित बन गया है। किसान चाहे जितनी मेहनत करे, चाहे जितनी सावधानी से खेती का जोते बाँवे, परन्तु वर्षा के कम होने से, अथवा अत्यधिक वर्षा होने से, टिड्डियों तथा अन्य फसलों के रोगों से, ओलों और सुपार से, तथा अन्य प्राकृतिक परिवर्तनों से, उसकी खेती नष्ट हो सकती है। किसान इस प्राकृतिक आक्रमण से अपनी फसल की रक्षा करने में असमर्थ रहता है। यही नहीं, शताब्दियों से वह और उसके पशु भयंकर रोगों के शिकार होते आ रहे हैं। जहाँ पशुओं की बीमारी फैली कि लाखों की संख्या में पशु मरने लगते हैं और यही दशा मनुष्यों की होती है।

यही नहीं, किसान भयंकर कर्जों के बोझ से इतना दबा रहता है कि वह अपने खेत में जो कुछ पैदा करता है उसका बहुत बड़ा हिस्सा महाजन के पास चला जाता है। बेचारे गरीब किसान के पास तो सिर्फ ६ या १० महीने के खाने का अनाज भर रह जाता है। इन परिस्थितियों के कारण ग्रामवासी नितान्त-निराशावादी तथा भाग्यवादी बन गया।

यही कारण है कि ग्रामवासियों के जीवन का सिद्धान्त यह बन गया है 'वर्तमान को देखो, भविष्य की चिन्ता न करो'। क्योंकि भविष्य में क्या होगा यह कोई नहीं जानता। एक कारण और भी है जो किसान को अपने धंधे की उन्नति करने से रोकता है। वह है, उसका श्रृणी होना। भारतीय किसान इस बुरी तरह श्रृण के बोझ से दबा हुआ है कि यदि वह वैज्ञानिक ढङ्ग से खेती करके अपनी भूमि की पैदावार बढ़ाता है तो उसे कुछ लाभ नहीं होता। जितनी अधिक पैदावार होती है, वह महाजन के पास जाती है। किसान को तो वर्ष में केवल आठ महीने का भोजन मिलता है। ऐसी दशा में वह खेती के आवश्यक सुधारों को क्यों अपनावे ?

ग्रामवासियों को भाग्यवादी से पुरुषार्थवादी, और निराशावादी से

आशावादी कैसे बनाया जावे ? इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि जब तक ग्रामवासी यह विश्वास नहीं करने लगते कि उनकी गिरी हुई दशा में सुधार होना सम्भव है और अपनी दशा को सुधारने के लिये उनमें उत्कट लालसा उत्पन्न नहीं होती, तब तक गाँवों का सुधार होना असम्भव है। गाँवों का सुधार स्वयं ग्राम-वासियों के द्वारा ही हो सकता है, अन्यथा हो ही नहीं सकता। यदि सरकार अथवा और कोई संस्था किसी गाँव में नालियाँ, सड़कें तथा अन्य आवश्यक वस्तुयें उपलब्ध कर दें तो थोड़े दिनों में उनका निशान भी नहीं रहेगा। नालियों और सड़कों की देख-भाल, सफाई और मरम्मत कौन करेगा ? गाँव वाले तो उन्हें चाहते नहीं थे, वे तो उन्हें दान स्वरूप मिली हैं। जिस वस्तु के लिये हम परिश्रम करते हैं अथवा धन व्यय करते हैं, उसका ठीक उपयोग भी करते हैं, और उसकी देख-भाल भी करते हैं। अतएव सरकार तथा ग्राम-सुधार कार्य करने वाली अन्य संस्थाओं का कार्य केवल इतना ही होना चाहिये कि वे अनुसंधान करें, ग्राम-समस्याओं को कैसे हल किया जा सकता है; इसका अध्ययन करें, और उसके अनुसार योजना बना कर गाँव वालों को बतावें।

यह तो हुआ काम करने का ढङ्ग; परन्तु किसानों के भाग्यवादी दृष्टिकोण को कैसे बदला जावे ? इसके लिये लगातार प्रचार तथा शिक्षा की आवश्यकता होगी। शिक्षा तथा प्रचार के द्वारा ही उनका दृष्टिकोण बदला जा सकता है। जब ग्रामवासियों का दृष्टिकोण बदल जावेगा, तभी उनमें अपनी वर्तमान दयनीय दशा के विरुद्ध असंतोष तथा घृणा उत्पन्न होगी। जिस दिन ग्रामवासियों में अपनी गिरी हुई दशा के विरुद्ध असंतोष उत्पन्न हो जावेगा और वे भाग्यवादी नहीं रहेंगे, उसी दिन से ग्रामों की दशा स्वयं सुधरने लगेगी।

आज तो भारतीय किसान घोर भाग्यवादी बन गया है। यदि खेत की फसल नष्ट हो जाती है, बैल मर जाता है, कर्जों में जमीन जायदाद बिक जाती है या बीमारी में उसके परिवार का कोई व्यक्ति मर जाता है, तो वह "भाग्य का दोष" कह कर चुप हो जाता है। उस विपत्ति को दूर करने के लिये कोई प्रयत्न नहीं करता। बाप-दादों से चले आने वाले पैतृक कर्जा,

जमींदार, पुलिस, महाजन, अदालतों और तहसीलों के कर्मचारियों का अत्याचार, और शोषण, निर्धनता, बीमारी, अशिक्षा, और गरीबी ने उसे इतना निराशावादी बना दिया है कि वह यह स्वप्न में भी नहीं सोचता कि उसकी दयनीय स्थिति में सुधार हो सकता है। जब ग्राम-सुधार कार्यकर्ता उससे कहता है कि यदि वह कार्यकर्ता की बातों पर ध्यान दे तो उसकी दशा सुधर सकती है तो ग्रामीण सुन तो लेता है किन्तु विश्वास नहीं करता। और जब तक ग्रामीण का यह निराशावादी दृष्टिकोण बना हुआ है तब तक कोई स्थायी सुधार नहीं हो सकता।

अस्तु, जरूरत इस बात की है कि उसके दिल में अपनी इस दयनीय अवस्था के विरुद्ध घृणा और घोर असंतोष उत्पन्न किया जावे। वह सोचने लगे कि मैं इस बुरी दशा में नहीं रहूँगा, तब फिर उसे बतलाया जावे कि वह अपनी दशा किस प्रकार सुधार सकता है। तभी ग्रामीण नई बातों को स्वीकार करेगा।

अतएव जब तक किसान के हृदय में अपनी दयनीय दशा के विरुद्ध तीव्र असंतोष उत्पन्न नहीं हो जाता, तब तक न तो उसका निराशावादी दृष्टिकोण ही दूर होगा और न वह अपनी दशा का सुधारने की चेष्टा हा करेगा।

आज तो वह “मृत्यु का संतोष” लिए हुए जी रहा है। जो लोग भी गाँवों की दशा को सुधारना चाहते हैं उन्हें इसके विरुद्ध ग्रामीण में “असंतोष” की भावना भरनी चाहिये।

अभ्यास के प्रश्न

१--किसान को जब उसके स्वास्थ्य और खेती की उन्नति के लिये कोई भलाई की बात बतलाई जाती है तो वह उसका अपनी दृष्टि से कभी नहीं मानता। इसका कारण क्या है ?

२--किसान इतना अधिक निराशावादी क्यों बन गया ? इसके कारण बतलाइये।

३--गाँव वालों की दशा को सुधारने में उनका निराशावादी और भाग्यवादी होना क्यों बाधक है ?

४- गाँव वालों की दशा में सुधार करने के लिए उनमें अपनी वर्तमान भिगरी हुई दशा के प्रति असंतोष उत्पन्न करने, और उन्हें पुष्टार्थवादी बनाने की जरूरत क्यों है ?

५--खेती की सफलता भाग्य पर निर्भर है। इस कथन की आलोचना कीजिये।

सत्रहवाँ अध्याय

गाँव की सफाई (Sanitation of Village)

साधारणतः हम लोगों की यह धारणा बन गई है कि हमारे गाँवों में मनुष्यों का स्वास्थ्य बहुत अच्छा रहता है। गाँवों में रोग और महामारी बहुत कम होती है। क्योंकि मनुष्यों को खुली हुई हवा और सूर्य का प्रकाश खूब मिलता है। किन्तु वस्तु स्थिति इससे भिन्न है। प्लेग, हैजा, हुकधर्म, कालाजार, चेचक तथा अन्य रोग गाँवों में घर बनाये हुए हैं। इन भयंकर रोगों के अलावा वर्षा के बाद गाँवों में सर्वत्र जूड़ी दुखार का भयंकर प्रकोप होता है। बगाल और आसाम में तो मलेरिया का भीषण प्रकोप होता है। घान की फसल खड़ी रहती है, किन्तु काटने वाले नहीं मिलते। इसका कारण है, गाँवों की गंदगी।

गाँवों में सर्वत्र गंदगी का साम्राज्य होता है। गाँवों के समीप जाइये; दुर्गन्ध, मक्खियों, धूल और कूड़े की बहुतायत पादयेगा। गाँव के समीप ही छोटे-छोटे ताल और पोखरे होते हैं, जिनमें गंदा पानी सड़ा करता है। अनेक रोगों के कीटाणु यहीं जन्म लेते हैं। घरों में नालियाँ या नाबदान नहीं होते, जिसके कारण घरों का पानी गलियों में बहता रहता है। गाँव की गलियाँ कच्ची होती हैं, वे कभी साफ नहीं होती, उन पर धूल और कूड़ा जमा रहता है। बरसात में ये गलियाँ दलदल बन जाती हैं। किसानों की स्त्रियाँ घरों का साफ रखती हैं, किन्तु गली में कोई सफाई नहीं करता। अधिकतर गाँवों के घरों में शौचस्थान नहीं होते, स्त्री-पुरुष बाहर खेतों और मैदानों में शौच को जाते हैं। गाँव की आबादी के चारों ओर मैदान, खेत, जंगल

तथा तालाब ही गाँव वालों के शौचस्थान होते हैं। इससे गाँव में गंदगी फैलती है तथा वायु अशुद्ध होती है। गाँव के अन्दर हो खाद के ढेर लगे रहते हैं, जिन पर माकड़ियाँ भिनभिनाया करती हैं। घरों में काफी हवा और रोशनी आने का कोई प्रबन्ध नहीं होता और जिन कोठों में मनुष्य रहते हैं उनमें ही पशुओं को रक्खा जाता है। इस कारण घर भी गन्दे रहते हैं। इन सब कारणों से गाँव में बहुत गंदगी रहती है और उसी के कारण पशु और मनुष्यों की बीमारियाँ फैलती हैं। अब हम प्रत्येक गंदगी के कारण पर विचार करते हैं।

ताल व पोखरे (Village pond)

रासवासी अपने मकान कच्ची मिट्टी के बनाते हैं। प्रति वर्ष बरसात बीत जाने पर उन्हें अपने मकानों की मरम्मत करनी पड़ती है। अतएव उन्हें मिट्टी की बहुत आवश्यकता होती है। दूर न जाकर गाँव के लोग आबादी के पास ही भूमि को खोदकर मिट्टी निकालते हैं, जिससे उन्हें मिट्टी ढोना न पड़े। धीरे-धीरे वह स्थान तालाब या पोखरा का रूप धारण कर लेता है। गाँव जितना हो पुराना होता जाता है, उतने ही अधिक ताल और पोखरे बनते जाते हैं, क्योंकि गाँव वालों को मिट्टी की हर साल आवश्यकता पड़ती है।

इस ताल व पोखरे में बरसात का पानी भर जाता है। वर्षा के दिनों में गाँव की गंदगी को साथ लेकर पानी इस ताल या पोखरे में आता है और वहीं सड़ता रहता है। गाँव वाले मैदान में, अथवा ताल के किनारे शौच जाते हैं, और अधिकतर ताल के पानी से ही बदन की सफाई करते हैं। इस कारण ताल का पानी और भी गंदा और दुर्गन्धयुक्त हो जाता है। सड़े हुए और गंदे पानी में मलेरिया के मच्छुड़ तथा अन्य रोगों के कीटाणु उत्पन्न हो जाते हैं, और उनसे गाँवों में रोग फैलते हैं। इन्हीं तालों और पोखरों का पानी गाय और बैल पीते हैं। भला इतने गंदे पानी को पीकर पशु बीमारी से कैसे बच सकते हैं? पशुओं की बीमारी फैलने का यह गंदा पानी एक मुख्य कारण है। गाँव की स्त्रियाँ इन्हीं तालों में अपने कपड़े धोती हैं और कोई कोई स्त्री-पुरुष तो इन्हीं में नहाते भी हैं। ताल के पास रहने वाले लोग उसी में कूड़ा भी डाल देते हैं। वह सड़ता रहता है। इन

सब कारणों से ये ताल और पोखरे निरंतर गाँव को दुर्गन्ध और गन्दी वायु देते रहते हैं। यह तो प्रत्येक समझदार मनुष्य जानता है कि इन गन्दे ताल व पोखरों का प्रभाव गाँव वालों के स्वास्थ्य के लिये कैसा घातक सिद्ध होता है।

गाँव के ताल तथा पोखरे एक बहुत बड़ी समस्या हैं। गाँव के चारों ओर ये ताल बन जाते हैं, इसका फल यह होता है कि गाँव के बालकों को खेलने के लिये, तथा खाद के गड़हे बनाने के लिये और गाँव को बढ़ाने के लिए जमीन ही नहीं रहती। आवश्यकता इस बात की है कि गाँव के समीपवर्ती ताल तथा पोखरे भर दिये जावें, और गाँव से यथेष्ट दूरी पर तालाब खोदा जावे। गाँव के समीपवर्ती तालों के भरने के लिये, नये तालों की मिट्टी काम में लाई जा सकती है। तालाबों का उपयोग करने का एक ढंग यह भी है कि उसके चारों ओर एक मेड़ बना दी जावे, जिससे गाँव का पानी उसमें न जावे। जब ताल बिलकुल सूख जावे तब उसको लेवेल (चौरस) कर दिया जावे और वह बालकों के लिए खेल का मैदान बना दिया जावे। यदि गाँव में चकबन्दी (Consolidation of land holdings) कर दी जावे तो गाँव के आस पास की भूमि, खाद के गड़हो, शौच स्थानों तथा खेल के मैदानों के लिये बचाई जा सकती है, और ताल कुछ दूरी पर खोदा जा सकता है। एक बात और ध्यान में रखने की है, गाँव का पानी ताल में न जाने दिया जावे। गाँव की ओर एक मेड़ बना दी जावे, केवल जंगल का पानी ही ताल में जावे। गाँव से बहा हुआ पानी बहुत गन्दा हो जाता है। गाँव का पानी खेतों की ओर बहा जावे तो अच्छा है। मकानों की मरम्मत करने के लिये गाँव वाले दूर से मिट्टी लावें, गाँव के पास से न खादे।

खाद के गड़हे (Manure Pits)

अभी तक गाँव वाले जो कुछ भी खाद बनाते हैं, वह ढेर लगा कर बनाते हैं। इससे खाद भी अच्छी तैयार नहीं होती और गाँव में गन्दगी बढ़ती है। इन्हीं खाद के ढेरों के कारण गाँव में मक्खियाँ बढ़ जाती हैं और हवा से कूड़ा उड़ उड़ कर पानी, भोजन, तथा आँखों में पड़ता है। गाँव को साफ रखने के लिये यह आवश्यक है कि खाद को

गड़हों (Manure pits) में रखा जावे। प्रत्येक किसान दो गड़हे खोदे और जब तक एक में खाद तैयार होवे दूसरे में गोबर तथा कूड़ा-कचरा डाला जावे। गड़हे के भर जाने पर उसे मिट्टी से ढक दिया जावे। गड़हा पाँच या ६ फुट गहरा होना चाहिये। इससे दो लाभ होंगे। एक तो गांव में कूड़े के ढेर नहीं रहेंगे, और दूसरे अभी जो बहुत सी खाद व्यर्थ फिक जाती है, वह उपयोग में आ जावेगी। अच्छी खाद से अच्छी फसल तैयार हो सकेगी। किन्तु एक कठिनाई यह है कि गाँव के पास गड़हे खोदने को जगह नहीं मिलती, और बहुत दूर खोदने पर घर का गोबर, कूड़ा करकट उसमें सारा का सारा डाला नहीं जा सकता।

शौच-स्थान (Latrine)

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि गांव के घरों में शौच-स्थान नहीं होते, इस कारण गाँव के चारों ओर गन्दगी रहती है। गाँववासी अधिकतर नगरे पैर रहते हैं, अतः मल उनके पैरों में लगता है। उससे एक प्रकार का (Hook-Worm) हुकवर्म रोग उत्पन्न होता है। जब मल सूख जाता है तो वह हवा के साथ उड़कर गाँव के कुत्तों का पानी, भोजन तथा पशुओं के चारे को दूषित करता है और मनुष्य की आँखों में पड़ता है। गाँव वालों का यह विचार भ्रमपूर्ण है कि खेतों में शौच जाने से भूमि की उत्पादक शक्ति बढ़ती है। जब तक खाद सड़कर तैयार न हो जावे, वह भूमि की उत्पादक शक्ति नहीं बढ़ा सकती। जिस प्रकार कच्चा भाजन नहीं पचता उसी प्रकार कच्ची खाद से कोई लाभ नहीं होता, वरन् उससे दीमक उत्पन्न होती है। खाद को गड़हों में सड़ाकर हो खेतों में डालना चाहिये। प्रयत्न तो यह करना चाहिये कि प्रत्येक घर में एक शौच-स्थान हो और कुछ सार्वजनिक शौचगृह हो, जिनका उपयोग अजनबों तथा गाँव में बाहर से आने वाले व्यक्ति कर सकें। परन्तु अभी यह सम्भव नहीं है। भारतवर्ष में तीन प्रकार के शौचस्थान गाँवों के लिये उपयोग वतलाये गये हैं। एक तो खाद के गड़हे को ही शौचस्थान की भाँति काम में लाया जावे। किन्तु किसान मल की खाद को छूना नहीं चाहता; इस कारण इन गड़हों का उपयोग नहीं किया जा सकता। दूसरे प्रकार का शौचस्थान बोर लैट्रिन (Bore Latrine)

(भूमि में सूराख करके शौचस्थान बनाना) है। किन्तु स्वास्थ्य-विभाग का कहना है कि इससे पानी दूषित हो सकता है। तीसरे प्रकार का शौचस्थान साधारण गड़हे के रूप में बनाया जाता है, किन्तु उसमें एक प्रकार की हरी मक्खी उत्पन्न हो जाती है। इन गड़हों के चारों तरफ अरहर की एक बाड़ खड़ी करके दो तख्ते उसपर रखने से एक अच्छा खासा शौचस्थान तैयार हो सकता है। यदि शौचस्थान तैयार करने में कुछ कठिनाइयाँ हों तो इस बात का खूब प्रचार करना चाहिये कि प्रत्येक व्यक्ति मैदान में शौच जाते समय अपने साथ खुर्पी अवश्य ले जावे और एक फुट का छोटा सा गड़हा करके उसमें शौच करके मल को मिट्टी से दबा दे। इससे गाँवों में हुकवर्मी रोग नहीं होगा और गाँव गन्दगी से बच जावेगा।

नाबदान तथा नालियों की समस्या (Drainage)

गाँव की यह समस्या भी महत्वपूर्ण है। घरों में रंगोई घर, बर्तन माँजने तथा नहाने-धोने में जो पानी काम में लाया जाता है वह घरों में अथवा गलियों में गन्दगी फैलाता है। जहाँ देखिये वहाँ घरों के बाहर गलियाँ भू काली काली कीचड़ दिखाई देती हैं। इसका फल यह होता है कि उससे मच्छर उत्पन्न होते हैं और गन्दगी बढ़ती है। कुआँ के पास भी पानी बहुत गिरता है, किन्तु उसके निकास का कोई प्रबन्ध नहीं होता। फल यह होता है कि कुएँ के पास दलदल तथा कीचड़ हाँ जाता है और वहाँ से पानी बहकर गलियों में जाता है।

हाना तो यह चाहिये कि कुआँ के पास ही औरतों के नहाने तथा कपड़े धोने के लिये एक पर्दे की जगह बना दी जावे। पुरुषों के लिये खुली जगह भी उपयुक्त हो सकती है। इससे लाभ यह होगा कि घरों में बहुत कम पानी जावेगा और वहाँ गन्दगी कम होगी। अतएव वहाँ नाली बनाने की आवश्यकता ही न होगी। कुये की मन (जगत) को ऊँचा बनाया जाना चाहिये। अच्छा तो यह हो कि वह पटा हो, जिससे पत्ती और कूड़ा कुयें में न जा सके। कुएँ के चारों ओर ढलवाँ सीमेंट की नाली बनवा दी जावे जिससे कि जो पानी गिरे वह कुयें के पास ही न भरे। कुयें के पास ही पानी गिरने से कुयें का पानी दूषित हो जाता है। कुयें की नाली और स्नान तथा

कपड़े धोने के स्थानों की नालियाँ एक बड़ी नाली में मिला दी जायें। यह नाली भी कंकरीट की बनाई जावे या कुयें का पानी नाली द्वारा गाँव के बाहर ले जाया जावे, या दूसरा उपाय यह हो सकता है कि कुयें के पास ही एक बगीची लगाई जावे और उसके पेड़ों और पौधों की सिंचाई के लिये कुयें के पानी का उपयोग कर लिया जावे। इन वाटिकाओं में फल और फूल के पेड़ लगाये जावें। इनमें यह लाभ होगा कि गाँव का सौंदर्य बड़ेगा और गन्दगी भी नहीं होगी। जिन घरों में बहुत जल काम में लाया जाता हो, वहाँ भी यह-वाटिका में, अथवा तरकारी की बगारी में, उस पानी का उपयोग किया जा सकता है। संयुक्त प्रान्त तथा अन्य प्रान्तों में इस समस्या को हल करने के लिये सोकैज पिट (Soakage pit) बनवाये गये हैं, किन्तु जब तक सोकैज पिट गहरे और बहुत बड़े तथा अच्छी तरह बनाये न जावे, उनसे कोई विशेष लाभ नहीं होता। लोकन और कुछ प्रबन्ध न होने से वे ही अच्छे हैं। वाटिकाओं द्वारा इस समस्या को अधिक सफलतापूर्वक हल किया जा सकता है।

घरों में हवा और रोशनी का प्रबन्ध

गाँव की स्त्रियाँ अपने घरों को गोबर तथा मिट्टी से लीप-पोत कर साफ रखती हैं और इस दृष्टि से गाँव के मकानों में बहुत सफाई रहती है। जहाँ गाँव बहुत गन्दा होता है वहाँ घरों में यथेष्ट सफाई मिलती है। यह स्त्रियों की मेहनत का फल है। घरों में जो भी वस्तु होगी वह साफ सुथरी होगी। पीतल तथा काँसे के बर्तन तो इतने साफ रहते हैं कि उनकी चमक बहुत सुन्दर प्रतीत होती है। किन्तु ग्रामीण अपने कोठों और कोठरियों में हवा तथा रोशनी का काफी प्रबन्ध नहीं करता। उनके मकान में खिड़की अथवा रोशनदान होते ही नहीं। ग्रामीण खिड़की अथवा रोशनदान चोरों के भय से नहीं लगाते। परन्तु हवा और रोशनी जीवन और स्वास्थ्य के लिये अत्यन्त आवश्यक हैं, अतएव रोशनदान अवश्य निकालने चाहिये। यदि छत के समीप ऊँचे पर रोशनदान लगाया जावे और उसमें लोहे की छड़ें हों तो चोरों का भी इतना भय नहीं रहेगा। यदि मकान एक दूसरे से भिड़े हों तो छत में रोशनदान तथा हवादान लगाना चाहिये। भविष्य में एक दूसरे मकान से सटा कर मकान न बनाने के लिये गाँव वालों को कहना चाहिये।

बहुत से ग्रामीण घरों में स्त्रियाँ सोने के कांठे में ही एक किनारे भोजन बनाती हैं, जिससे धुआँ बुटता है और सोने का कमरा गन्दा हो जाता है। अतएव उन्हें यह बतलाया जाना चाहिए कि रसोई आगिन के एक किनारे पर सोने के कांठे से दूर होना चाहिए और रसोई घर में धुआँ निकलने का मार्ग होना चाहिए। इससे दो लाभ होंगे। धुएँ से रसोई घर काला नहीं होगा, और घर की स्त्रियों की आँखें खराब होने से बच जावेंगी।

बहुत से किसान मकान में रहने के स्थान पर ही पशुओं को बाँध देते हैं। इससे स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है और गन्दगी बढ़ती है। मकान के साथ एक छोटी सी पशुशाला होनी चाहिए जहाँ बैल बाँधे जावें। यदि पृथक् पशुशाला का प्रबन्ध न हो सके तो भी मकान में पशुओं को रहने के स्थान से दूर बाँधना चाहिए।

गाँव की सड़कें (Village Roads)

गाँव की सड़कें कच्ची होती हैं। दोनों ओर के खेतों के मालिक धीरे धीरे सड़क को खोद कर खेतों में मिलाने का प्रयत्न करते हैं, इससे सड़क पतली और टेढ़ी हो जाती है। यही नहीं, किसान अपने खेत की मेंड़ को बनाने के लिये सड़क में से मिट्टी खोद लेते हैं, जिससे सड़क में गड़हे बन जाते हैं। नहर तथा कुयों का पानी जब सड़क के पार से जाया जाता है तो वह सड़क पर ही बहता रहता है अधिकतर ये कच्ची सड़कें आस पास के खेतों से नीची होती हैं। इस कारण बरसात में इनमें पानी भर जाता है। सच तो यह है कि बरसात के दिनों में बैलगाड़ी का इन सड़कों पर चल सकना असम्भव हो जाता है। सड़क खेतों से ऊँची होनी चाहिये जिससे वर्षा का पानी खेतों में चला जावे। गाँव की पंचायत गाँव वालों को सड़क में से मिट्टी खोदने के लिये मनाही करदे, और प्रति वर्ष वर्षा के उपरान्त गाँव वाले मिल कर स्वयं सड़क की मरम्मत करलें तो गाँव वालों को अपनी पैदावार मंडियों में ले जाने, तथा आने जाने में बहुत सुविधा हो जावे। सरकार और जिलाबोर्ड यह नियम बनादे कि जो गाँव सड़क बनाने के लिए मजदूरी मुक्त देगा, उसको कंकड़ अथवा अन्य सामान पक्की सड़क

बनाने के लिये मुफ्त दिया जावेगा। इस प्रकार बहुत थोड़े व्यय से और गांव वालों के परिश्रम से गांवों में पक्की सड़कें बन सकती हैं। हाँ, वहाँ वालों को उन सड़कों की प्रति वर्ष मरम्मत करने की जिम्मेदारी अपने ऊपर लेनी होगी। किन्तु यह काम तभी हो सकेगा जबकि गांव वालों में अपने गांव की दशा सुधारने की उत्कट लालसा उत्पन्न हो जावेगी।

गाँव में कुशल दाइयों की समस्या

गांवों में जो दाइयाँ हैं वे न तो गर्भवती स्त्रियों की ठीक से देखभाल ही करना जानती हैं और न बच्चा जनाने का काम ही वे ठीक तरह से कर सकती हैं। गंदी तो वे इतनी होती हैं कि उनके छूने से ही माँ और बच्चे को रोग हो जाते हैं। सच तो यह है कि गाँवों में बहुत बड़ी संख्या में जो गर्भवती मातायें और बच्चे मरते हैं उसका कारण एक मात्र कुशल और साफ दाइयों का न होना है।

जब तक हर एक गाँव में या दो चार गाँवों के बीच एक शिक्षित कुशल और ट्रेन्ड दाई नहीं होगी, तब तक, बच्चों और माताओं की मृत्यु रोकनी नहीं जा सकती। ये दाइयाँ माताओं और बच्चों के जीवन से खिलवाड़ करती हैं। अतएव सरकार, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड तथा अन्य सभी संस्थाओं का यह कर्तव्य है कि यह किसी प्रकार रोका जावे।

प्रान्तीय सरकारों को प्रत्येक जिले में दाइयों के ट्रेनिंग स्कूल स्थापित करने चाहिए और डिस्ट्रिक्ट बोर्डों को तथा अन्य संस्थाओं को गांवों की दाइयों को वजीफा देकर वहाँ शिक्षा प्राप्त करने के लिए भेजना चाहिए।

जब काफी शिक्षित दाइयाँ तैयार हो जावें तब सरकार को एक कानून बना देना चाहिए कि बिना लाइसेंस लिए हुए कोई भी दाई का काम नहीं कर सकती और लाइसेंस केवल उन्हीं को दिया जावे जो कि ट्रेन्ड हैं और इस कार्य में कुशल हैं।

जब तक ऐसा नहीं किया जावेगा तब तक बच्चों और माता के जीवन की रक्षा नहीं की जा सकती।

केवल बच्चा जनाने के लिए कुशल दाइयों का प्रबन्ध कर देना से ही काम नहीं चलेगा। गांव की स्त्रियों को बच्चों के ठीक प्रकार से लालन-पालन करने की शिक्षा भी देना आवश्यक है। माताओं की भूल से बच्चों का स्वास्थ्य खराब हो जाता है। इसलिए इन दाइयों का यह कर्तव्य भी होगा कि वे बच्चों के लालन-पालन की शिक्षा स्वयं प्राप्त करें और माताओं को दें।

प्रति वर्ष गांव में बच्चों के स्वास्थ्य का प्रदर्शन (Baby Show) किये जावे और स्वस्थ बच्चों की माँ को पारितोषिक दिया जावे। इसके साथ ही बच्चों का लालन पालन कैसे करना चाहिए, इसकी जानकारी कराई जावे। यह प्रदर्शन कई दिन तक होना चाहिए।

गांव में सफाई और स्वास्थ्य की योजना

भारतवर्ष में रोके जा सकने वाले रोगों के कारण जो भयंकर हानि हो रही है वह सहकारी स्वास्थ्य समितियाँ स्थापित करके रोकी जा सकती है। हर एक गाँव में एक स्वास्थ्य रक्षक समिति की स्थापना की जावे। जहाँ तक होसके हर एक गाँव वाले को उसके लाभ समझा कर उसका सदस्य बना लिया जाय।

सब सदस्यों की एक साधारण सभा हो। प्रति वर्ष सभा वार्षिक पोग्राम निर्दिष्ट करे और दो मन्त्री तथा पंच निर्वाचित कर दे। एक मन्त्री गाँव की सफाई की देख भाल करे और दूसरा मन्त्री गाँव में चिकित्सा और दवा का प्रबन्ध करे।

गाँव के पास के सब गड़हों को पाट दिया जाय, नालों तथा खेतों के बहाव को ठीक कर दिया जाय। वर्षा समाप्त हो जाने पर जहाँ पानी रुक जाय वहाँ मिट्टी का तेल छुड़वाया जाय। इससे मलेरिया बुखार गाँव में नहीं फैल सकता क्योंकि मलेरिया ज्वर का कीड़ा रुके हुए पानी में ही उत्पन्न होता है।

पास के चार पाँच गाँवों की स्वास्थ्य रक्षक समितियाँ मिलकर एक बड़ी समिति बनालें। हर एक ग्राम-समिति के प्रतिनिधि बड़ी समिति के

सदस्य रहेंगे। यही समिति एक चिकित्सक तथा योग्य नर्स को नौकर रखे। इनको निजी प्रैक्टिस करने की आज्ञा न होनी चाहिए। नर्स का काम यह होगा कि वह बड़ी समिति से सम्बन्धित गाँवों में बच्चा जनाने का काम करे। बड़ी समिति का चिकित्सक बीच के गाँव में रहे और प्रतिदिन दो गाँवों में जाकर वहाँ जो भी बीमार हो, उन्हें दवा दे।

चिकित्सक का मुख्य कार्य केवल चिकित्सा करना ही न होगा, वरन् रोगों से बचने का उपाय बताना भी उसका कर्तव्य होगा। मास में एक दिन प्रत्येक गाँव में चिकित्सक व्याख्यान देकर बतावे कि रोग क्यों उत्पन्न होते हैं और उनसे बचने के क्या उपाय हैं। इसी प्रकार समिति की नर्स गर्भवती स्त्रियों का निरीक्षण करे और उनको, बच्चों के लालन पालन करने तथा गर्भवती स्त्रियों को किस प्रकार रहना चाहिये, इसकी शिक्षा दे।

प्रत्येक सदस्य समिति को मासिक चन्दा देगा। जो सदस्य कि चन्दा देने में असमर्थ हों उनसे समिति चन्दा न लेकर शारीरिक परिश्रम करवा ले। इस प्रकार सब ग्रामवासी यदि चाहें तो स्वास्थ्य रक्षक समिति के सदस्य बन सकते हैं। समिति अपने सदस्यों के लिये औपधियाँ भी रखे।

ये बड़ी समितियाँ मिलकर जिला स्वास्थ्य-रक्षक समिति का संगठन करें। जिला समिति का कार्य केवल ग्राम समितियों की देखभाल करना, स्वास्थ्य-रक्षा सम्बन्धी प्रचार करना, जिले के किसी स्वास्थ्य-विभाग के कर्म-चारियों से लिखा पढ़ी करके जब कभी उस जिले के किसी भाग में बीमारी फैल जावे, उनको रुकवाने का प्रयत्न करना होगा।

प्रान्तीय सरकार, जिला बोर्ड इन समितियों को आर्थिक सहायता देकर इस कार्य को आगे बढ़ा सकते हैं। इस प्रकार यदि संगठन हो तो ग्रामीण अपने प्रयत्न के द्वारा ही गाँव में सफाई और स्वास्थ्य रक्षा की समस्या को हल कर सकते हैं।

अभ्यास के प्रश्न

- १- गाँव इतने गंदे क्यों होते हैं ? कारण बताइये।
- २- गाँव के समीप ताल और पोखरी का गाँव वालों के स्वास्थ्य पर कैसा प्रभाव पड़ता है ? विस्तार पूर्वक लिखिये।

३—गाँव के तालों और पोखरों से गाँव वालों के स्वास्थ्य पर, जो बहुत बुरा असर पड़ता है, उससे बचने का रास्ता क्या है ?

४ किसान आजकल जो गाँव के किनारे ढेर लगाकर खाद बनाते हैं, उसको तुम कैसा समझने हों ? उसके हानि लाभ लिखिये ।

५—खाद को तैयार करने का अच्छा और स्वास्थ्य बढ़ाने वाला ढंग कौन सा है ?

६—गाँवों में रहने वाले खुले मैदानों, खेतों और तालाबों के किनारे शौच जाने हैं, उससे क्या हानियाँ होती हैं ?

७ गाँवों के लिये किस प्रकार के शौचस्थान उपयुक्त होंगे ? इन शौचस्थानों से गाँव के रहने वालों को क्या लाभ होगा ? सक्षेप में लिखिये ।

८—कुओं की मन (जगत) न होने से क्या हानि होती है ? कुओं के पास बाटिका अथवा सोकेज पिट बनाने से क्या लाभ होगा ?

९—घरों के फिजूल पानी के बहाने से जो गंदगी उत्पन्न होती है, उसको दूर करने का क्या उपाय है ?

१०—घरों में रोशनदान और धुँधों निकालने का भाग क्यों जरूरी है ? उससे क्या लाभ होगा ?

११—गाँवों में कच्ची सड़कों की जो दशा है, उसको लिखिये और बतलाइये कि इन सड़कों का सुधार कैसे हो सकता है ?

अठारहवाँ अध्याय

ग्रामीण शिक्षा (Rural Education)

भारतवर्ष में शिक्षा का अभाव है, फिर गाँवों का तो पूछना ही क्या ? वहाँ तो निरक्षरता का अखंड साम्राज्य है। बड़े-बड़े नगरों तथा कस्बों में शिक्षा की कुछ सुविधायें हैं, परन्तु गाँवों में बहुत कम पाठशालायें देखने को मिलेगी। इसका फल यह हुआ, कि गाँव के लड़के निरक्षर रह कर

जीवन व्यतीत करते हैं। समस्त स्वतंत्र भारत में दो लाख के लगभग प्राइमरी पाठशालायें हैं। इन पाठशालाओं में बहुत अधिक संख्या शहरी पाठशालाओं की है। अतएव समस्त स्वतंत्र भारत के ग्रामों में एक लाख से अधिक पाठशालायें नहीं। अब प्रांतीय सरकारें ग्राम शिक्षा की ओर अधिक ध्यान दे रही हैं और हजारों पाठशालायें स्थापित की जा रही हैं।

गाँवों में पाठशालाओं की बहुत कमी तो है ही परन्तु जो भी पाठशालायें गाँवों में हैं, वहाँ की शिक्षा बिस्कुल शहरात् है। जो शिक्षाक्रम शहरों में है, वही गाँवों में चलाया जा रहा है। शहर के शिक्षक ही गाँवों में भेजे जाते हैं। वे ही पाठ्य-पुस्तकें, वे ही विषय, वही पद्धति, अर्थात् सब कुछ वही है। ऐसा प्रतीत होता है कि मानों गाँव वालों की कोई विशेष आवश्यकताएँ ही नहीं हैं, और न गाँवों में कोई ऐसी बात है, जिसको अपनाया जावे। इस शहरात् शिक्षा का फल यह हुआ कि ग्रामीण सभ्यता क्रमशः घृणा की वस्तु बनती जाती है। शहर के शिक्षित व्यक्ति तो गाँव की सभ्यता, गाँव की वेश-भूषा, और गाँव के रहन सहन को घृणा की दृष्टि से देखते ही हैं, गाँव के पढ़े लिखे लड़के भी गाँव की प्रत्येक वस्तु से घृणा करने लगते हैं। यहाँ तक कि “गाँवार” शब्द असभ्य, मूर्ख तथा अशिक्षित का पर्यायवाची बन गया है। इन सबका फल यह हुआ कि गाँव का शिक्षित लड़का और उसका अनुसरण करने के कारण गाँव के समस्त लड़के सभ्यता, वेशभूषा, तथा रहन-सहन के विषय में शहरों को आदर्श मानते और उनकी नकल करते हैं। आज गाँव के लड़कों की आकांक्षा यह नहीं है कि गाँव में रहें और उसकी उन्नति करें, वरन् उनकी आकांक्षा शहरी जीवन व्यतीत करने, अथवा कम से कम उसकी नकल करने की होती है। यह सब किस कारण हो रहा है? प्राइमरी पाठशाला से लेकर विश्वविद्यालय तक में ग्रामीण जीवन, गाँवों की आवश्यकताओं, और ग्रामीण समस्याओं की पूर्ण उपेक्षा की गई है। जो देश ग्राम-प्रधान है, वहाँ ग्रामों की इस प्रकार उपेक्षा हो? क्या यह लज्जा की बात नहीं है?

अतएव केवल इसी बात की आवश्यकता नहीं है कि गाँवों में अधिक स्कूलों की स्थापना की जावे, वरन् इस बात की भी आवश्यकता है कि ग्राम पाठशालाओं का पाठ्यक्रम गाँवों की आवश्यकताओं के अनुकूल बनाया

जावे। केवल ग्राम पाठशालाओं के पाठ्यक्रम को ही गांव की परिस्थिति के अनुसार बनाने से काम नहीं चलेगा। मिडिल स्कूल, हाईस्कूल, तथा विश्वविद्यालयों में भी ग्राम सम्बन्धी विषयों का समावेश होना चाहिए, जिससे कि शिक्षित व्यक्तियों में ग्रामों के प्रति घृणा की भावना न रहे और वे उनकी ओर आकर्षित हों। उच्च शिक्षा में ग्राम सम्बन्धी विषय रखने से एक लाभ यह भी होगा कि शिक्षित व्यक्ति ग्रामीण समस्याओं के विषय में जानकारी प्राप्त करेगे, और उसके कारण उनकी सहानुभूति गांवों के प्रति बढ़ जावगी।

साधारण लिखाई पढ़ाई तथा अन्य विषयों के अतिरिक्त, ग्राम्य पाठशालाओं में कृषि सम्बन्धी आवश्यक बातों, सहकारी समितियों के सम्बन्ध में साधारण जानकारी, शारीरिक तथा गांव की सफाई, तथा अन्य आवश्यक बातों की जानकारी भी कराई जानी चाहिए। पाठशाला का एक छोटा सा फार्म होना चाहिये, जिस पर अच्छे ढंग से खेती, पाठशाला के लड़के स्वयं करें, और उन नई बातों का अनुभव प्राप्त करें जिनको कृषि विभाग खेती के सुधार के लिए आवश्यक समझता है। पाठशाला को, सफाई के लिये एक आदर्श होना चाहिए। प्रतिदिन विद्यार्थियों की शारीरिक स्वच्छता का निरीक्षण होना चाहिये। साफ कैसे रहना चाहिए, इस सम्बन्ध में उन्हें सब बातें जाननी चाहिए। पाठशाला में वे सब बातें बरतनी चाहिये जो कि गांव की सफाई के लिए आवश्यक समझी जावें। ग्राम पाठशालाओं में किसी कौशल की शिक्षा अवश्य दी जानी चाहिए।

प्रत्येक पाठशाला में एक बालचर द्रुप (Scout troop) होना चाहिए जिससे की बालक अच्छी आदत सीखें और उनमें सेवा की भावना जागृत हो। किन्तु बालचर द्रुप केवल दिखावे के लिए न हों। पाठशाला के विद्यार्थियों को वे खेल, जिनको कि गांव में प्रचार करना अभीष्ट है, नियम के साथ खिलावे जावें।

यदि महात्मा गांधी की वर्धा योजना के अनुसार पाठशालाओं में उद्योग-धंधों के आधार पर शिक्षा देने की व्यवस्था की जावे तो ग्राम पाठशालाओं को भी उस योजना में सम्मिलित करना चाहिये। यदि वर्धा योजना स्वीकृत न भी हो तो भी ग्राम पाठशाला में ग्रामीण उद्योग धंधों की शिक्षा

का प्रबन्ध होना चाहिये। ग्राम पाठशाला की पढ़ाई का उद्देश्य गाँव के लड़के को केवल साक्षर बना देना ही नहीं होना चाहिए, वरन् उसका उद्देश्य उनको साक्षर बनाने के अतिरिक्त अच्छा ग्रामीण और सफल कृषक बनाना होना चाहिये।

किन्तु एक बात ध्यान में रखने की है। बिना लड़कियों को शिक्षित बनाये, गाँवों में भी शिक्षा का विस्तार नहीं हो सकता और न गाँवों का सुधार ही हो सकता है। आजकल ग्राम-सुधार की बहुत चर्चा है; परन्तु ग्रामसुधार-कार्य में लगे हुये लोग यह भूल जाते हैं कि जो परिवर्तन वे गाँव तथा गाँव वालों के घरों में लाना चाहते हैं, वे बिना गाँव की स्त्रियों की सहायता के, लाये ही नहीं जा सकते। जब तक गाँव की स्त्रियाँ उन परिवर्तनों को नहीं अपनातीं, तब तक उनकी उपयोगिता को समझते हुये भी गाँव के पुष्प उनको स्वीकार ही नहीं कर सकते। इस कारण गाँव की लड़कियों की शिक्षा अत्यन्त आवश्यक है।

गाँव में लड़कों की ही शिक्षा की ओर जब किसी ने ध्यान नहीं दिया तो लड़कियों की शिक्षा के विषय में पूछना ही क्या है? उसकी तो नितास्त अवहेलना की गई है। अब समय आ गया है कि लड़कियों की शिक्षा का महत्त्व समझा जावे और उसपर ध्यान दिया जावे।

लड़कियों की शिक्षा किस प्रकार की हो, इस पर जहाँ तक गाँवों का सम्बन्ध है, दो मत नहीं हो सकते। लड़कियों को साक्षर बनाने के अतिरिक्त उन्हें कुशल गृहिणी बनाने के लिये, जिन बातों की आवश्यकता है, वे सभी बातें उन्हें सिखलाई जानी चाहिये। खाना बनाना, भिन्न भिन्न खाद्य पदार्थों के गुण तथा उनका मनुष्य के स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव होगा इसका ज्ञान, सिलाई, घर के अन्य सब कार्य, हिसाब रखना, साधारण बीमारियों तथा छूत के रोगों के सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी—चूहां, मच्छरों तथा मक्खियों से क्या हानि पहुँचती है, इसका ज्ञान, कुछ उपयोगी और सदैव काम में आने वाली औपधियों का उपयोग, बच्चों का लालन-पालन तथा घरों की सुन्दर बनाना; ये कुछ ऐसे विषय हैं, जिन्हें बड़ी लड़कियों को सिखाने की आवश्यकता है।

परन्तु भारतवर्ष में केवल लड़के और लड़कियों की शिक्षा के प्रबन्ध

करने से गाँवों का शीघ्र ही सुधार न हो सकेगा। यदि हम चाहते हैं कि गाँवों में नवीन जीवन का प्रादुर्भाव शीघ्र ही हो तो हमें प्रौढ़ों (adults) को भी शिक्षित बनाने का प्रबन्ध करना होगा। आजकल यदि गाँवों में कोई लड़का कुछ पढ़ता भी है तो प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त करने के उपरान्त, वह सब भूल जाता है और पहले की ही भांति निरक्षर बन जाता है। माता और पिता अशिक्षित होते हैं, इस कारण वे लड़के और लड़कियों के लिये ऐसा कुछ प्रबन्ध नहीं करते कि वे पढ़ा लिखा न भूल जावें। शिक्षित माता-पिता के पुत्र और पुत्रियाँ पढ़ना लिखना भूल ही नहीं सकते। प्रौढ़ों की शिक्षा, ग्रामसुधार कार्य को शीघ्र सफल बनाने के लिये अत्यन्त आवश्यक है। प्रौढ़ की शिक्षा के लिये रात्रि पाठशालाओं की धीजना करनी होगी। स्त्री और पुरुषों की शिक्षा का अलग अलग प्रबन्ध करना होगा। यह कार्य गैरसरकारी कार्यकर्त्ताओं को, जिनमें सेवा भाव हो, सौंपना चाहिये। गाँव की पंचायत से उन्हें इस कार्य में सहायता मिल सकेगी। सरकारी शिक्षा समितियाँ (co-operative education societies) स्थापित करके यह कार्य और भी अच्छी तरह से चलाया जा सकता है, जैसा कि पञ्जाब में हुआ है। स्त्री और पुरुषों के लिये अलग अलग समितियाँ स्थापित होनी चाहिये। गाँव के सेवा-भाव वाले और पढ़े लिखे स्त्री पुरुषों को इस कार्य में अपना थोड़ा सा समय देने पर राजी किया जावे; तब ही काम में सफलता मिल सकती है। शिक्षा के सम्बन्ध में जो भी रात्रि पाठशाला का काम हो, वह समिति, चन्दे के रूप में इकट्ठा करे; चन्दा पैदावार के रूप में भी जमा किया जा सकता है। यदि सरकार उस प्रकार की समितियों को सहायता दे, तो उनके द्वारा केवल प्रौढ़ों (adults) की ही शिक्षा का प्रबन्ध नहीं, वरन् गाँव के लड़के लड़कियों की शिक्षा का प्रबन्ध किया जा सकता है। किताबी शिक्षा के साथ साथ, गाँव वालों में अखबार तथा अन्य पुस्तकों को पढ़ने की आदत भी डालनी चाहिये। उसके लिये समिति पुस्तकालय और वाचनालय खोल सकती है।

ग्राम्य पाठशाला में शिक्षा समाप्त करने के उपरान्त गाँव का लड़का, यदि मिडिल स्कूल में शिक्षा प्राप्त करने चला जाता है, तब तो कोई बात ही नहीं, अन्यथा यह भय रहता है कि कहीं पढ़ना लिखना भूल न जावे। इस

भय को दूर करने, गाँव के लड़कों की साक्षरता को स्थायी बनाने, और उनके ज्ञान की वृद्धि करने के लिये पुस्तकालयों की स्थापना उतनी ही आवश्यक है जितनी कि पाठशालाओं को स्थापित करने की। शिक्षा-प्रचार के साथ-साथ ग्राम्य पुस्तकालयों की नितान्त आवश्यकता है। पुस्तकालय घूमने फिरने वाले भी हो सकते हैं। इसके लिये आवश्यक यह होगा कि गाँवों के लिये साप्ताहिक समाचार-पत्र निकाले जावे और ग्राम्य पुस्तकालयों के लिये ग्राम्य-उपयोगी सरल पुस्तकें लिखवाई जावें। कुछ पुस्तकें तो स्थायी रूप से प्रत्येक गाँव में रहे और अन्य पुस्तकों के पश्चिम-पश्चिम पुस्तकों के सेट बनवा दिये जावें, जो एक गाँव से दूसरे गाँव में घूमते रहें।

रेडियो के द्वारा भी गाँव में ससार तथा देश की हलचलों के विषय में जानकारी कराई जा सकती है और मनोरंजन के साथ-साथ उनका ज्ञान-वर्धन भी किया जा सकता है। यदि देखा जावे तो रेडियो का प्रचार कार्य गाँव में बहुत उपयोगी हो सकता है। जहाँ जलविद्युत् है, वहाँ रेडियो सेट अवश्य लगवाना चाहिये। रेडियो प्रोग्राम भी गाँव के लिये उपयोगी हैं, ऐसा प्रबन्ध करना चाहिये।

किन्तु, जहाँ ग्राम शिक्षा अत्यन्त महत्वपूर्ण है, वहाँ यह एक अत्यन्त कठिन समस्या भी है। गाँव में शिक्षा प्रचार के लिए देश का ऐसे ग्राम-शिक्षकों की आवश्यकता होगी कि जो गाँवों से सहानुभूति रखते हों और गाँव में जाकर सेवा-कार्य करने को तैयार हों। लड़कियों की शिक्षा की समस्या भी तभी हल हो सकती है जब कि ग्राम शिक्षकों की पत्नियों को ग्राम-अध्यापिका बनने के लिये उत्साहित किया जावे और उनको आवश्यक शिक्षा दी जावे। इस कार्य के लिये बहुत धन और शिक्षित व्यक्तियों की आवश्यकता होगी। परन्तु बिना इस कार्य को किये निस्तार भी नहीं है।

शिक्षा-योजना की सफलता के लिये यह भी ज़रूरी है कि हर एक प्रांत में सरकार कानून बनाकर प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य कर दे। प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य तो होना ही चाहिए; वह निःशुल्क (बिना फीस) भी होनी चाहिये, तभी भारत से अशिक्षा का रोग मिट सकता है। यह देश के लिये अत्यन्त, संज्ञा की बात है कि यहाँ की केवल १२ प्रतिशत जनसंख्या लिख पढ़

सकती है। सच तो यह है कि जब तक देश से अशिक्षा का रोग दूर नहीं हो जाता, तब तक किसी भी प्रकार की उन्नति नहीं हो सकती।

हर्ष की बात है कि सयुक्तप्रान्त में कांग्रेस सरकार, उस प्रकार का नियम बनाने जा रही है कि जो युवक विश्वविद्यालयों में उच्च शिक्षा प्राप्त करेंगे, वे गाँवों में शिक्षक का कार्य करें। उससे ग्राम शिक्षा की समस्या को हल करने में सुविधा होगी।

सारे देश में कोई भी सुधार-कार्य पूरी तरह से सफल नहीं होता, इसका मुख्य कारण जनता का अशिक्षित होना ही है। अतएव गाँवों की उन्नति के लिये भी शिक्षा की नितान्त आवश्यकता है।

सार्जेन्ट रिपोर्ट

युद्ध के उपरान्त भारत में शिक्षा की उन्नति किस प्रकार की जावे, इस सम्बन्ध में जाँच करने के लिये भारत सरकार ने एक बोर्ड स्थापित किया था, जिसके मन्त्री श्री सार्जेन्ट महोदय थे; जो कि भारत सरकार के शिक्षा विषयक मामलों के सलाहकार थे। बोर्ड ने युद्ध के उपरान्त भारत में शिक्षा किस प्रकार फैले, इस सम्बन्ध में एक रिपोर्ट प्रकाशित की है। ग्रामों में शिक्षा (प्रारम्भिक) किस प्रकार हो, इस सम्बन्ध में नीचे लिखी शिफारिशें की गई हैं।

(१) हमारी राय में भारतवर्ष में अनिवार्य और निःशुल्क (बिना फीस) प्रारम्भिक शिक्षा ६ से १४ वर्ष तक के लड़के-लड़कियों के लिये सर्वत्र शीघ्र ही प्रचलित कर देना चाहिये। ऐसा करने के लिये लगभग १८ लाख अध्यापकों की जरूरत होगी और २०० करोड़ रुपया व्यय होगा। इसलिये यह योजना लगभग ४० वर्षों में पूरी होगी।

(२) शिक्षा किसी दस्तकारी के द्वारा दो जावे, जिसे बेसिक शिक्षापद्धति कहते हैं (Basic Education)।

(३) इस योजना को सफल बनाने के लिये अध्यापकों की, आज जो गिरी हुई दशा है, उसे दूर करना होगा। उन्हें उचित वेतन देना होगा और योग्य व्यक्तियों को अध्यापक बनने के लिए उत्साहित करना होगा।

यदि यह योजना काम में लाई, गई तो आशा है, गाँवों में आज जो

अशिक्षा का अंधकार है, वह दूर हो सके, और गाँव वाले शिक्षित हो सकें।

तालीमी संघ

इस योजना के सम्बन्ध में हमें यह न भूल जाना चाहिये कि दलितकारी द्वारा शिक्षा देने की पद्धति, जिसे वेगिक शिक्षा प्रणाली कहते हैं, उसका निर्माण महात्मा गाँधी के नेतृत्व में तालीमी सङ्घ ने किया था, और वह वर्धा-योजना के नाम से प्रसिद्ध है। तालीमी सङ्घ इस शिक्षा प्रणाली को सफल बनाने की भरसक चेष्टा करता है। तालीमी संघ ने जो (Basic) शिक्षा पद्धति निकाली है, उसका उद्देश्य तो यह है कि बालक किसी धन्धे के आधार पर और उससे द्वारा सभी आवश्यक विषयों की शिक्षा प्राप्त कर सके, जिससे उसका पूर्ण विकास हो सके। महात्मा गाँधी का तो यह मत है कि भारतवर्ष जैसे निर्धन देश में करोड़ों व्यक्तियों का, शिक्षा व्यय इतना अधिक हाँगा कि राष्ट्रीय सरकार भी उतना व्यय करने में असमर्थ होगी। अस्तु शिक्षा-पद्धति ऐसी होनी चाहिये कि उसका खर्चा भी निकल सके। इसीलिये उन्होंने धन्धे के द्वारा शिक्षा देने पर जोर दिया है। उनका कहना है कि विद्यार्थी जो वस्तुएँ पढ़ते समय तैयार करेंगे, उनको बेच कर बहुत कुछ शिक्षा का व्यय पूरा किया जा सकता है। अभी तक महात्मा गाँधी की इस योजनाको, देश के शिक्षा-शास्त्रियों ने स्वीकार नहीं किया है। वर्धा योजना में केवल ७ वर्ष से १४ वर्ष तक के बालकों की शिक्षा का प्रबन्ध किया गया है।

पढ़ना लिखना, सीखना जरूरी है ही, परन्तु हमको गाँवों में उस प्रकार की शिक्षा का प्रचार करना है कि जो गाँव वालों की मनोवृत्ति को बदल सके। आज गाँवों में जिस प्रकार की सामाजिक और धार्मिक कुरीतियाँ फैली हैं, वे दूर हो सकें। शिक्षा ऐसी होनी चाहिये कि उनका सामाजिक और धार्मिक दृष्टिकोण उदार बने, उनमें अपने पैरों पर खड़े होने की भावना पैदा हो, उनमें देश के प्रति प्रेम पैदा हो और वे श्रम के महत्व (Dignity of Labour) को गमन कर सकें।

अशिक्षा के कारण जो आज बहुत से कुसंस्कार गाँव वालों में पाये जाते हैं, उनमें आपस में जो द्वेष और लड़ाई भगड़ा देखने को मिलता है और

आपस के सहयोग की भावना का आज जो नितान्त अभाव है, हम उसका अन्त करना चाहते हैं और गाँववालों के जीवन को सुखी और सम्पन्न बनाना चाहते हैं। हमारी शिक्षा का ध्येय होगा, गाँव वालों को एक अच्छा नागरिक (Citizen) बनाना और जीविकोपार्जन के लिये उन्हें पूर्ण तरह से योग्य और उपयुक्त बनाना। दूसरे शब्दों में उनकी शिक्षा ऐसी होनी चाहिये कि वे अपने शिक्षाकाल में कोई न कोई ऐसा उपयोगी कार्य सीखें कि जिसके द्वारा वे अपने परिवार का पालन पोषण कर सकें। इस प्रकार की शिक्षा वही हो सकती है, जो एक लक्ष्य को सामने रख कर दी जावे।

अभ्यास के प्रश्न *

१—गाँव वाले जो यह कहते सुने जाते हैं कि “लड़कों को पढ़ाने से वे खेती के काम के नहीं रहते” इसका कारण क्या है ?

२—शहरों जैसी शिक्षा गाँवों के लड़कों को देने का क्या परिणाम हुआ है ?

३—गाँव की पाठशालाओं का पाठ्यक्रम कैसा, होना चाहिये ?

४—बालचर किसे कहते हैं ? बालचर द्रूप की व्यवस्था गाँव की पाठशाला में करने से क्या लाभ होगा ?

५—गाँवों की पाठशालाओं में, खेती और गाँव के उद्योग-धन्धों के सम्बन्ध में क्या शिक्षा देनी चाहिये ?

६—गाँव की उन्नति के लिये, लड़कियों को पढ़ाना क्यों जरूरी है ?

७—गाँव की लड़कियों की शिक्षा किस प्रकार की होनी चाहिये ?

८—गाँव वालों को शिक्षित बनाने के लिये, ग्राम वाचनालय और पुस्तकालय क्यों जरूरी हैं ? गाँवों में किस तरह के पुस्तकालय खोले जाने चाहिए।

९—गाँव की पाठशाला किस प्रकार गाँव का सुधार करने में सहायक हो सकती है ?

१०—गाँव के लिये कैसे शिक्षक चाहिये ?

उन्नीसवाँ अध्याय

मनोरंजन के साधन (Means of Recreation)

मनुष्य के जीवन को सुखमय बनाने के लिये, उसकी कार्य-क्षमता को बढ़ाने के लिये, उसके स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिये मनोरंजन अत्यन्त आवश्यक है। दिन भर काम करने के उपरान्त मनुष्य का शरीर तथा मस्तिष्क थक जाता है। उस समय थोड़ा सा मनोरंजन उसमें नवीन स्फूर्ति उत्पन्न कर देता है। यदि मनुष्य सर्वदा कार्य करता रहे, विश्राम करने के अतिरिक्त उसके पास मनोरंजन का कोई साधन न हो, तो उसका जीवन नीरस हो जावेगा और उसकी कार्य क्षमता घट जावेगी। यह स्वाभाविक है कि मनुष्य प्रतिदिन एक ही प्रकार का जीवन व्यतीत करते करते ऊब जाना है। उदाहरण के लिये यदि कोई व्यक्ति मस्तिष्क का ही कार्य करता है और अधिकतर बैठा ही रहता है तो उसको कभी कभी पैदल चलने की इच्छा होती है और खेल तथा संगीत से उसे सुख मिलता है। जीवन में थोड़ा सा परिवर्तन हर एक को सुखद प्रतीत होता है। इसी कारण मनुष्य-समाज ने भिन्न-भिन्न प्रकार के मनोरंजन ढूँढ़ निकाले हैं, जिनसे दैनिक-कार्य की नीरसता नष्ट होती है और जीवन अधिक सुखमय और सरस बनता है। मनोरंजन की आवश्यकता वृद्ध, प्रौढ़, और बालकों, सभी को होती है। हाँ, बालकों को खेलकूद की अधिक रुचि होती है, और वह स्वाभाविक भी है।

आज भारतवर्ष के ग्रामों की ऐसी शोचनीय दशा हो रही है कि गाँव वालों को मनोरंजन के साधन भी उपलब्ध नहीं हैं। गाँव वालों का जीवन अत्यन्त नीरस बना हुआ है। यही कारण है कि जो युवक थोड़ी सी भी शिक्षा पा जाता है, वह गाँव में रहना नहीं चाहता। गाँव में खेल तथा मनोरंजन के साधनों का इतना अभाव है कि यदि दो बैल या कुत्ते आपस में लड़ते हैं, तो उस लड़ाई को देखने के लिये ही भीड़ इकट्ठी हो जाती है। गाँव बहुत ही सुनसान और निर्जन स्थान होता है। यही कारण है कि किसान उदास मनोवृत्ति वाला होता है और उसकी बुद्धि का विकास

नहीं होता, क्योंकि उसको कोई बात देखने, सुनने, तथा उसपर विचार करने के लिये नहीं मिलती ।

ग्रामीणों की बुद्धि का विकास तथा उनकी निराश मनोवृत्ति का नाश सभी हो सकता है जब कि वे कभी कभी खेल खेलें, तमाशे, प्रदर्शनियां तथा मेले देखें और उन्हें, संसार में क्या हो रहा है, इसके समाचार प्रतिदिन मिलते रहें । यही नहीं, सायंकाल को जब वह काम से थक कर घर पर आवें तो उनके लिये थोड़े से मनोरञ्जन की भी आवश्यकता है, जिससे कि उनका मस्तिष्क और शरीर ताजा हो जावे । प्रौढ़ों के अतिरिक्त गांव के लड़कों के लिये तो खेल की और भी अधिक आवश्यकता है कि जिससे उनमें अनुशासन (Discipline), साहस, कुर्तियाँ तथा सामूहिक भावना का उदय हो ।

गाँवों के खेल (Village games)

आवश्यकता इस बात की है कि प्रत्येक गांव में खेत के लिये एक मैदान तैयार किया जावे और ऐसे खेलों का प्रचार किया जावे कि जो कम खर्चीले हो, जिनमें अधिक लोग भाग ले सकें और जिनके द्वारा खेलने वालों में सामूहिक संगठन तथा अनुशासन का भाव उदय हो । इस दृष्टि से फुटबाल और कबड्डी उपयोगी हैं । अन्य हिन्दुस्तानी खेल जो भिन्न भिन्न प्रान्तों में प्रचलित हैं, उनका भी गाँवों में प्रचार किया जावे ।

हिन्दुस्तानी खेल

हमारे देश में भिन्न भिन्न प्रान्तों में बहुत तरह के खेल प्रचलित हैं जैसे नमक-चोर, रामडंडा इत्यादि । इन सब खेलों को इकट्ठा करके उनके, नियम इत्यादि बनाकर पुस्तकें प्रकाशित कराई जावें और उन खेलों का गाँवों में प्रचार किया जावे । साथ ही नये खेल प्रचलित किये जावें जैसे वाजीबाल, बासकैटबाल इत्यादि ।

जरूरत इस बात की है कि एक 'ग्रामीण खेल बोर्ड' स्थापित किया जावे, जिस प्रकार से अखिल भारतीय फुटबाल, क्रिकेट तथा हाकी और टेनिस के लिये बोर्ड स्थापित हैं । "ग्रामीण खेल बोर्ड" हिन्दुस्तानी खेलों का प्रचार गाँवों में करने और उनके देखभाल इत्यादि का काम करे । खेल

ऐसे हों जो अधिक खर्चीले न हों, जिसे अधिक व्यक्ति खेल सकें और जिससे संगठन, सामूहिक भावना, शारीरिक विकास, स्फूर्ति, साहस, तथा अनुशासन (Discipline) का उदय हो।

गाँव का स्काउट ट्रूप (Scout Troop)

गाँव में बालचर आन्दोलन का अवश्य प्रवेश होना चाहिये। इससे गाँवों को बहुत लाभ होगा। गाँव के युवकों में संगठन उत्पन्न होगा। मिलजुल कर कार्य करने की आदत पड़ेगी और गाँव में जो बहुत सी बुद्धिमान हैं, इनके दूर करने में इन शिक्षित ट्रूड बालचरों से बहुत सहायता मिल सकती है। गाँव में भ्रातृभाव भी इस आन्दोलन के द्वारा उत्पन्न हो सकता है। गाँव की सफाई, सड़कों को ठीक रखना, फसल के कीड़ों को नष्ट करना, तथा गाँव में मनोरंजन के साधन उपलब्ध करने में बालचर बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। गाँव को तो लाभ होगा ही, बालचरों को इसी आन्दोलन के द्वारा स्वयं एक मनोरंजन का साधन प्राप्त हो जावेगा, और उनका शारीरिक, मानसिक तथा चरित्र विषयक विकास होगा।

भजन तथा भजन मंडलियाँ

गाँव के लोग भजन बहुत पसन्द करते हैं। यदि प्रत्येक प्रान्त में ऐसे भजनों का संग्रह किया जावे कि जो ग्रामीण जीवन का दिग्दर्शन कराते हैं, अथवा जिनमें गाँवों की प्रचलित कुरीतियों का विवरण है, और जो सरल भाषा में लिखे गये हों, तो बहुत अच्छा हो। आवश्यकता पड़ने पर ऐसे भजन योग्य व्यक्तियों से लिखवाये जावें और उनको प्रकाशित कराकर उनका गाँवों में प्रचार कराया जावे। गाँव की पाठशाला के विद्यार्थियों, बालचरों, स्त्रियों और प्रौढ़ों की भजन-मंडलियाँ बनाई जावें जो उन्हीं भजनों को उत्सव, त्यौहार तथा अन्य अधिवेशनों के समय पर गाथा करें। भजनों के प्रचार से दो लाभ होंगे। एक तो प्रचलित कुरीतियों के विरुद्ध वातावरण बनेगा, दूसरे मनोरंजन भी होगा।

नाटक तथा ग्रहसन (Village drama)

ग्राम-सुधार का कार्य करने वाले गाँव की पाठशाला के अध्यापक की सहायता से प्रत्येक गाँव में यदि मनोरंजन तथा खेलकूद का प्रबन्ध

करने वाली सभा बनावें, जिसमें गांव के प्रमुख लोग रहें, तो इस दिशा में बहुत कुछ हो सकता है। योग्य लेखकों से प्रत्येक प्रान्तीय भाषा में गांव की प्रति दिन की समस्याओं से सम्बन्ध रखने वाले नाटक और प्रहसन लिखवाए जावें और गांव के युवकों की सहायता से होली, दिवाली, राम-लीला, ईद, बड़ा दिन इत्यादि त्योहारों तथा अन्य उत्सवों पर वर्ष में तीन चार बार चांदनो रात्रि में, स्कूल अथवा किसी चौपाल पर दिखलाए जाँ तो गांवों में मुहूर्च्छिपूर्ण मनोरंजन का एक अच्छा साधन उपलब्ध हो सकता है।

रेडियो (Radio)

रेडियो, ससार को विज्ञान की अत्यन्त उपयोगी देन है। मनोरंजन, और शिक्षा-प्रचार के लिए रेडियो से अच्छा और कोई दूसरा साधन नहीं है। यदि प्रत्येक गांव में अथवा समीपवर्ती दो तीन गांवों में एक रेडियो सेट लगा दिया जावे और प्रत्येक प्रान्त में प्रान्तीय ब्राडकास्टिंग स्टेशन स्थापित कर दिए जावें तो ग्रामीणों के लिए प्रत्येक दिन प्रोग्राम रक्खा जा सकता है। सायंकाल गांव के लोग इकट्ठे होकर बीमारियों को दूर करने, पशुओं के पालन, गल्ले का भाव, खेती के नवीन तरीकों और गांव की समस्याओं पर विशेषज्ञों द्वारा बताई हुई बातों से अपना मन बहला सकते हैं और जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। यदि रेडियो का ठीक ठोक उपयोग किया जावे तो अशिक्षित ग्रामीणों को संसार में क्या हो रहा है, उनके देश में क्या हो रहा है, गांव की समस्याओं को कैसे हल किया जा सकता है, इत्यादि विषयों का पूरा ज्ञान कराया जा सकता है। प्रान्तीय सरकार रेडियो सेट का व्यय दे और गांव के लोग उसके रखने का व्यय सहन करें तो यह योजना सफल हो सकती है। डिस्ट्रिक्टबोर्ड भी इसमें सहायता दे सकते हैं।

मैजिक लैन्टर्न तथा सिनेमा-शो

(Magic Lantern and Cinema Show)

प्रत्येक सरकारी विभाग, जिसका सम्बन्ध गांव से है अपने विभाग से सम्बन्ध रखने वाली समस्याओं के चित्र बनवावे और लैन्टर्न के द्वारा उनका समय समय पर प्रदर्शन कराया जावे। उदाहरण के लिए स्वास्थ्य विभाग,

कृषि विभाग, उद्योग विभाग, सहकारिता-विभाग, शिक्षा विभाग तथा पशु-चिकित्सा विभाग अपने अपने विषय के चित्र तैयार करावें और उनका प्रदर्शन हो। मेलों और उत्सवों के अवसर पर इनका प्रदर्शन विशेष रूप से किया जावे।

ऐसी सिनेमा फिल्म तैयार करना इस समय कठिन दिखलाई देता है जो कि गाँव वालों के लिए उपयोगी हो, क्योंकि बोलती हुई फिल्म बहुत खर्चीली होती हैं। साथ ही ग्राम्य जीवन को भली प्रकार चित्रित कर सकने वाले लेखक और उसका प्रदर्शन कर सकने वाले एक्टर्स भी कम हैं। परन्तु प्रत्येक प्रान्त में वहाँ की बोलचाल की भाषा में ग्राम्य उपयोगी फिल्म बनवाने का प्रान्तीय सरकार को अवश्य प्रयत्न करना चाहिए। फिल्म के साथ अच्छे हल, बैल, बीज, बीमारियों, इत्यादि के सम्बन्ध के चित्र भी रहें। घूमने वाला सिनेमा, इन फिल्मों को प्रान्त के गाँवों में दिखावे और उसके साथ ही प्रचार कार्य भी करे तो गाँवों में मनोरंजन का एक अत्यन्त उत्तम साधन उपलब्ध हो सकता है। परन्तु फिल्म तैयार करवाने में बड़ी सावधानी करनी होगी। नहीं तो उसका बुरा प्रभाव भी पड़ सकता है। यह कार्य व्यवसायिक कपनियों पर न छोड़ कर सरकार को स्वयं करना चाहिए।

इस प्रकार जब गाँवों में सुखचिपूर्ण मनोरंजन के साधन उपलब्ध किए जावेंगे तथा खेल का प्रबन्ध किया जावेगा तभी ग्रामीण जनता का जीवन सरस बन सकेगा और ग्रामों में आकर्षण उत्पन्न हो सकेगा।

ग्राम-सेवादल (Village Service Troop)

खेलों के सिवाय लड़कों और युवकों को मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य प्रदान करने के लिए, उनमें सेवा की भावना उत्पन्न करने के लिए ग्राम-सेवादल की बड़ी आवश्यकता है। हर एक गाँव में एक ग्राम-सेवादल बनाया जावे। ग्राम-सेवादल में गाँव के थड़े लड़के तथा युवक भर्ती किये जावें, उन्हें सेवा का महत्व समझाया जावे जिससे कि गाँव का हर एक युवक ग्राम सेवा को अपने लिए गौरव समझे। ग्राम-सेवादल नीचे लिखे काम करे :—होली, दिवाली, दशहरा इत्यादि त्योहारों पर गाँव की सफाई करने

में सहायता देना, टिड्डी तथा अन्य फसलों के शत्रुओं (कीड़ों) को मारने में गाँव वालों की सहायता करना, विशेष अवसरों पर नाटक, प्रहसन, तथा अन्य खेल-तमाशों का आयोजन करके गाँव वालों का मनोरंजन करना, गाँव के रास्तों को ठीक करना और गाँव में फलों के वृक्ष लगाना। गाँव में फलों के वृक्ष तो हर एक आदमी को लगाना चाहिए। इससे दो लाभ होंगे, एक तो गाँव की सुन्दरता बढ़ेगी, दूसरे फल खाने को मिलेंगे। गाँव के रास्ते ठीक करने और पास के गड़हों को भरने में भी ग्राम-सेवादल गाँव वालों की सहायता कर सकता है।

घरों को अधिक आकर्षक बनाना

जिस प्रकार हमारे गाँवों में कोई आकर्षण नहीं है, उसी तरह गाँवों के रहने वालों के घरों में भी कोई आकर्षण नहीं रह गया है। जब कभी थका हुआ किसान खेतों पर से आता है तो घर में उसके लिए ऐसा कोई आकर्षण नहीं होता कि जिससे उसका मन बहले। खाली समय में वह चिलम लेकर किसी चौपाल पर गप्प उड़ाता है। एक दूसरे की बुराई करना, दूसरों के घरों की आलोचना करना, यही ग्रामीणों का काम रह गया है। इसका फल यह होता है कि एक दूसरे के प्रति ईर्ष्या, द्वेष और जलन के भाव उत्पन्न होते हैं। पटवारी, मुखिया तथा अन्य व्यक्ति जिनका मुकदमेबाजी तथा लड़ाई-झगड़े से लाभ होता है, इसका लाभ उठाते हैं। यह तभी बंद हो सकता है जब घरों को आकर्षक बनाया जावे।

घरों को आकर्षक बनाने के लिये वाटिका आन्दोलन अत्यन्त आवश्यक है। फूलों की ब्यारियों में उत्पन्न होने वाले फूल और तरकारी उसके लिये एक आकर्षण की वस्तु होगी। फूलों से घरों को आकर्षक बनाया जा सकता है। लेकिन जहाँ उसके लिये हमें पुष्पवाटिका आन्दोलन चलाना होगा, वहाँ गृह-स्वामिनी को भी घरों को अधिक सुन्दर बनाने की शिक्षा देनी होगी। अभी तक ग्राम-सुधार कार्यकर्त्ताओं ने गृह-स्वामिनी की ओर ध्यान ही नहीं दिया है। जब तक गाँवों की स्त्रियाँ ग्रामीण जीवन को मधुर और घरों को अधिक आकर्षक बनाने का काम अपने हाथ में नहीं ले लेतीं, तब तक स्थिति ऐसी ही रहेगी।

यह तो स्वास्थ्य और सफाई के परिच्छेद में ही लिखा जा चुका है कि

गृह-वाटिका से दो लाभ होंगे; एक तो उससे फूल और तरकारी मिलेगी, दूसरे, घर के काम में लाया हुआ पानी जो नाली न होने के कारण सड़ता रहता है और गंदगी उत्पन्न करता है, उसका उपयोग हो सकेगा। घर के काम में आने वाले पानी की समस्या का तो पानी सोखने वाले गड्ढों के द्वारा भी हल किया जा सकता है। सड़ने वाले पानी की समस्या को यदि इन गड्ढों (सोकेट पिट) से भी हल किया जावे तो भी गृह-वाटिका तो हर एक घर में होनी ही चाहिये। प्रकृति ने फूल जैसी सुन्दर चीज़ उत्पन्न की है, गाँवों में वह आगामी से उत्पन्न हो सकती है, लेकिन हम उसके आनन्द से वञ्चित हैं।

इस सम्बन्ध में एक बात और ध्यान देने योग्य है। गाँवों के कुओं के पास इतना अधिक पानी गिरता है कि दलदल बन जाता है। इस गंदगी को भी दूर करने का सहज उपाय यह है कि वहाँ एक छोटी सी वाटिका लगा दी जावे, उससे गंदगी ताँ, दूर होगी ही गाँव भी आकर्षक बन जावेगा।

अभ्यास के प्रश्न

- १--हमें मनोरंजन और खेल कूद की आवश्यकता क्यों होती है ?
- २--मनोरंजन और खेल कूद से मनुष्य के ऊपर कैसा प्रभाव पड़ता है ?
- ३--गाँवों के लिये कैसे खेल उपयुक्त होंगे ?
- ४--रेडियो के द्वारा गाँवों में मनोरंजन और शिक्षा के कार्य में कहाँ तक सहायता मिल सकती है ?

५--मनोरंजन के साधनों का उपयोग ग्राम-सुधार सम्बन्धी प्रचार कार्य में किस प्रकार किया जा सकता है ?

बीसवाँ अध्याय

स्वास्थ्यरक्षा के सिद्धान्तों का प्रचार

स्वास्थ्यधारण का यह विचार है कि गाँव स्वास्थ्यप्रद स्थान होते हैं और वहाँ रोग इत्यादि का प्रकोप कम होता है। किन्तु यह धारणा आन्तिमूलक है। भारतीय ग्रामों में रोगों ने स्थायी रूप से अड्डा जमा रक्खा

है। प्रति वर्ष लाखों की संख्या में ग्रामीण इन रोगों के शिकार होते हैं। वर्तमान काल में भारतवासियों की औसत आयु लगभग तेईस वर्ष है जबकि, अन्य देशों में चालीस वर्ष या इससे अधिक है। इसी प्रकार यहाँ फी-हज़ार आदमियों में से कोई तीस आदमी प्रति वर्ष मर जाते हैं, जब कि संसार के कितने ही देशों में हज़ार पीछे केवल दस या ग्यारह ही मरते हैं। इससे स्पष्ट है कि यहाँ स्वास्थ्य सुधार की ओर यथेष्ट ध्यान देने की कितनी आवश्यकता है !

इस सम्बन्ध में आल इंडिया-मैडिकल-रिसर्च-वर्कर्स (All India Medical Research Workers) कानफ़्रेंस ने जो प्रस्ताव पास किया है वह ध्यान देने योग्य है। उस प्रस्ताव का आशय निम्नलिखित है—
“इस सम्मेलन का विश्वास है कि रोके जा सकने वाले रोगों से भारतवर्ष में प्रतिवर्ष पचास या साठ लाख मृत्युएं होती हैं और भारतवर्ष का प्रत्येक व्यक्ति ऐसे रोगों से जिनको रोका जा सकता है, वर्ष में दो सप्ताह से लेकर तीन सप्ताह तक काम करने से बेकार हो जाता है। यही नहीं, सम्मेलन का यह भी विश्वास है कि प्रत्येक व्यक्ति की कार्य क्षमता इन रोगों से बीस फी सदी घट जाती है। सम्मेलन का अनुमान है कि यदि इन रोगों के द्वारा होने वाली आर्थिक हानि का हिसाब लगाया जावे तो वह अरबों रुपये प्रति-वर्ष होगी।”

स्वास्थ्य-रक्षा के लिये निम्नलिखित बातों की आवश्यकता है। (१)-सफाई, हवा और रोशनी, (२) शुद्ध और पौष्टिक भोजन, (३) परिश्रम अथवा व्यायाम, (४) विश्राम, (५) रोगों से बचने के उपायों की जानकारी, (६) चिकित्सा का उचित प्रबन्ध। अब हमें यह देखना है कि भारतीय ग्रामों में ऊपर लिखे स्वास्थ्य-रक्षा के साधन कहाँ तक उपलब्ध हैं।

सफाई, हवा और रोशनी

सफाई, स्वास्थ्य के लिये नितान्त आवश्यक है। यही नहीं, सफाई मनुष्य को आत्मसम्मान, संयम, अनुशासन और मिलजुल कर रहना सिखाती है। सफाई से शारीरिक उन्नति तो होती ही है, मानसिक विकास भी होता है। अतएव ग्राम-सुधार में सफाई का सर्वोच्च स्थान है। केवल शारीरिक सफाई

हो यथेष्ट नहीं समझी जानी चाहिये। कपड़ों, घर, पीने का पानी, गली गाँव और खेतों, सभी की सफाई आवश्यक है। गाँवों में सफाई और रोशनी का अभाव है। यह हम “गाँव की सफाई” नामक परिच्छेद में लिख चुके हैं। परन्तु गाँव वालों को अपने शरीर की सफाई के सम्बन्ध में अधिक सतर्क रहने के लिये, उन्हें इसकी शिक्षा देनी होगी। नियमित रूप से शुद्ध कुएँ अथवा नदी के जल में प्रतिदिन स्नान करने, कभी कभी अपने पहिनने के कपड़ों को साफ करने, दाँतों को प्रतिदिन साफ करने, और आँखों को शुद्ध जल से धोने का महत्व उन्हें समझाना होगा, और ऊपर लिखी स्वास्थ्य प्रदान करने वाली आदतें डलवानी होंगी। अभी साधारण किसान इस ओर बहुत ही उदासीन है और इनका महत्व ही नहीं समझता।

इस शारीरिक सफाई की ओर ध्यान न देने के कारण गाँवों में बच्चे स्त्रियाँ और पुरुष अनेक रोगों से पीड़ित रहते हैं। फोड़े फुन्सी, आँख और दाँत के रोगों का तो सीधा कारण सफाई न करना है। इनमें आँखों का रोग तो गाँवों में सर्व-प्रचलित है। गाँव के बच्चों की आँखें देखिये, वे अधिकतर मैली मिलेंगी। आँखों के इन रोगों के कारण बच्चों की आँखें खराब हो जाती हैं। भारतवर्ष में प्रति हजार अंधों और खराब आँखों वाले स्त्री-पुरुषों की संख्या बहुत अधिक है। अधिकांश में बचपन में ही आँखें खराब हो जाती हैं और आँखें खराब होने का ६० फी सदी कारण गाँव में गन्दगी या असावधानी होती है।

गन्दी और सड़ी हुई वस्तुओं के विषैले कण हवा से उड़कर गाँव वालों की आँखों में पड़ते हैं। बच्चे गन्दगी के ढेरों के पास खेलते हैं। गन्दे गाँवों में मक्खियाँ बहुत होती हैं और बच्चों की आँखों पर बैठ कर उन्हें गन्दा कर देती हैं। विशेष बीमार आँख या गन्दी आँख पर मक्खियाँ और भी अधिक बैठती हैं। जब किसी बच्चे, स्त्री अथवा पुरुष की आँख रोगी होती है तो वे गन्दे हाथों से उसे छूते या मलते हैं। इसका फल यह होता है कि आँख स्थायी रूप से खराब हो जाती है। आँख की बीमारी घर में तथा क्रमशः गाँव में फैलती है। यदि ध्यान से देखा जावे तो प्रत्येक गाँव में ऐसे लोग यथेष्ट संख्या में मिलेंगे जिनकी आँखें स्थायी रूप से खराब हो गई हैं।

इसका केवल एक ही उपाय है, सफाई। गाँव की सफाई, चेहरे और आँखों की सफाई, कपड़ों की सफाई और शरीर की सफाई ही इस रोग को दूर कर सकती है। जितनी बार भी हो सके, दिन में उतनी बार आँख साफ की जानी चाहिये, तभी वे रोग मुक्त हो सकती हैं।

शुद्ध और पौष्टिक भोजन

स्वास्थ्य-रक्षा के लिये शुद्ध और पौष्टिक भोजन भी अत्यन्त आवश्यक है। किन्तु अधिकांश गाँव वालों को पौष्टिक भोजन तो दूर रहा, भर पेट भोजन भी नहीं मिलता। जब तक कि किसान को पूरे पेट भोजन नहीं मिलता, तब तक उसके स्वास्थ्य की उन्नति की आशा करना स्वप्न के तुल्य है। किसान के पास भर पेट अन्न तभी बच सकेगा जब कि लगान कुलुर्कम किया जावे, उसके ऋण के बोझ को हल्का किया जावे, और किसान वैज्ञानिक ढंग से खेती करके भूमि से अधिक पैदावार उत्पन्न करे। पौष्टिक भोजन की प्राप्ति के लिए किसानों को अपने घरों और खेतों पर अधिक फल और तरकारी उत्पन्न करना, गाय और भैंस पालना चाहिये। शहद की मक्खियों को पालतू बना कर उनसे नियमित रूप से शहद तैयार करवाना और जिन्हें धार्मिक अड़चन न हो, उनको मुर्गी पालना चाहिये। किन्तु केवल इतना करने से ही पौष्टिक भोजन की समस्या हल नहीं हो जावेगी। किसानों की स्त्रियों को पाकशास्त्र का ज्ञान होना चाहिये। यह तभी हो सकता है जब कि गाँव की लड़कियों को शिक्षा दी जावे। किसान की स्त्री अपने घर, रसाई और बरतनों को बहुत साफ रखती है, यदि वे यह और जान जावे कि मक्खियाँ, चूहे तथा अन्य कीड़े-मकोड़े मनुष्य को क्या हानि पहुँचाते हैं और जल किस प्रकार दूषित होता है और उसके पीने से कैसे कैसे भयंकर रोग उत्पन्न हो सकते हैं, तो गाँव बहुत से रोगों से बच जावे।

परिश्रम अथवा व्यायाम

गाँव वालों को व्यायाम करने की विशेष आवश्यकता नहीं है, खेती में ही उन्हें यथेष्ट परिश्रम करना पड़ता है। हाँ, अबकाश के समय खेलने से स्वास्थ्य भी बनता है और मनोरंजन भी होता है।

विश्राम

स्वास्थ्य के लिये विश्राम और मनोरंजन की भी आवश्यकता है। यदि

किसान अपनी दिनचर्या को ठीक बनाले तो उसे विश्राम भी मिल सकता है ।

रोग और उनसे बचने के उपायों की जानकारी

क्षय, प्लेग, हैज़ा, चेचक, तथा मोतीभरा (Typhoid), मलेरिया कालाजार तथा हुकवर्म गाँवों के भयंकर रोग हैं । इनके कारण प्रतिवर्ष लाखों की संख्या में मृत्यु होती हैं । इन रोगों का मुख्य कारण गाँव का गंदा होना और गाँव वालों की लापरवाही है ।

गाँव की सब प्रकार से, जैसा कि सफाई के अध्याय में लिखा है, सफाई रखना चाहिये । इतना करने पर इन रोगों का डर कम हो जावेगा । प्रति छः साल बाद चेचक का टीका लगवाने से (यदि चेचक का प्रकोप हो तो उस समय भी टीका लगवाने से) और हवा, रोशनी तथा सफाई का प्रबन्ध रखने से चेचक का भय जाता रहेगा । प्लेग (Plague) वस्तुतः चूहों का रोग है, अतएव उससे बचने का मुख्य उपाय चूहों को दूर करना है । चूहे रोशनी से घृणा करते हैं, अतएव घरों में रोशनी का पूरा प्रबन्ध करना चाहिये । साथ ही उनके बिलों को बन्द करके, बिल्ली चूहेदानी, तथा जहर का उपयोग करके उनको नष्ट किया जा सकता है । सन्दूक तथा अनाज भरने की चीजों को तनिक ऊँचे पर रखना चाहिये जिससे कि चूहे उसके नीचे अपने रहने का स्थान न बना लें । जब प्लेग का प्रकोप हो तो हर एक को प्लेग का टीका लगवाना और गाँव को छोड़ देना आवश्यक है । हैज़ा (Cholera) पानी के खराब हो जाने से तथा खराब पानी पीने से होता है । अतएव पीने के पानी को शुद्ध रखना, कुओं की समय समय पर सफाई करवाना, और उसमें लाल दवा डालना, भोजन को शुद्ध रखना तथा सफाई रखना ही, उसको रोकने के मुख्य उपाय हैं ।

हुकवर्म (Hook-Worm) रोग गाँव वालों के मैदान में शौच जाने से उत्पन्न होता है, अतएव शौचस्थान का प्रबन्ध उसका मुख्य उपाय है । यदि शौचस्थान का प्रबन्ध न हो सके तो गाँव वालों में पुरानी पद्धति अर्थात् मल को एक फुट गड़हे में दाब देने का प्रचार करना चाहिए । गिनी-वर्म (Guinea-worm) नामक रोग दूषित जल के पीने से होता है, अतएव शुद्ध जल पीने से इसका भय दूर हो सकता है ।

गाँव में मलेरिया (Malaria) का बहुत प्रकोप होता है और प्रति वर्ष, वर्षा के उपरान्त गाँव वाले ज्वर से एक सप्ताह से लेकर दो सप्ताह तक पीड़ित रहते हैं। मलेरिया यद्यपि घातक रोग नहीं है परन्तु वह मनुष्य की कार्यक्षमता को नष्ट कर देता है। बंगाल के कुछ भागों में तो मलेरिया का ऐसा भीषण प्रकोप होता है कि गाँव के प्रायः सब लोग मलेरिया ज्वर से पीड़ित हो जाते हैं। खेती काटने के लिए आदमी नहीं मिलते। संयुक्त-प्रान्त में भी मलेरिया के कारण खेती को बहुत हानि पहुँचती है। मलेरिया की समस्या तनिक कठिन है। मलेरिया एक प्रकार के मच्छरों द्वारा उत्पन्न होता है, अतएव गाँव के आस-पास चारों ओर जितने गड्ढे, खड्ड तथा नाले इत्यादि हों, उन्हें गाँव की पंचायत पटवा दे। जो पाटे नहीं जा सकते, उनमें वर्षा के उपरान्त समय समय पर मिट्टी का तेल छुड़वा दिया जावे। यदि कोई तालाब तथा पोखरा ऐसा हो कि जिनका पानी पशुओं के पीने के काम आता हो और उसमें मिट्टी का तेल छुड़वाना उचित न समझा जावे, तो उसके चारों ओर बहुत सफाई रखी जावे। तालाब के किनारे किनारे घास, पौधे, कूड़ा-कचरा जो भी हो उसको साफ कर दिया जावे। भविष्य में गाँव वालों को तालाब के समीप शौच जाने तथा उसमें कूड़ा डालने की मनाही करदी जावे। इतना करने पर मच्छरों का उत्पन्न होना बन्द हो जावेगा और मलेरिया का प्रकोप बहुत कम हो जावेगा। कुनीन और ऐसी आयुर्वेदिक दवाइयों का जोकि मलेरिया को रोक सकें, गाँव में खूब प्रचार करना चाहिए। दवाइयाँ, सरकार लागत मूल्य पर किसानों को बेंचे और जो बहुत निर्धन हैं उन्हें मुफ्त दे।

इन बीमारियों के अतिरिक्त गाँवों में गंदी अशिक्षित दाइयों और बच्चा उत्पन्न होने के समय व्यवहार में लाई जाने वाली गंदी और हानिकार रसों के कारण असंख्य बच्चों तथा माताओं का जीवन नष्ट हो जाता है। अधिकतर कोई नीच जाति की गंदी, बूढ़ा स्त्री, जिसको ठीक ठीक दिखलाई भी नहीं पड़ता और जिसके बच्चों तथा नाखून में गंदगी का विष भरा हुआ है, वह बच्चा उत्पन्न कराने का काम करती है। फिर माता को सबसे गंदी, अँधेरी-कोठरी, जिसमें हवा की गुंजाइश ही नहीं हो सकती, जन्माखाने के लिए दी जाती है। यही नहीं घर के सबसे अधिक गंदे कपड़े और खाट उसकी

मिलती है। ऐसी दशा में यदि प्रसव-काल में बहुत सी मातायें अथवा नव-जात बच्चे मर जाते हैं अथवा उनके शरीर में कोई स्थाई खराबी आजाती है, तो आश्चर्य की बात ही क्या है ?

इस समस्या को हल करने का यही एक उपाय है कि गाँव की ऐसी दाइयों को जो कि ठीक समझी जावें दाई का काम सिखाया जावे और केवल ट्रेंड दाइयों को ही प्रभव करने के लिए तालिम दिया जावे। दाइयों के अतिरिक्त यदि गाँवों की अन्य स्त्रियाँ ट्रेनिंग लेना चाहें तो उन्हें, भी शिक्षा दी जावे। इनके साथ साथ प्रचलित गदी रस्मों के विरुद्ध प्रचार किया जावे और गाँव वालों को समझाया जावे कि उनसे उनकी कितनी हानि होती है। ट्रेंड दाइयों को पंचायत, जिला बोर्ड की सहायता से नौकर रख सकती है। ये ट्रेंड दाइयाँ ग्रामीण माताओं को बच्चों के लालन-पालन के सम्बन्ध में भी उचित परामर्श देगी।

क्षयरोग या तपेदिक (Tuberculosis)

दुर्भाग्य से पिछले कुछ वर्षों से भारत में क्षयरोग तेज़ी से फैल रहा है और अब यह रोग गाँव में भी पहुँच गया है। यह अत्यन्त भयंकर छूत का रोग है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि भारत में केवल इस रोग से ही प्रति वर्ष १५ लाख मनुष्य मर जाते हैं।

सूखी खाँसी आना, सायंकाल ज्वर सा हो जाना, काम करने में जल्दी थक जाना, नींद न आना, किसी भी काम में जी न लगना, पेट भारी रहना, इसके प्रारम्भिक लक्षण हैं। धीरे धीरे ज्वर रोग बढ़ने लगता है, तब खाँसी बढ़ती है, शक्ति घटने के साथ शरीर का वज़न भी घटने लगता है। सायंकाल ज्वर आ जाता है, कफ के साथ खून भी गिरने लगता है। अन्त में आदमी बिल्कुल निकम्मा होकर मर जाता है।

यह बीमारी परम्परागत होती है। यदि बाप को हुई है तो लड़के को भी हो सकती है। इसके कीड़े बहुत छोटे होते हैं। एक इंच में २५०० कीड़े स्थान पा सकते हैं। यह बीमारी एक के बाद दूसरे को लगती भी बहुत जल्दी है, यहाँ तक कि इस मर्ज के रोगी के थूक से भी हज़ारों कीड़े पैदा होते हैं। कुटुम्बियों के साथ यह बीमारी प्रेम रखती है। जिस घर में यह एक बार पहुँच जाती है, फिर उस घर से उसका निकलना यदि असम्भव नहीं तो

कठिन अवश्य हो जाता है। यदि यह बीमारी किसी स्त्री को हो गई तो उसके पति और बच्चों का इससे बचना बहुत कठिन होता है।

यह बीमारी उन लोगों को अधिकतर हो जाती है जो गंदे घरों में रहते हैं, जहाँ धूप और हवा नहीं पहुँचती। अपनी शक्ति से अधिक कार्य करने, अत्यन्त चिन्ता ग्रस्त रहने से भी यह शरीर में पैठ जाती है, और चुपचाप अपना काम करती रहती है। दुर्व्यसन अर्थात् नशा इत्यादि करने, घर की कलह, कर्जदारी के कारण चिन्तित रहने से भी यह बीमारी हो जाती है।

भारत में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में यह रोग बहुत पाया जाता है। स्त्रियों को हवा और रोशनी पूरी तरह से नहीं मिलता। उनको पौष्टिक भोजन भी कम खाने को मिलता है। पर्दे को प्रथा तथा छोटी उमर में विवाह भी इस रोग के मुख्य कारण है।

इस रोग से बचने के नीचे लिखे उपाय हैं—

(१) भूख से अधिक कभी न खाओ।

(२) भोजन नियत समय पर करो। यदि भूख न लगी हो तो भोजन न करो। जितना पचा सको उतना खाओ।

(३) अपनी पाचन शक्ति को ठीक रखो।

(४) चबा चबा कर खाओ।

(५) बीच बीच में उपवास करके पाचन शक्ति को तेज करो।

(६) कुछ पौष्टिक पदार्थ अवश्य लो जैसे मक्खन, घी, फल इत्यादि।

(७) थूक में क्षय के कीटाणु होते हैं इसलिए घर में, कर्श पर दीवार पर कभी न थूको। कागज़, रुमाल या कपड़े पर थूक कर उसे जला डालना अच्छा है।

(८) यदि पीकदान में थूको तो उसे गरम जल से साफ़ रखो।

(९) क्षयरोगी को अलग रखो, उसके कपड़े वर्तन इत्यादि को खोलने वाली में गरम करो और उसे किसी भी काम में न लाओ।

(१०) क्षयरोगी को खुली हवा में रहना चाहिये।

(११) क्षयरोगी को खूब आराम करना चाहिए।

(१२) प्रतिदिन नहाना चाहिए।

(१३) क्षयरोगी को खूब हवादार और खुले मकान में जहाँ धूप आ सके रहना-चाहिये ।

(१४) क्षयरोगी के साथ किसी को रहना या खाना न खाना चाहिए ।

सरकार ने एंटी ट्यूबरकुलोसिस लीग (Anti Tuberculosis League) की स्थापना की है, जो इन बातों का प्रचार करती है । किन्तु होना यह चाहिये कि इस रोग को रोकने का पूरा प्रयत्न किया जावे और उसकी चिकित्सा का प्रबन्ध होना चाहिये । इस रोग से देश को भयंकर हानि पहुँच रही है ।

चिकित्सा का प्रबन्ध

खेद है कि भारतीय ग्रामों में चिकित्सा का कोई प्रबन्ध नहीं है । ग्रामीण तो राम भरोसे पड़े रहते हैं । जिला बोर्ड, जिला केन्द्र, तहसीलों और बड़े बड़े कस्बों में अस्पताल चलाता है । किन्तु गाँवों में चिकित्सा का कोई प्रबन्ध नहीं होता । गाँव वाले तहसील तथा जिलों के शफाखानों से बहुत कम लाभ उठा पाते हैं । क्योंकि एक तो वे दूर होते हैं, दूसरे वहाँ उनकी कोई सुनवाई नहीं होती । अतएव आवश्यकता इस बात की है कि गाँव में चिकित्सा का समुचित प्रबन्ध किया जावे । किन्तु प्रत्येक गाँव में चिकित्सा का समुचित प्रबन्ध करना अत्यन्त कठिन है । अतएव जिला-बोर्ड पाँच पाँच या उससे अधिक गाँवों के समूह के बीच एक चिकित्सक रखे । प्रान्तीय सरकार इसके लिए जिला बोर्ड को सहायता दे । यदि वैद्य और इकीमों को गाँव में नियुक्त किया जावे तो अधिक अन्ध्रा हो, क्योंकि एक तो वे कम वेतन पर गाँव में रहना स्वीकार करेंगे, दूसरे देशी दवाइयों का मूल्य बहुत कम होता है । इस कारण ग्राम-वासी उन दवाइयों को खरीद सकेंगे । इन ग्रामीण चिकित्सकों को प्राइवेट प्रैक्टिस करने की आज्ञा न होनी चाहिए । प्रत्येक गाँव में एक स्वास्थ्य-रक्षक समिति बनाई जावे । प्रत्येक गाँव वाले का उसका सदस्य बनाया जावे । सदस्यों से कुछ फीस ली जावे । (दो आना प्रति मास) । चिकित्सक बीच के गाँव में रहे और एक दिन में प्रातःकाल ७ से १० तक एक गाँव में, और सायंकाल को दूसरे गाँव में निश्चित स्थान पर गाँव के मरीजों को देखें । इस प्रकार चिकित्सक एक सप्ताह में दो बार प्रत्येक गाँव

में चिकित्सा के लिए जावेगा और महीने में एक बार वह स्वास्थ्य-रक्षा के सिद्धान्तों का प्रत्येक गाँव में प्रचार करेगा। दवाइयों का मूल्य प्रत्येक गाँव की स्वास्थ्य समिति घर पीछे लगाई हुई फीस से देगी। दवाइयों का मूल्य गाँव वाले ही दें और चिकित्सक का वेतन सरकार तथा जिला बोर्ड दे तो प्रत्येक गाँव में चिकित्सा का प्रबन्ध हो सकता है।

संयुक्त प्रान्त की सरकार ने गाँवों में लगभग दो हजार चिकित्सालय खोलने का प्रबन्ध किया था। यह अत्यन्त प्रशंसनीय कार्य है। अन्य प्रान्तीय सरकारों का ध्यान भी अब गाँवों की ओर आकर्षित हुआ है। आशा है कि भविष्य में ग्रामों में चिकित्सा का कुछ कुछ प्रबन्ध अवश्य होगा।

अभ्यास के प्रश्न

१—हिन्दोस्तान में साधारण मनुष्यों का स्वास्थ्य अच्छा नहीं है और मृत्यु-संख्या भी यहाँ अन्य देशों से अधिक है, इसका क्या कारण है ?

२—स्वास्थ्य रक्षा के लिए जिन चीजों की आवश्यकता है, उनका उल्लेख कीजिये ?

३—सफ़ाई का स्वास्थ्य पर कैसा प्रभाव पड़ता है ? यह भी बतलाइये कि गाँव में सफ़ाई कैसी होती है ?

४—शारीरिक सफ़ाई का मनुष्य के स्वास्थ्य पर कैसा प्रभाव पड़ता है ? गाँव के रहने वाले शारीरिक सफ़ाई का कितना ध्यान रखते हैं ?

५—साधारण गाँव के रहने वालों का दैनिक भोजन क्या होता है ? क्या वह भोजन उसके स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिए काफी है ?

६—उन रोगों का उल्लेख कीजिये, जिनसे गाँवों में लोग अधिक संख्या में मरते हैं ?

७—चेचक, हैज़ा, प्लेग और मलेरिया क्यों और कैसे होते हैं ? इन रोगों से बचने के उपाय क्या हैं ?

८—गन्दी और अशिक्षित दाइयों से बच्चे पैदा करवाने से क्या हानि होती है ?

९—गाँवों में यदि कोई बीमार हो जाता है तो वह अपनी दवा किससे करवाता है ? गाँव में चिकित्सा का क्या प्रबन्ध है ?

१०—गाँव में कम खर्च से चिकित्सा का उचित प्रबन्ध किस प्रकार किया जा सकता है ?

११—क्षयरोग से बचने के लिए क्या करना चाहिए ?

इक्कीसवाँ अध्याय

पशु-पालन

गाँव में गाय और बैल का महत्व

इसमें तनिक भी अतशयोक्ति नहीं है कि भारतीय किसान खेती के कार्य के लिए बैल पर निर्भर है। यदि किसान के बैल अच्छे हैं, कमजोर नहीं हैं तभी वह अच्छी फसल पैदा कर सकता है। कमजोर बैलों से अच्छी फसल, पैदा हो ही नहीं सकती। भूमि की जुलाई से लेकर फसल को बाजार में बेचने जाने तक जितनी भी खेती में क्रियाएँ हैं, उन सब में बैल की सहायता की आवश्यकता पड़ती है। गाय किसान को तथा उसके बच्चों को शुद्ध दूध देती है। अतएव अच्छी गाय और बैलों का किसान के पास होना किसान की आर्थिक स्थिति तथा अच्छे स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त आवश्यक है। भारतवर्ष में खेती बिलकुल गौ-वंश पर निर्भर है। इसी कारण हिन्दुओं में गाय को इतनी प्रतिष्ठा है। किसान की सबसे मूल्यवान पूँजी, उसके बैलों की जोड़ी होती है, बिना बैलों के वह कुछ कर ही नहीं सकता।

भारतवर्ष में संसार के एक तिहाई गाय-बैल निवास करते हैं और उनसे उत्पन्न होने वाले धन का मूल्य लगभग बारह अरब रुपया है, जा कि खेती की पैदावार के मूल्य का लगभग आधा होता है। अस्तु, खेती के उपरान्त देश में यही धंधा सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। इसी से गाय और बैलों का महत्व स्पष्ट हो जाता है।

गौ-वंश की अत्यन्त हीन दशा

हिन्दोस्तान के लिए खेती सबसे महत्वपूर्ण राष्ट्रीय धंधा है जिस पर देश की तीन चौथाई जनसंख्या निर्भर है। उस धंधे का आधार गौ वंश, हीन दशा में हो, यह आश्चर्य की बात है। किन्तु बात सच्ची है। गौ वंश की

दशा आज अत्यन्त शोचनीय है, यदि जमुनापार के मथुरा इत्यादि जिले, पंजाब के हिसार, हरियाना और मान्टगोमरी के प्रदेशों और सिन्ध तथा काठियावाड़ की गायों को छोड़ दिया जावे तो अन्य प्रांतों की गायों की नस्ल इतनी गिर गई है कि वह दूध देने वाला जानवर ही नहीं रह गया। उसके स्थान को भैंस ने ले लिया है। साधारणतः ये गायें सेर या डेढ़ सेर दूध देती हैं। जब कि योरोप तथा अन्य देशों में यदि कोई गाय पन्द्रह या सोलह सेर से कम दूध देती है तो वह पालने योग्य नहीं समझी जाती, मसल बनाने के कारखाने को भेज दी जाती है।

यहां दशा बैलों की भी है। खेती पर काम करते हुए बैलों को देखिए। अधिकतर निर्बल, नाटे, और दुबले पतले बैल दिखाई देंगे। भला इन निर्बल बैलों से अच्छी खेती कैसे सम्भव हो सकती है। किसान को अच्छा हल, या गन्ना पेरने का कास्टू दीजिये तो वह उसकी उपयोगिता को समझते हुए भी उसे इस कारण नष्ट लेता क्योंकि उसके निर्बल बैल उसे चला न सकेंगे। बैलों की नस्ल बिगड़ गई है; फिर भी हिन्दोस्तान के कुछ भागों में अच्छी नस्ल के बैल पाए जाते हैं। जिनकी नस्ल अभी नहीं बिगड़ी है। उनमें 'शार्दूल' और 'हरियाना' पंजाब के थार पारकर' और 'सिंधी' सिंध के 'कांकरेज' गुजरात का, 'गर' काठियावाड़ का, 'शौनल' मद्रास का, 'पँवार' सयुक्त प्रान्त का, 'गोली' मध्य प्रान्त का, और 'मालवी' मध्य भारत का मुख्य है।

गौ-वंश का हीन दशा के कारण

गौ-वंश की इस शोचनीय दशा के तीन मुख्य कारण हैं। (१) अच्छे चारे का अकाल (२) पशु रोगों और बीमारियों से बहुसंख्यक गाय और बैलों का नाश (३) गाय-बैलों की नस्ल को अच्छा बनाने के उचित प्रवन्ध का न होना।

आवश्यकता से अधिक बैल

चारे के सम्बन्ध में लिखने से पूर्व एक बात समझ लेने की है। एक निर्बल और अशक्त बैल जो कि एक अच्छे बैल की तुलना में एक तिहाई काम करता है, अच्छे बैल से कुछ ही कम खाता है। अतएव यदि अच्छे गाय या बैल रखे जावें तो सब काम कम गाय-बैलों से चल जावेगा और

कम घूमरे की आवश्यकता होगी। परन्तु यदि खराब गाय-बैल रखे जावेंगे तो संख्या में अधिक रखने पड़ेगे और चारा अधिक खिलाना पड़ेगा। अच्छे बैल को रखने का खर्चा एक रही बैल के रखने से कुछ ही अधिक पड़ता है। परन्तु काम को देखते हुए अच्छा बैल सस्ता बैठता है। सन् १९२६ में भारतीय शाही कृषि कमीशन की सम्मति में भारत में प्रति एकड़ और दूसरे देशों से कहीं अधिक बैल हैं। उसका मत है कि यदि ये बैल अच्छे होते तो इतने अधिक बैलों को न रखना पड़ता। भारतवर्ष में एक अजीब परिस्थिति उत्पन्न हो गई है। किसी भी प्रदेश में गाय और बैलों की संख्या खेती के योग्य बैलों पर निर्भर रहती है। बैलों को पालने के लिए जितनी खराब दशा किसी प्रदेश की होगी, उतने ही अधिक गाय और बैल उस प्रदेश में इस आशा से पाले जावेंगे कि इनमें से खेती योग्य यथेष्ट बैल मिल जावेंगे। इनका फल यह होता है कि चारे की, उस प्रदेश में और भी कमी हो जाती है; गायें कम बच्चे देने लगती हैं। और उनसे बड़ड़े छोटे होने लगते हैं, जिनसे किसान का काम नहीं चलता। किसान उपयोगी और अच्छे बैलों को प्राप्त करने के लिए अधिक से अधिक बड़ड़ों को उत्पन्न करवाता और पालता है। जैसे जैसे संख्या बढ़ती जाती है; बैलों की साइज छोटी होती जाती है, वैसे ही वैसे चारे की कमी बढ़ती जाती है।

इनमें से अधिकांश निर्बल बैल खेती के लिए उपयुक्त ही नहीं होते। गौ वश की नस्ल इस समय इतनी खराब हो गई है कि देश के सामने यह एक बड़ी समस्या के रूप में खड़ी हो गई है। अब हम इन तीनों कारकों की विस्तृत आलोचना करेंगे, जिनके कारण गौ-वश की दशा इतनी शोचनीय होगई है, और यह भी बतलावेंगे कि गाय और बैलों की नस्ल को अच्छा कैसे बनाया जा सकता है।

चारे की कमी (Fodder)

भारतवर्ष में जैसे जैसे जनसंख्या बढ़ती गई, वैसे-वैसे खेती के लिए अधिक भूमि की आवश्यकता होती गई। कारण यह था कि खेती के अतिरिक्त और कोई धंधा ही नहीं था, जिसमें बढ़ी हुई जनसंख्या लग सकती। इसका फल यह हुआ कि चरागाहों को खेतों में परिणित कर दिया गया। गोचर भूमि के कम हो जाने से चारे की कमी हो गई। चरागाहों

कम हो गए किन्तु किसान ने गाय और बैलों के पालने का ढंग वही पुराना रखा। भारतीय किसान का अपने पशु को पालने का ढंग यह है कि गाय जब दूध देती है तब तो उसको घर पर सानी (भूसा-करबी, तथा घास इत्यादि) यथेष्ट दी जाती है परन्तु जब वह सूख जाती है तब उसको बहुत कम खाने को मिलता है। केवल वह मैदानों पर चर कर पेट भरती है। किन्तु चरागाह की कमी के कारण तथा मार्च, अप्रैल, मई जून में घास के जल जाने के कारण गाय प्रायः भूखी रहती है। क्रमशः वह दुर्बल होती जाती है। बैलों को जब कि वे काम करते हैं, उन दिनों उन्हें किसान घर पर अधिक सानी देता है; किन्तु जिन दिनों खेतों पर काम कम होता है, उन्हें भी मैदानों पर चरने को छोड़ दिया जाता है।

अस्तु, चारे की समस्या को हल करने के दो ही ढंग हैं, या तो चरागाहों को बढ़ाया जावे अथवा इसी भूमि पर अधिक से अधिक चारा उत्पन्न किया जावे। कृषि-कमीशन की राय में तथा अन्य कृषि शास्त्रियों की राय में अब गोचर-भूमि बढ़ाई नहीं जा सकती। अतएव इसी भूमि पर तथा खेतों पर अधिक से अधिक चारा उत्पन्न करने का प्रयत्न करना चाहिए। अधिक चारा उत्पन्न करने के लिए निम्नलिखित उपाय करने होंगे। गाँव के चारों ओर मैदानों और खेतों में जो भी गड़हे तथा ऊबड़-खाबड़ भूमि हो, उसको चौरस कर दिया जावे। जससे कि वर्षा का पानी गिरते ही तुरन्त न बह जावे परन्तु धीरे धीरे बहे और भूमि उसको सोखे। इससे केवल अधिक घास ही नहीं उत्पन्न होगी बल्कि खेती भी अच्छी होगी। चरागाह में गाय और बैलों के चरने पर गाँव की पंचायत का नियन्त्रण होना चाहिए। यदि चरागाह का एक हिस्सा एक वर्ष पशुओं के चरने के लिए रखा जावे तो दूसरे हिस्से पर घास खूब बढ़ने दी जावे और उसको काट कर साइलो (Silo) में भर कर (Silage) बना ली जावे या काट काट कर खिलाई जावे।

साइलो (Silo)—घास अथवा चारे को अच्छी दशा में सुरक्षित रखने वाला गड़हा।

साइलेज (Silage)—साइलो में रखी हुई घास अथवा अन्य चारा साइलेज कहलाती है। साइलेज बनाने से चारे के सारे पौष्टिक अंश सुरक्षित रहते हैं।

चरासह, पर पशुओं को चराने से घास नष्ट हो जाती है, बढ़ती ही नहीं है। अतः घास काट कर खिलाने से चरागाहों से अधिक चारा मिल सकता है। घास का ठीक उपयोग करने के अतिरिक्त ज्वार, बाजरा तथा अन्य प्रकार की करवी की भी साइलेज बनाने से चारा स्वास्थ्यवर्धक तथा अच्छा बना रहता है। सुखा देने से बहुत सा चारा नष्ट हो जाता है और उसके गुण जाते रहते हैं। इसके अतिरिक्त जहाँ सिंचाई के लिए पानी आसानी से उपलब्ध हो, वहाँ किसानों को चाहे की फसलें उत्पन्न करने को उत्साहित करना चाहिए। यदि क्लोवर (Clover) नाम की एक प्रकार की घास तथा अन्य चारे की फसल जो बहुत जल्दी तैयार हो सकती है और जिन्हें किसान बिना अपनी मुख्य फसलों का त्याग किए काट सकता है, उत्पन्न की जावें तो किसान के पास यथेष्ट चारा हो सकता है। कृषि-विभाग को चाहिये कि वह अन्य चारे की फसलों की खोज करे जो कि शीघ्र तैयार हो सके।

भारतवर्ष में जंगलों में बहुत अधिक घास बेकार सूख जाती है। यदि वह घास काट कर चारे के रूप में परिणित की जा सके और रेल घास को बहुत सस्ते किराये पर देश में एक कोने से दूसरे कोने तक पहुँचा सकें तो जो यह अनन्त राशि में चारा नष्ट होता है और पशु भूखे मरते हैं यह अवस्था दूर हो सकती है।

प्रत्येक गांव में जो ऊसर अथवा बंजर भूमि है उसका उपयोग भी जंगल उत्पन्न करने में करना चाहिए। जंगल विभाग शीघ्र उत्पन्न होने वाले वृक्षों का जंगल उस भूमि पर गांव वालों की सहायता से लगवावे और उस जंगल में गांव के लोग चारा और ईंधन अपनी आवश्यकतानुसार ले लिया करें। उस जंगल की देखभाल गांव की पंचायत करे।

साइलेज (Silage) बनाने के उपाय

सूखे चारे को सुरक्षित रखने का सबसे उत्तम साधन साइलेज बनाना है। किसान एक गड़हा जो ऊपर आठ फुट चौड़ा हो और तले पर सात फुट चौड़ा हो, और जिसकी गहराई आठ से दस फुट तक हो, खोदे। ज्वार, बाजरा, मक्का तथा अन्य प्रकार की करवी के टुकड़े करके, घास

पेड़ों की पत्तियों तथा अन्य पौधों, सबों को काटने के उपरान्त तुरन्त ही ठस ठूस कर और जहाँ तक हो सके, दाब दाब कर भर दे। ऊपर से पत्थर, ईंटें, तथा भारी चीजें रख दे। बहुत अच्छा और स्वास्थ्यवर्धक चारा तैयार हो जावेगा।

पशुओं के रोग (Cattle diseases)

भारतवर्ष में प्रति वर्ष लाखों की संख्या में पशु रिन्डरपैस्ट (Rinderpest) जानवरों के प्लेग, सैप्टीसीमिया (Septiceamia) तथा मुँह और पैर की बीमारियों से मरते हैं। इनमें रिन्डरपैस्ट अत्यन्त भयंकर रोग है जिससे प्रति वर्ष असंख्य गाय-बैल तथा अन्य पशु मर जाते हैं। यह छूत का रोग है। जब फैलता है तो अग्नि की तरह फैलता है और बेचारा किसान अपने बैलों से हाथ धो बैठता है। पशु चिकित्सा-विभाग सिरम (Serum) का टीका लगाकर पशुओं की रक्षा करता है। किन्तु पशु-चिकित्सालय अधिकतर जिलों और तहसीलों में ही होते हैं। किसान अपने बीमार बैल को भला वहाँ कैसे ले जा सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि पशु-चिकित्सकों की संख्या बढ़ाई जावे और वे गश्त करते रहें। सरकार का तो यह कर्तव्य है ही कि वह अधिक से अधिक पशु-चिकित्सा की सुविधाएँ प्रदान करे,

किन्तु किसानों का भी यह कर्तव्य है कि वे जब मेलो तथा पैठों से बैल मोल लावें तो उसे एक सप्ताह तक अलग बाँध कर खिलावें, जानवरों में न मिलने दें जब कभी कोई पशु बीमार हो जावे तो उसे अन्य जानवरों से अलहदा कर दें, और अपने जानवरों को ताल तथा पोंखरों का सड़ा हुआ गंदा पानी न पिलावें। सभी किसानों के जानवर बीमारी से बच सकते हैं। यह ध्यान में रखने की बात है कि जब तक बैलों की बीमारियों से रक्षा न की जा सकेगी तब तक किसान बढ़ियाँ बैल नहीं खरीदेगा क्योंकि उसको उसके बीमारी से मर जाने का बराबर भय रहेगा। ऐसी दशा में वह सस्ता से सस्ता बैल खरीदना ही पसन्द करेगा।

रिन्डरपैस्ट (पशुओं का प्लेग) भयंकर छूत का रोग है। जब यह रोग फैलता है तो गाँव के गाँव साफ़ हो जाते हैं। प्रति वर्ष भारत में लाखों की संख्या में पशु इस रोग से मर जाते हैं।

जब पशु बीमार होता है तो वह खाना छोड़ देता है और सुस्त रहने

लगती है फिर उसको तेज बुखार चढ़ता है तथा तीन चार दिन में मर जाता है। यदि एक पशु को यह बीमारी लग गई तो यह गांव भर में फैल जाती है।

पशु-चिकित्सा विभाग ने इसकी दवा तो निकाल ली है। जब बीमारी फैली हो और पशु के दवा (सिरम) का टीका लगवा दिया जावे तो पशु पर बीमारी का असर नहीं होता, किन्तु देश के लगभग पाँच लाख गाँवों में सिरम का टीका लगाने का कोई प्रबन्ध नहीं किया गया है। पशुओं के डाक्टर बड़े कस्बों या शहरों में रहते हैं। गांव के लोग उनसे कोई लाभ नहीं उठा सकते।

आवश्यकता इस बात की है कि बहुत ज्यादा “सिरम” तैयार कराया जावे और गांव के मुखिया, पटवारी गाँव की पाठशाला के अध्यापक तथा अन्य कर्मचारियों को टीका लगाना सिखा कर दवा उन्हें दे दी जावे। इस प्रकार पशुओं की इस रोग से रक्षा हो सकती है।

गाय बैलों की नस्ल सुधारना (Cattle breeding)

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि गाय और बैलों की नस्ल बिगड़ गई है। इसका मुख्य कारण यह है कि गाँव तथा कस्बों में अच्छे साँड़ों की कमी है। हिन्दुओं में प्राचीन काल से यह प्रथा थी कि किसी बृद्ध के मरने पर उसके वंशज एक अच्छी नस्ल के अच्छे बछड़े को साँड़ बनाते थे। साँड़ बनाने के लिए बहुत अच्छा बछड़ा छाँटा जाता था। किन्तु अब लोग पुण्य तो कमाना चाहते हैं और इस कारण किसी रद्दी बछड़े का साँड़ बना देते हैं। इसका फल यह हो रहा है कि ये धार्मिक-साँड़ (जो कि खराब नस्ल के हैं) हज़ारों लाखों की संख्या में छूटे फिरते हैं और गाय बैलों की नस्ल को खराब करते हैं। यही नहीं, बूढ़े और अशक्त साँड़ भी वंशोत्पत्ति करते रहते हैं। जबकि बछड़े पैदा करने का प्रबन्ध इतना खराब है, फिर नस्ल कैसे अच्छी बन सकती है।

अच्छी नस्ल पैदा करने के लिए सबसे पहले यह आवश्यक है कि इन रद्दी साँड़ों को दूर किया जावे। कुछ विशेषज्ञों का तो यह कहना है कि इन साँड़ों को मरवा दिया जावे। किन्तु हिन्दू इसको सहन न कर सकेंगे, अतएव इन रद्दी साँड़ों को नपुंसक करवा दिया जावे, जिससे वे वंशोत्पत्ति न

योग्य न रहें। भविष्य में इस प्रकार सांड बनाकर छोड़ने का नियम किन्हीं बना दिया जावे। केवल अच्छी नस्ल के बछड़ों को ही सांड बनाया जावे। भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्त में कुछ सरकारी सांड फार्म हैं जहाँ अच्छी जाति के सांड तैयार किये जाते हैं। संयुक्तप्रान्त में भी दो ऐसे सरकारी फार्म हैं जहाँ अच्छी नस्ल के सांड तैयार किए जाते हैं। किन्तु इनसे इतने सांड प्रति वर्ष नहीं दिए जा सकते जिनकी गाँवों की आवश्यकता है। साधारणतः सौ गायों के लिए एक अच्छे सांड की आवश्यकता है।

गाय और बैल की नस्ल तथा सुधर सकती है कि जब गांव गांव में अच्छे सांड पहुँचा दिये जावें। इसके लिए केवल सरकार पर अवलम्बित रहना ठीक नहीं है, सरकार कभी भी यथेष्ट सख्या में सांड वाँट न सकेगी। इसके लिए डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, गाँव वालों की पंचायतों, ज़मींदारों, कोर्ट्स, आवार्ड्स, गऊशालाओं और पिंजरापोलों, गाँव की सहकारी समितियों तथा अन्य गांव के धनी व्यक्तियों को सांडों को पालना चाहिए और नस्ल को अच्छा बनाने का प्रयत्न करना चाहिए।

ज़िला बाड (डिस्ट्रिक्ट बोर्ड) द्वारा सहायता

प्रत्येक ज़िला (डिस्ट्रिक्ट) बोर्ड को अपने जिले की गाय और बैलों की जाँच कराना चाहिए और उसके उपरान्त यह निश्चय करना चाहिए कि कौन सी नस्ल का सांड उस जिले के लिए उपयुक्त रहेगा। जहाँ जहाँ पशु-चिकित्सालय हों वहाँ वहाँ डिस्ट्रिक्ट बोर्ड सांड रखें। ये समीपवर्ती गांवों के उपयोग के लिए हों। जो भी पंचायत, गऊशाला, अथवा अन्य संस्था नस्ल अच्छी करने के लिए सांड मोल ले, उसे बोर्ड आर्थिक सहायता प्रदान करे। गाय और बैलों की नुमाइश कराई जावे। मेलों, नुमाइशों तथा पैडों में प्रचारकों को भेजकर इस बात का प्रचार कराया जाय कि अच्छी नस्ल किस प्रकार उत्पन्न की जा सकती है। साथ ही अच्छे साँड़ों तथा उनसे उत्पन्न गाय और बैलों का प्रदर्शन कराया जावे। जो किसान अच्छे गाय और बैल उत्पन्न करें, उनको इनाम दिया जावे।

सरकार ज़मींदारों तथा कोर्ट-आफ बाड्स को उत्साहित करे कि वे सांड खरीदें और अपनी अपनी ज़मींदारी में गाय और बैलों की नस्ल को सुधारने के लिए अपना अपना प्रयत्न करें। यदि गांव के लोग सामूहिक रूप

से इन्क्यूबेटर हाँककर साँड़ रखें तो गाय को गाभिन कराने की थोड़ी सी फीस ली जा सकती है, जिससे साँड़ का पालन हो सकता है ।

सरकारी नस्ल सुधार समितियाँ

(Cooperative Cattle breeding Societies)

गांव वालों को भी अपने गाय-बैलों की नस्ल सुधारने के लिए प्रयत्नशील होना चाहिए । इसके लिए उन्हें एक सहकारी समिति गाय-बैलों की नस्ल सुधारने के लिए स्थापित करना चाहिए । पंजाब तथा अन्य प्रान्तों में ये सहकारी नस्ल-सुधार-समितियाँ स्थापित की गई हैं । ये समितियाँ अच्छे साँड़ रखती हैं । रही और खराब नस्ल के साँड़ों को गांव से हटा देती हैं । गांव के गायों का रजिस्टर रखती हैं, गायों के गाभिन होने तथा उनके ब्याने का लेखा रखती हैं । गाय तथा उनसे उत्पन्न सन्तान पर निशान डालती हैं । (यह निशान मिटते नहीं इनसे यह ज्ञात होता है कि नस्ल में कितनी उन्नति हुई) अच्छी नस्ल के साँड़ और गांव की छुटी हुई गायों के संसर्ग से जो गायें उत्पन्न हों, उनके दूध का लेखा रखती हैं, जिससे यह ज्ञात हो सके कि वे कितना दूध देती हैं । गांव के गाय और बैलों की बीमारी से रक्षा करने के लिये उनको टीका लगवाती हैं । नस्ल सुधार-समिति अपना खर्च चलाने के लिए सदस्यों से प्रवेश फीस लेती है । सदस्यों की गायों को गाभिन कराई की जो फीस ली जावे, गैर सदस्यों की गाय को गाभिन कराई की उससे दुगनी फीस ली जानी चाहिए । जब सदस्यों की गाय बच्चा पैदा करे तब नाममात्र की फीस ली जावे, तथा सदस्य द्वारा गाय अथवा बैल बेंचे जाने पर भी थोड़ी सी फीस ली जावे ।

ग्राम-सुधार विभाग

ग्राम-सुधार विभाग को भी इस कार्य में सहयोग देना चाहिये । जो गाँव कैटिल ब्रीडिंग सोसायटी स्थापित करें और अच्छी नस्ल का साँड़ मोल ले उन्हें ग्राम-सुधार-विभाग, साँड़ का २५ प्रतिशत से ५० प्रतिशत मुल्य दे । इसके अतिरिक्त वह इस सम्बन्ध में प्रचार कार्य करे ।

गऊशाला

गऊशालायें भी गाय और बैलों की नस्ल अच्छा बनाने में बहुत कुछ कार्य कर सकती हैं । इस समय तो भारतवर्ष भर में हजारों गऊशालाएँ

पर हिन्दू करोड़ों रुपये व्यय करते हैं, किन्तु वह बूढ़े तथा रोगी-गाय और बैलों को रखने के अतिरिक्त और कुछ नहीं करती। यदि इन गऊशालाओं को गायबैलों की नस्ल के सुधारने के केन्द्र बना दिया जावे तो बहुत कुछ काम हो सकता है।

पशुओं और विशेष कर गाय और बैलों की नस्ल तभी सुधर सकती है जब कि जनता, सार्वजनिक संस्थाएँ, तथा सरकार सभी इस आंश प्रयत्न-शील हों।

हिन्दू गाय को अत्यन्त पवित्र मान कर उसकी पूजा करते हैं किन्तु गऊशालायें जिन पर हिन्दुओं का करोड़ों रुपये व्यय होता है गाय की उन्नति के लिए कुछ नहीं करतीं। हमें यह न भूल जाना चाहिए कि जब तक हम गाय की नस्ल की उन्नति करके उसको लाभदायक पशु नहीं बना देते तब तक उसके प्राणों की रक्षा नहीं हो सकती।

होना यह चाहिये कि प्रत्येक गऊशाला एक या अधिक अच्छी जाति का साँड़ रखे, जिससे कि उस इलाके में नस्ल अच्छी बने। जहाँ गऊशाला बहुत धनवान हो वहाँ अच्छे साँड़ तैयार किये जावे और दूसरी गऊशालाओं को दिये जावे। गायों के पालन, चारे की व्यवस्था, साहलेज बनाने, पशुओं के रोगों की जानकारी कराने, पशुओं को चिकित्सा का प्रबन्ध करने का गऊशाला केन्द्र होना चाहिए।

वर्ष में एक बार समीपवर्ती प्रदेश की गायों का प्रदर्शन किया जावे, अच्छे बछड़े और गायों पर पारितोषिक दिया जावे। इस प्रकार देश की गऊशालायें गौ वंश की उन्नति का प्रधान साधन बन सकती हैं, आज तो वे बूढ़े पशुओं को रखने का स्थान मात्र हैं।

गौ-सेवा-संघ

कई वर्ष हुए महात्मा गाँधी के नेतृत्व में गौ-सेवा-संघ की स्थापना हुई है। इसका मुख्य उद्देश्य गाय की नस्ल की उन्नति करना और इस सम्बन्ध में वैज्ञानिक अनुसंधान करना है। इस संघ का सदस्य वही व्यक्ति हो सकता है जो इस बात का व्रत ले अर्थात् प्रतिज्ञा करे कि वह आजीवन गाय का ही दूध, और उसके ही दूध से बने हुए घी, दही, मक्खन इत्यादि उपयोग करेगा।

गौ सेवा-संघ ने वर्षा में गौपुरी नामक स्थान बनाया है, जहाँ गाय की नस्ल का सुधार करने, दूध को बढ़ाने, चारे इत्यादि की व्यवस्था करने और पशुओं के रोगों को रोकने तथा अन्य सभी आवश्यक समस्याओं पर अनुसंधान हो रहा है।

गौ-सेवा-संघ का यह निश्चय मत है कि भारत में जो बैल के लिए गाय पालने और दूध तथा घी के लिए भैंसे पालने की परिपाटी चल पड़ी है, यह हानिकारक है। इससे हमें एक पशु के स्थान पर दो पशुओं को रखना पड़ता है और चारे की समस्या और भी विकट रूप धारण कर लेती है। अतएव गौ-सेवा-संघ का कहना यह है कि हमें गाय की ऐसी नस्ल उत्पन्न करना चाहिये जो कि खेती के लिए उत्तम बैल भी दे और दूध भी खूब दे जिससे कि भैंस रखने की आवश्यकता न रहे। यही कारण है कि संघ जनता से गाय के दूध घी इत्यादि को काम में लाने का आग्रह करता है।

आज तो स्थिति यह है कि गाय बैल उत्पन्न करने के लिए पाली जाती है, दूध तो वह नाम मात्र को ही देती है। भैंसा खेती में काम नहीं देता इसलिए गाय पालना ज़रूरी है। लेकिन गाय के दूध न देने के कारण भैंस पालनी पड़ती है। इससे बहुत हानि होती है। इसलिए अगर ऐसी गाय की नस्ल तैयार की जावे जो दूध भी खूब दे और खेती के लिए उत्तम बैल भी पैदा करे तो यह हानि बच सकती है। गौ-सेवा-संघ इसी प्रकार की दोहरे काम वाली गाय की नस्ल को उत्पन्न करने पर जोर देता है।

आशा है कि इस संघ से गौ-वंश का विशेष उपकार होगा।

अभ्यास के प्रश्न

- १—गाय किसान के लिए क्यों उपयोगी जानवर है ?
- २—खेती में बैलों का किन-किन कार्यों में उपयोग होता है ?
- ३—हिन्दोस्तान में किन प्रदेशों की गायें अधिक दूध देती हैं और बैलों की कौन सी अच्छी नस्लें मिलती हैं ?
- ४—हिन्दोस्तान में गाय और बैलों की नस्लें खराब हो गई हैं इसका क्या कारण है ?
- ५—क्या हिन्दोस्तान में बैल ज़रूरत से ज्यादा हैं ? यदि हैं, तो इसका कारण बतलाइये।

६—गाँवों में चारे की कमी को पूरा करने के लिए क्या उपाय काम में लाना चाहिये ?

७—साइलोज किसे कहते हैं, वह कैसे तैयार होती है और उससे क्या लाभ होता है ?

८—पशुओं की कौन-कौन सी भयंकर बीमारियाँ गाँव में फैलती हैं ? उनसे पशुओं की रक्षा किम प्रकार की जा सकती है ?

९—गाय और बैलों की नस्ल को सुधारने के लिए कौन से उपाय काम में लाना चाहिये ?

१०—ज़िला बोर्ड (डिस्ट्रिक्ट बोर्ड) तथा कैंटिल ब्रीडिंग सोसायटी गाय-बैलों की नस्ल को सुधारने में किस प्रकार सहायक हो सकती हैं ?

११—गौ-सेवा-संघ गौ-वंश की उन्नति के लिए क्या कर रहा है ?

बाइसवाँ अध्याय

खेती की उन्नति के उपाय

(Agriculture Improvement)

कृषि की गिरी हुई दशा

भारतवर्ष कृषि प्रधान देश है, देश की लगभग तीन चौथाई जन-संख्या खेती पर ही निर्भर है। खेती का, देश के आर्थिक संगठन में सर्वोच्च स्थान होने पर भी खेती की दशा अत्यन्त गिरी हुई है, यह आश्चर्य की बात है। देश की निर्धनता को दूर करने के लिए जहाँ देश की औद्योगिक उन्नति करने की आवश्यकता है, वहाँ उससे भी अधिक आवश्यक यह है कि भूमि की उपज बढ़ाई जावे। जैसा कि हम किसी पिछले अध्याय में बतला आए हैं, अन्य देशों की तुलना में भारतवर्ष की प्रति एकड़ उपज सबसे कम है। भारतवर्ष में प्रति एकड़ कपास की पैदावार पच्चीस पौंड है जबकि ईजिप्ट की ४०० पौंड तथा संयुक्तराज्य अमरीका की २५० पौंड है। भारतवर्ष में एक एकड़ में जितना गन्ना उत्पन्न होता है उससे चौगुना जावा और छै गुना क्यूबा में उत्पन्न होता है। भारतवर्ष में प्रति एकड़ इंगलैंड का एक चौथाई

गेहूँ उत्पन्न होता है। यद्यपि इन देशों और भारतवर्ष की खेती बारी के ढंग में बहुत अन्तर है, वहाँ खाद, यन्त्र और शक्ति के द्वारा बड़े बड़े खेतों पर आधुनिक वैज्ञानिक ढंग से खेती होती है। अतएव यह कहना कि भारतवर्ष भी प्रति एकड़ इतनी ही पैदावार उत्पन्न कर सकता है, ठीक न होगा। परन्तु फिर भी यह तो स्पष्ट ही है कि यदि खेती बारी अधिक सावधानी से की जावे तथा आवश्यक सम्भव सुधार कर दिये जावे तां उपज बहुत कुछ बढ़ाई जा सकती है।

अब हम उन साधनों का वर्णन करते हैं कि जिनकी कृषि में आवश्यकता होती है और साथ ही यह बतलाने का भी प्रयत्न करते हैं कि किस प्रकार पैदावार बढ़ाई जा सकती है।

कृषि के आवश्यक साधन

प्रत्येक उत्पादन कार्य में चार साधन आवश्यक हैं १ भूमि (Land) २ पूँजी (Capital), ३ श्रम (Labour), ४ संगठन (Organisation and Enterprise)।

भूमि

भूमि के अन्तर्गत हमें निम्नलिखित समस्याओं का अध्ययन करना है:—
छोटे छोटे बिखरे हुए खेतों की समस्या। खाद की समस्या।

पूँजी के अन्तर्गत पशुधन, खेती के यन्त्र, बीज, सिंचाई, साख की समस्याएँ आती हैं।

श्रम तथा संगठन

श्रम तथा संगठन के अन्तर्गत किसानों का स्वास्थ्य, उनकी शिक्षा, फसलों के शत्रु, तथा पैदावार को बेचने की समस्याओं का अध्ययन करना होगा।

छोटे छोटे बिखरे हुए खेतों की समस्या

(Fragmentation of Land Holdings)

यह तो पहले ही बताया जा चुका है कि भारतीय किसान के पास भी थोड़ी सी भूमि होती है। वह भी छोटे छोटे टुकड़ों में बिखरी होती है।

यह सर्वमान्य बात है कि जब तक किसान छोटे छोटे अनेक खेतों पर खेती करने का प्रयत्न करता है, जो कि एक दूसरे से बहुत दूरी पर बिखरे हुए हैं, तब तक खेती की उन्नति होना सम्भव नहीं है। खेती की उन्नति के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि खेत एक चक्र में हों।

किसी किसी प्रान्त में तो खेतों के ऐसे छोटे छोटे टुकड़े हो गए हैं और इतनी दूरी पर बिखरे हैं कि उन पर खेती करने से कोई लाभ हो ही नहीं सकता। भूमि के छोटे छोटे टुकड़ों में विभाजित होने का खेतों पर बहुत बुरा असर पड़ता है। आसत किसान अपनी शक्ति और साधन का उचित उपयोग नहीं कर सकता। एक टुकड़े से दूसरे टुकड़े तक उसे जाने में बहुत समय नष्ट करना पड़ता है। इन बिखरे हुए टुकड़ों की ठीक तरह से देख भाल भी नहीं हो सकती, बहुत सी जमीन मेड़ बनाने में व्यर्थ चली जाती है। किसानों के खेत एक जगह न होकर बिखर जाने के कारण उसे दूसरों के खेतों में से होकर जाना पड़ता है जिससे भगड़ा होता है और मुकदमेबाजी की नौबत आती है। सिंचाई के मामले में भी अड़चन होती है। किसान अपने सब टुकड़ों पर तो कुआँ बना ही नहीं सकता। और एक कुएँ से दूर दूर के खेतों को पानी ले जाने में दूसरों के खेतों में से पानी ले जाना पड़ता है। बिखरे हुए खेतों के कारण अच्छे यन्त्र और औजार काम में लाए नहीं जा सकते, क्योंकि वे भारी होते हैं और किसान उन्हें अपने कंधों पर रख कर एक टुकड़े से दूसरे टुकड़े पर नहीं ले जा सकता। न खेत पर वह और कोई सुधार ही कर सकता है। छोटे छोटे खेतों में बाढ़ लगाने का खर्च भी बहुत पड़ता है इसलिए बिना बाढ़ की खेती करनी होती है। किसान के पास सारी भूमि एक चक्र में न होने के कारण वह अन्य देशों के किसानों की तरह अपने खेत पर मकान बना कर नहीं रहता वरन् खेतों से दूर बस्ती में रहता है। वैज्ञानिक ढङ्ग की खेती करने के लिए किसान को खेत पर ही रहना चाहिए, क्योंकि उस दशा में वह हर वक्त खेती की देख भाल कर सकेगा, उसकी स्त्री तथा बच्चे पूर्ण रूप से सहायक हो सकेंगे, तथा खाद इत्यादि का पूरा उपयोग हो सकेगा। सारांश यह है कि भूमि का छोटे छोटे टुकड़ों में बिखरे होना खेती की उन्नति में बहुत बाधक है। इसमें सुधार अत्यन्त आवश्यक और पहली बात है।

ता

यह तभी हो सकता है कि जब हर एक किसान को उसकी जमीन (जो अभी अलग अलग टुकड़ों में बँटी है) के बराबर का एक ही बड़ा खेत दे दिया जावे और आगे इस बात का प्रबन्ध कर दिया जाय कि एक निश्चित क्षेत्रफल के बाद जमीन के टुकड़े नहीं किये जा सकेंगे। पहला प्रश्न जमीन के बिखरे हुए टुकड़ों की चकबंदी का है और दूसरा भविष्य में जमीन के बटवारे को रोकने का है।

चकबंदी दो तरह से की जा सकती है—सहकारी चकबंदी समितियों द्वारा और कानून के द्वारा। (देखो चकबंदी समितियाँ) चकबंदी का अर्थ यह है कि ज़मीन का इस प्रकार बटवारा किया जावे कि किसान की जितनी कुल ज़मीन है वह एक चक में आ जावे। मान लो 'अ' किसान के एक टुकड़े के पास 'क' 'ख' और 'ग' के टुकड़े हैं। चकबंदी की योजना के अनुसार 'अ' को 'क' 'ख' 'ग' के टुकड़े दे दिये जावेंगे जो उन खेतों के पास हैं।

सहकारी चकबंदी समिति की स्थापना तभी हो सकती है कि जब सब लोग गये बँटवारे को मानें। किन्तु कानून बना कर जो चकबंदी की जाती है उसमें यदि अधिकतर लोग नये बटवारे को मान लेते हैं तो वह चकबंदी की योजना गाँव भर में लागू कर दी जाती है।

खेतों के बिखरे होने का मुख्य कारण यह है कि भारत में खेती योग्य भूमि का अकाल पड़ गया है। बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए उदर पूर्ति का दूसरा कोई साधन न हो रहा। यह-उद्योग धंधे (cottage industries) मर चुके हैं और आधुनिक कारखानों में देश की केवल एक प्रतिशत जनसंख्या काम पा सकी है। इसका परिणाम यह हुआ है कि खेती पर ज़रूरत से ज्यादा लोग निर्भर हैं। दूसरे शब्दों में भूमि पर जनसंख्या का भार बेहद बढ़ गया है। भारतवर्ष में आज हालात यह हैं कि फी किसान पीछे केवल ढाई एकड़ भूमि का औसत पड़ता है।

खेती की सफलता के लिए किसान के पास इतनी जमीन का होना नितान्त ज़रूरी है कि जिस पर उसके श्रम और साधनों के पूरा पूरा उपयोग होने की पूर्ण सम्भावना हो। भारतवर्ष में एक किसान को कम से कम एक जोड़ी बैल तो रखने ही पड़ते हैं, इसके सिवाय एक औसत कुटुम्ब में

५ प्राणी होते हैं ; ऐसी हालत में खेती में पूर्ण सफलता प्राप्त करने के लिए एक किसान के पास इतनी भूमि होना आवश्यक है कि जिस पर एक जोड़ी बैल और कुटुम्ब के सब व्यक्तियों के श्रम का पूरा उपयोग हो सके । इतनी भूमि को 'आर्थिक-जोत' (Economic holdig) कहते हैं ।

भारतीय किसान के पास इससे बहुत कम ज़मीन है और वह भी एक जगह (चक) में नहीं छोटे छोटे टुकड़ों में बँटी रहती है और दूर दूर बिखरी होती है ।

जनसंख्या के बढ़ने और उद्योग-धंधों में जन सख्या को काम न मिलने से प्रत्येक व्यक्ति को भूमि पर निर्भर होना पड़ा, जिससे भूमि का बँटवारा जरूरी हो गया । संयुक्त कुटुम्ब की संस्था के टूटने से भी बँटवारा जरूरी हो गया ।

उदाहरण के लिये हम एक सम्पन्न किसान को लेते हैं जिसके पास दस दस एकड़ के चार खेत हैं और उसके चार लड़के हैं । उसके मरने पर हर एक लड़का प्रत्येक खेत का एक चौथाई भाग लेगा क्योंकि चारों खेतों की जमीन एक सी नहीं होगी इस प्रकार किसान के मरने पर १६ टुकड़े हो जावेंगे । और आगे चलकर इनके और भी अधिक टुकड़े हो सकते हैं ।

अतएव हमारे सामने भूमि सम्बन्धी दो समस्याये हैं एक तो प्रति किसान भूमि का बहुत कम होना जिस पर लाभदायक खेती नहीं हो सकती दूसरी खेतों के बिखरे होने की समस्या । पहली समस्या तो तभी हल होगी जब कि देश में उद्योग-धंधों की उन्नति हो और खेती में लगे हुए जरूरत से ज्यादा लोग उनमें काम पा सकें । बिखरे हुए खेतों की समस्या चक्रबंदी से हल हो सकती है । लेकिन चक्रबंदी हो जाने से उस भूमि का आगे विभाजन नहीं होगा इसका कोई ठीक नहीं । यदि एक बार चक्रबंदी कर देने पर भूमि का फिर विभाजन हो जावे तो फिर किया धमा सब नष्ट हो जावेगा । इसलिए जरूरत इस बात की है कि एक ऐसा कामून बना दिया जावे कि एक सीमा के बाद भूमि का बँटवारा नहीं हो सकता , उदाहरण के लिए यदि १० एकड़ भूमि की 'आर्थिक जोत, (Ecouomic Holeing) माना जावे तो यदि किसी के पास केवल १० एकड़ भूमि है तो उसके मरने

के बगैरे उसका बँटवारा न हो सके। लेकिन यह सब तभी हो सकता है कि जब देश में उद्योग-धंधों की उन्नति हो और ज़रूरत से ज्यादा खेतों में लगी हुई जनसंख्या उनमें काम पा सके।

खाद की समस्या (Manure)

फसल उत्पन्न करने से भूमि कमजोर पड़ जाती है यदि खाद डालकर भूमि की उर्वरा शक्ति को बनाए न रखा जावे तो कुछ समय के बाद भूमि अनुत्पादक हो जावेगी। खाद का उपयोग केवल भूमि की उर्वरा शक्ति को बनाए रखने के ही लिए नहीं किया जाता वरन् भूमि से अधिक से अधिक पैदावार प्राप्त करने के लिए भी किया जाता है। गाँव में जितना भी कूड़ा, मैला, पशुओं का गोबर, पेशाब, घास, पेड़ों के पत्ते, बचा हुआ चारा हो, सब खाद के रूप में परिणिन किया जा सकता है। परन्तु गाँवों में जो खाद की सामग्री उपलब्ध है वह अधिकतर या तो फेंक दी जाती है या नष्ट हो जाती है। पशुओं का गोबर तथा पेशाब बहुत बढ़िया खाद में परिणित की जा सकती है। वास्तव में यदि देखा जाये तो गोबर और पेशाब किनारे के पास यथेष्ट मात्रा में होती है और यदि वह थोड़ा सा परिश्रम करके खाद तैयार करले तो उसके खेतों की पैदावार बहुत बढ़ सकती है। परन्तु यह अत्यन्त मूल्यवान् खाद या तो कंड़े (उपली) बनाकर किसान अपने घर में ही जला डालता है अथवा बाज़ार और शहरों में बेचकर कुछ पैसे कमाता है। किसानों की स्त्रियाँ गोबर के कंड़े बनावेँ तो जहाँ वे उसके द्वारा कुछ पैसों की बचत करती हैं उनके एवज में उन्हें अधिक फसल के रूप में कई गुना अधिक लाभ हो सकता है। वर्षा में जब कड़ा बन ही नहीं सकते तब किसान गोबर का उपयोग खाद बनाने में करता है और शेष आठ महीने वह कंड़े बनाकर जलाता है, यदि खेती की पैदावार को बढ़ाना है तो किसान को पशुओं का गोबर खेती में डालना होगा। केवल गोबर ही नष्ट होता हो यही बात नहीं है। कूड़ा, चारा, पेड़ की पत्तियाँ तथा अन्य वस्तुएँ जिनकी खाद बनाई जा सकती है, वे भी गाँवों में नष्ट हो जाती है और उनकी खाद नहीं बनाई जाती। हवा, पानी तथा पशु इस मूल्यवान् खाद को नष्ट कर देते हैं। किसान 'जो भी खाद' इस समय तैयार करता है वह ढेर लगाकर

करता है। हवा कुछ खाद को उड़ा ले जाती है, वर्षा के दिनों में बहुतसा कूड़ा इत्यादि बह जाता है और पशु तथा मनुष्यों के पौों से खाद इधरे-उधरे बिखरती है। साथ ही ढेर लगाकर अच्छी खाद तैयार नहीं होती। खाद को तैयार करने का सबसे अच्छा उपाय गड़हों में खाद तैयार करना है। इससे तीन बड़े लाभ होंगे। गाँव का कूड़ा, गोबर, पेशाब, चारा, घास या पत्ती कुछ भी खराब नहीं जावेगा, एक बार वह गड़हे में डाल दिए जाने पर सुरक्षित रहेगा। दूसरे, गाँव में गन्दगी नहीं रहेगी। तीसरे, खाद अच्छी तैयार होगी।

खाद की समस्या का हल करने का सबसे उत्तम उपाय यह है कि किसान को गोबर जहाँ तक हो सके न जलाने के लिए कहा जावे और खाद के गड़हो (Manure pits) में खाद तैयार करने के लिए कहा जावे। लेकिन गाँव में ईंधन की बहुत कमी है। गाँव वालों से यह आशा करना कि वे ईंधन को मोल लेकर जलावेंगे, भूल होगी। फिर जब गाँव में ईंधन के लिए लकड़ी की कमी है तो यदि कडे (उरले) जलाना बन्द कर दिया जावेगा तो फिर ईंधन का प्रबन्ध कैसे होगा। अतएव जब तक गाँवों में अधिक लकड़ी उत्पन्न नहीं कर दी जाती तब तक गोबर का जलाना बन्द नहीं होगा। ज़रूरत इस बात की है कि हर गाँव में ऊसर तथा बँजर भूमि पर जंगल का सुहकमा ऐसे वृक्ष उत्पन्न करे जो जल्दी बड़े हाँते हो और गाँव की पंचायत उस छोटे से जंगल के टुकड़े को देख भाल करे। उस जंगल के टुकड़े में जो घास और लकड़ी पैदा होगी, हर गाँव वाले को उसमें से अपने काम के लिए लकड़ी काटने और घास छीलने का अधिकार हो। उसमें कोई अपने पशु न चरा सके। इससे गाँव में ईंधन और चारे की समस्या हल हो सकती है। और तभी गोबर खाद के लिए बचाया जा सकता है।

हड्डी की खाद

स्वास्थ्य के परिच्छेद में कहा जा चुका है कि यदि गाँव में एक और सार्वजनिक शौच कूप (Pit Latrines) बना दिये जावें तो गाँव गन्दगी से भी बच सकता है। साथ ही कुछ खाद भी मिल सकती है। कुछ लोग

हड्डी की खाद को छूने से हिचकते हैं और उसे काम में नहीं लाते किन्तु प्रचार करने से यह कठिनाई दूर हो सकती है। बड़े बड़े नगरों में वैज्ञानिक क्रियाओं द्वारा मल को दुर्गन्ध रहित और सूखा बनाया जा सकता है क्योंकि वहाँ बहुत राशि में मल होता है।

हरी खाद (Green manure)

किसान यदि चाहे तो जहाँ वर्षा अधिक होती हो अथवा जहाँ पानी आसानी से मिल सकता हो वहाँ हरी खाद (Green Manure) का भी उपयोग कर सकता है। ढ़ेंचा, सन, मूँगफली, गवार तथा कुछ दूसरी फसलें ऐसी हैं जिन्हें पैदा कर के जोत देने से खेत उर्वरा हो जाता है किन्तु यह खाद तभी उपयोगी हो सकती है जब कि भूमि में खूब नमी हो, बिना पानी के खाद देना हानिकर है।

अन्य प्रकार की खाद

पशुओं का मूत्र भी बहुमूल्य खाद है, किन्तु भारतीय किसान उसका तनिक भी उपयोग नहीं करता। उसको चाहिये कि वह अपने पशुओं को खेत पर ही बधे, यदि न हो सके तो वह पशुओं के बाँधने के स्थान पर मिट्टी बिछा दिया करे और उस मिट्टी को खेत में डाले।

यही नहीं घास-फूस, सूखी पत्तियाँ इत्यादि सभी को खाद में पारणत किया जा सकता है।

खाद के सम्बन्ध में किसान को स्लाह देते समय यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि किसान ऐसे खर्च करके अधिक खाद मोल नहीं ले सकता वह इतना निर्धन है कि कीमती खाद तो वह खेत में डाल ही नहीं सकता। यही कारण है कि भारतवर्ष में रलफेट आफ अमोनिया, नाइट्रेट, इत्यादि रसायनिक खादें तथा खली, हड्डी तथा अन्य कीमती खादों का उपयोग नहीं हो सकता है। फलो, तरकारी गन्ना तथा अन्य मूल्यवान फसलों के आधिकांश खाद के लिए उसे गंवर तथा घास-कूड़े पर ही निर्भर रहना होगा। मूल्यवान फसलों के लिए कीमती खाद का प्रचार-बढ़ाना चाहिये।

खाद के सम्बन्ध में यह बात ध्यान में रखने की है कि जिन खेतों में खाद डाली जावे उनको अधिक जल की आवश्यकता होगी।

भूमि की उपजाऊ शक्ति को बनाये रखने के दूसरे साधन फसलों का हेर फेर (Rotation of Crops)

फसल उत्पन्न करने से भूमि के कुछ तत्व कम हो जाते हैं तो फसल कुछ अन्य तत्वों को भूमि में बढ़ा देता है। अस्तु अनुभवी किसान फसलों को इस प्रकार उत्पन्न करता है कि जिससे जो तत्व एक फसल के कारण कम हो गए हैं वह दूसरी फसल पूरी कर दे। इसको फसलों का हेर फेर कहते हैं। भारतीय किसान फसलों के हेर फेर के सिद्धान्त को प्राचीन काल से जानता है। लेकिन केवल फसलों के हेर फेर से ही भूमि की उपजाऊ शक्ति को बनाये नहीं रखा जा सकता। हाँ भूमि की उपजाऊ शक्ति को तेजी से घटने से रोक जा सकता है। वही कारण है कि किसान एक खेत पर लगातार एक ही फसल कई वर्ष तक नहीं पैदा करता। वह बदलता रहता है।

भूमि को आराम देने से भी भूमि की उपजाऊ शक्ति बढ़ती है क्योंकि भूमि वायु से नाइट्रोजन इत्यादि तत्वों को ले लेती है। लेकिन इस देश में घनी आबादी के लिए भोजन इत्यादि उत्पन्न करने के कारण भूमि को यथेष्ट आराम नहीं दिया जा सकता।

युद्ध के उपरान्त देश में जो भोजन का अकाल पड़ा है उससे सरकार तथा जनता सभी का ध्यान पैदावार बढ़ाने की ओर गया है और सरकार ने विशेषज्ञों को बुलाकर खाद के सम्बन्ध में जाँच करवाई है। अब सरकार के प्रोत्साहन से ऐसे कारखाने स्थापित करने का प्रयत्न हो रहा है जो नाइट्रोजन से खाद उत्पन्न करेंगे, इस प्रकार देश में खाद की समस्या को हल करने का प्रयत्न किया जा रहा है।

फिर भी जब तक हम किसान को अपने पशुओं के गोबर, घर के कूड़े बचा हुआ घास-फूस तथा पशुओं के मूत्र से बढ़िया खाद बनाने के लिए उत्साहित नहीं करते तब तक खाद की समस्या हल नहीं हो सकती।

पशुधन (Cattle)

किसान की सबसे महत्वपूर्ण पूँजी उसके बैल हैं। जब तक किसान के गाय और बैल कमजोर हैं और गाय यथेष्ट दूध नहीं देती तब तक खेती-बारी

की रक्षा सुधार नहीं सकती। गाय और बैलों की उन्नति कैसे हो सकती है, यह हमें पिछले अध्याय में ही लिख चुके हैं।

खेती के यन्त्र (Agricultural Machinery)

भारतवर्ष के छोटे खेतों में ट्रैक्टर * तथा अन्य बड़े बड़े यन्त्र काम नहीं दे सकते, अतएव भारतवर्ष में इनका अधिक प्रचार नहीं हो सकता। कारण यह है कि छोटे छोटे खेतों पर बड़े बड़े यन्त्र न तो लाभदायक ही सिद्ध होंगे और न किसान उन्हें रख ही सकता है। जा सैकड़ों वर्षों से भारतीय किसान अपना देशी हल तथा अन्य यन्त्र काम में ला रहा है उसका मुख्य कारण यह है कि देशी औज़ार उसकी स्थिति को देखते हुए अधिक उपयोगी हैं। देशी हल तथा औज़ारों में निम्नलिखित गुण हैं। १—वे बहुत सस्ते हैं, निर्धन किसान हल तथा अन्य औज़ारों पर अधिक व्यय नहीं कर सकता। २—वे बहुत हलके होते हैं, किसान देशी हल का अपने कंधे पर उठा कर एक खेत से दूसरे खेत पर ले जा सकता है। ३—देशी हल तथा औज़ार बहुत सादे होते हैं। किसान को उनके उपयोग करने में कोई कठिनाई नहीं होती। ४—गाँव के बड़ई और लोहार देशी हल और औज़ारों की मरम्मत भली-भाँति कर लेते हैं, परन्तु आधुनिक यन्त्रों की मरम्मत गाँव के बड़ई और लोहार न कर सकेंगे। ५—देशी हल हलके होने के कारण किसान के कमज़ोर बैलों से खिंच जाते हैं परन्तु बहुत भारी हल या कोल्हू इन निर्बल बैलों से खिंच ही नहीं सकते।

यही कारण है कि आरम्भ में जब कृषि-विभाग ने विदेशी हलों और यन्त्रों का भारतवर्ष में प्रचार करना चाहा तो वे सफल नहीं हुए। किन्तु इससे यह न समझ लेना चाहिए कि देशी हलों औज़ारों में तनिक भी सुधार की आवश्यकता नहीं। सुधार की आवश्यकता है, किन्तु ऊपर लिखी हुई बातों को ध्यान में रख कर ही सुधार करने से सफलता प्राप्त हो सकती है। आवश्यकता इस बात की है कि कृषि-विभाग का इंजिनियरिंग विभाग ऐसे

* ट्रैक्टर—भूमि को जोतने के लिए भाप या तेल से चलने वाली बड़ी मशीन।

हलों और औजारों का निर्माण करे जो सस्ते हों, हलके हों और सार्वभौम हों। इस प्रकार के हलों और औजारों का आविष्कार करके जो ऊपर लिखी शर्तों को पूरा करें और भूमि को देखते हुए उपयोगी सिद्ध हों उन्हें अधिक संख्या में बनाने के लिए कारखाने खोले जावें, जिससे कि वे सस्ते से सस्ते दामों पर बेचे जा सकें। कृषि-विभाग ने अपनी पुरानी नीति को छोड़ कर अब यह नीति बनाई है, किन्तु इस दिशा में अधिक काम नहीं हुआ है। मैसूर, हिन्दुस्तान, हिसार, राजा इत्यादि कुछ हल हैं जिनका कृषि-विभाग प्रचार कर रहे हैं, परन्तु अभी इन हलों में भी सुधार की आवश्यकता है। कोल्हू, गुड़ तथा शक्कर बनाने के यन्त्र, चारा काटने के औजार, तथा अन्य प्रकार के अच्छे औजार भी तैयार किए गये हैं जिनका अधिकाधिक प्रचार करने की आवश्यकता है। हाँ, जब सहकारी फार्म (Cooperative Farm) स्थापित हों, तब बड़े यन्त्र काम दे सकते हैं।

बीज (Seed)

यह तो सभी जानते हैं कि किसान खेत में जैसा बीज डालेगा, वैसी फसल तैयार होगी। खराब बीज डालकर कोई अच्छी फसल उत्पन्न नहीं कर सकता। इस समय अधिकतर किसान महाजन अथवा गाँव के ज़मींदार से सवाए छोटों पर बीज लेकर खेत में बोते हैं। महाजन खर्चियों में भरा हुआ रहती और घुना बीज किसान को उधार देता है। खराब बीज के कारण किसान की फसल भी अच्छी नहीं होती। बीज की समस्या को हल करने के लिए दो बातें मुख्य हैं। प्रथम अच्छा बीज उत्पन्न करना, दूसरे उस बीज को किसानों को देना। भिन्न-भिन्न प्रान्तों के कृषि-विभागों ने मूल्यवान तथा महत्वपूर्ण फसलों के बीज की लगातार अनुसंधान करने के उपरान्त आशा-तीत उन्नति की है। प्रान्तों के कृषि-विभागों ने कपास, गेहूँ, गन्ना, चावल तथा जूट के बीजों में आश्चर्यजनक उन्नति की है किन्तु अभी मोटे अनाज (मक्का, ज्वार, बाजरा, जौ तथा भिन्न-भिन्न दालों) तथा सब्जियों के उत्तम बीज तैयार नहीं किए गए हैं। उत्तम बीज तैयार करने का विशेषज्ञों का है, और आशा है कि धीरे-धीरे कृषि-विभाग ऊपर लिखे फसलों के लिए उत्तम बीज उत्पन्न करेगा। परन्तु बीज की सब

समस्या बीजों को किसानों को देना है। यद्यपि कृषि-विभाग सीड-डिपो (बीज भंडार)-खोल कर गाँव वालों को उत्तम बीज देने का कार्य कर रहा है। परन्तु यह सर्वमान्य बात है कि बीज देने का कार्य कृषि-विभाग पूरी तरह नहीं कर सकता। इस समय कृषि-विभाग अपने फार्मों पर ज़मींदारों तथा किसानों के खेतों पर, अपनी देख रेख में उत्तम बीज को उत्पन्न करवा कर, अपने बीज भंडारों के द्वारा उसे किसानों को बेच देता है। सहकारी समितियाँ तथा ग्राम सुधार के कार्यकर्ता भी इस कार्य में कृषि-विभाग की सहायता करते हैं। परन्तु यह निश्चय है कि कृषि-विभाग प्रति वर्ष अनंख किसानों को उत्तम बीज यथेष्ट मात्रा में नहीं दे सकता। अतएव प्रत्येक किसान को एक बार उत्तम बीज कृषि विभाग से लेकर स्वयंप्रति वर्ष अपना बीज तैयार करना चाहिए। जिस खेत पर बीज तैयार करना हो, उसे अच्छी तरह से जोतना तथा उस पर खाद डालना चाहिए। यदि प्रत्येक गाँव में किसान अपने लिए बीज तैयार कर ले तो अच्छे बीज की समस्या हल हो सकती है। परन्तु कुछ समय के उपरान्त उत्तम बीज भी खराब होने लगता है, अतएव कुछ किसानों को सतर्कतापूर्वक यह देखते रहना चाहिए कि उनका बीज खराब तो नहीं होता जा रहा है। यदि उन्हें बीज के खराब होने के चिन्ह दृष्टिगोचर हों तो कृषि-विभाग से दूसरा उत्तम बीज ले कर फिर कुछ वर्षों तक उसे अपने खेतों पर पैदा करके प्रति वर्ष बोते रहना चाहिए। किसान को अपने उत्तम बीज को शुद्ध बनाए रखने का सदा प्रयत्न करना चाहिए।

कृषि-विभाग द्वारा दिया हुआ बीज कुछ अधिक कीमती होता है। किसान को इसकी चिन्ता न करनी चाहिए। बीज का थोड़ा अधिक मूल्य देकर भी उत्तम बीज खरीदना चाहिए। फिर वह स्वयं प्रति वर्ष बीज बचा कर रख सकता है, या किसी ऐसे पड़ोसी से वह उत्तम बीज ले सकता है कि जिसने उसको बोया हो। जा कुछ भी हो किसान को बीज अच्छा ही डालना चाहिए।

सिंचाई (Irrigation)

भारतवर्ष के अधिकांश प्रान्तों में खेती के लिए सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है; क्योंकि वर्षा यथेष्ट नहीं होती, और यदि वर्षा होती है, तो वह वर्षा

के केवल तीन य चार महीनों में, अतएव रबी की फसल बिना सिंचाई के ही नहीं सकती। आसाम, पूर्वीय बंगाल तथा पश्चिमीयघाट के समुद्र-तट के मैदान को छोड़ कर किसी भी प्रान्त में खेती सिंचाई के बिना नहीं हो सकती। अधिकतर प्रान्तों में तो पानी का अकाल रहता है, परन्तु फिर भी किसान वर्षा से जिनना लाभ उठाया जाना चाहिये नहीं उठाता।

वर्षा का जल (Rain water)

गांवों में भूमि बहुत ऊबड़-खाबड़ होती है, कहीं कहीं बड़े गहरे नाले बन जाते हैं और कहीं भूमि अधिक ऊँची और अधिक नीची होती है। इसका फल यह होता है वर्षा का जल भूमि पर गिरते ही बड़ी तेजी से बहता है, उन प्राकृतिक नालों तथा निचली भूमि के कारण उसकी तेजी और भी बढ़ जाती है। जहाँ ऊबड़-खाबड़ जमीन अधिक होती है वहाँ वर्षा के दिनों में ऐसा प्रतीत होता है कि मानो कोई बड़ी नदी तेजी से बहती हो। उस क्षेत्र का सारा जल शीघ्रतापूर्वक बह जाता है और साथ ही वह भूमि के ऊपर की उपजाऊ मिट्टी भी बहा ले जाता है। पानी उस क्षेत्र पर अधिक देर तक नहीं ठहरता, अतएव भूमि वर्षा के जल को सोखने में असमर्थ रहती है। भूमि के अन्दर यथेष्ट जल न जाने से भूगर्भ बहने वाला जल सूखता है, और अधिक गहराई पर चला जाता है जिसके कारण कुये बेकार हो जाते हैं। प्रदेश के ऊबड़-खाबड़ होने से केवल इतनी ही हानि नहीं होती, इससे भी भयंकर हानि यह होती है कि शीघ्रतापूर्वक बहने के कारण जल कटाव करता है, अर्थात् भूमि को काटता है (Erosion of soil) धीरे धीरे और अधिक नाले बन जाते हैं और जल का उपद्रव और भी अधिक हो जाता है। कुछ समय के उपरान्त वह सारा प्रदेश ऊबड़-खाबड़ भूमि का रूप धारण कर लेता है, और खेती के अयोग्य बन जाता है। जल के कटाव से भूमि की रक्षा करने का एकमात्र साधन यह है कि उस ऊबड़-खाबड़ प्रदेश में वृक्ष लगाये जावे और इस प्रकार जल को भूमि के नष्ट करने से रोका जावे। इसके अतिरिक्त यदि गाँव की भूमि को समतल तथा चौरस करा दिया जावे और चारों ओर कुछ ऊँची मेड़ बना दी जावे तो वर्षा का जल बहुत देर तक पृथ्वी पर रहने के कारण भूमि उसे अधिक सोख ले। परन्तु यह तभी हो सकता है जब कि सारा गाँव

संगठन रूप में इस कार्य को करे। इससे तीन बड़े लाभ होंगे, एक तो भूमि यथेष्ट जल पी लेगी जिससे सिंचाई की कम आवश्यकता होगी, दूसरे उस क्षेत्र के कुओं में सिंचाई के लिए यथेष्ट जल रहेगा, तीसरे भूमि का नाश नहीं होगा।

कुओं के द्वारा सिंचाई (Well Irrigation)

भारत वर्ष में कुएँ सिंचाई के मुख्य आधार हैं। यद्यपि नहरों के द्वारा भी यथेष्ट सिंचाई होती है परन्तु कुओं का महत्व इस कारण है कि उनके द्वारा किसान सिंचाई के लिए स्वतन्त्र हो जाता है। वह जब चाहे सिंचाई कर सकता है। कुओं का पानी नहर के पानी से फसल के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध होता है। अतएव जिस किसी भी प्रदेश में मीठा पानी साधारण दूरी पर मिलता है वहाँ कुओं के द्वारा ही सिंचाई होनी चाहिये। जहाँ नहरें हैं वहाँ भी कुएँ खोदे जाने चाहिए जिससे किसान हर समय पानी पा सके।

कुएँ से पानी निकालने के लिए भारतवर्ष में रँहट तथा चरसा दो साधनों का उपयोग होता है। रँहट (Persian Wheel) से एक लाम यह है कि एक ही आदमी रँहट चला सकता है। यहाँ तक कि एक छोटा लड़का भी रँहट को चला सकता है। रँहट में लड़के को केवल बैलों को हाँकने का ही काम होता है। परन्तु चरसा में दो आदमियों की आवश्यकता होती है। एक बैलों को हाँकता है दूसरा चरसा (पुर) को लेता है। राजपूताना तथा मध्यभारत में चरसा (पुर) के निचले भाग में चमड़े का एक मोटा नल और जुड़ा रहता है, उस नल का मुँह एक पतली डोरी से बँधा रहता है। डोरी का सिरा बैल हाँकने वाले के हाथ में रहता है। जब पुर कुएँ के ऊपर आ जाता है तो बैल हाँकने वाला उस डोरी को ढीला कर देता है और पुर का पानी उस चमड़े के नल द्वारा गिर पड़ता है। इस प्रकार पुर को लेने वाले मनुष्य की आवश्यकता नहीं पड़ती। फिर जो कुएँ बहुत गहरे नहीं हैं उन पर रँहट लगाना ही अधिक सुविधाजनक होता है।

संयुक्त प्रांत ट्यूब-वेल (Tube wells in U. P.)

संयुक्तप्रान्तीय सरकार ने लगभग दो करोड़ रुपये व्यय करके १६५

वेल खदवाये हैं और भी खोदे जा रहे हैं। बदायूँ, मुजफ्फरनगर

बिजनौर, मेरठ, बुलन्दशहर, अलीगढ़, तथा मुरादाबाद जिलों में बहुत बड़ी संख्या में ट्यूब-वेल खोदे जा रहे हैं और गंगाजी की नहर के जल से तैयार की हुई बिजली के द्वारा यह ट्यूब-वेल चलते हैं। ट्यूब-वेल लगभग एक हजार एकड़ भूमि को सींच सकता है ट्यूब-वेल के द्वारा सिंचाई करने में दो लाभ हैं। प्रथम तो किसान को जब वह चाहे तब सिंचाई के लिए पानी मिल सकता है। नहर की भाँति वह इस आशा में बैठा नहीं रहता कि जब नहर में जल आवेगा तब सिंचाई हो सकेगी। इसका फल यह होता है कि जब नहर में पानी आता है तो किसान आवश्यकता से अधिक पानी खेत में देता है जिससे फसल को हानि पहुँचती है क्योंकि किसान को यह ज्ञान नहीं होता है कि अब नहर में कब पानी आवेगा। नहर का पानी अनिश्चित है और ट्यूब-वेल का पानी निश्चित है ट्यूब-वेल के द्वारा सिंचाई करने पर जितना भी पानी किसान लेता है उसका उपयोग हो जाता है, इस कारण किसान पानी को किफायत से खर्च करता है। ट्यूब-वेल से एक बहुत बड़ा लाभ यह होगा कि गाँवों में जहाँ पीने के लिए शुद्ध जल की कमी है वहाँ शुद्ध जल मिल सकेगा। यदि प्रत्येक ट्यूब-वेल पर रेडियो लगा दिया जावे तो गाँवों से नीरस जीवन में मनोरंजन तथा ज्ञानवर्धन का एक अच्छा साधन उपलब्ध हो सकता है। ट्यूब-वेल के द्वारा एक लाभ और भी है— अर्थात् जिन जिलों में होकर नहरें गई हैं उनमें नहरों के दोनों ओर ट्यूब-वेल बना पानी नहरों में डाल दिया जाता है जिससे नहरा में प्रान्त के पश्चिमीय जिलों के लिये यथेष्ट पानी हो जाता है। पश्चिमीय जिलों में वर्षा कम होती है और सघारणतः नहरों में भी वहाँ के लिए यथेष्ट जल नहीं रहता। बात यह है कि पूर्वीय जिलों में ही नहर का जल बहुत कुछ समाप्त हो जाता है जब पश्चिमीय जिलों में नहरें पहुँचती हैं तो उनमें यथेष्ट जल नहीं रहता। अब और जिलों में भी ट्यूब-वेल खोदे जावेंगे। प्रान्तीय सरकार अब इस योजना को पूर्वी जिलों में चला रही है।

नहर के द्वारा सिंचाई (Canal Irrigation)

नहरों के द्वारा सिंचाई उत्तर के प्रान्तों में बहुत होती है। सिंध, पंजाब तथा संयुक्त प्रान्त बहुत कुछ नहरों पर ही अवलम्बित हैं। किसान नहर के पानी का कभी दुरुपयोग करते हैं, आवश्यकता से अधिक पानी लेने से

देते हैं। कुयें के पानी का किसान बहुत सावधानी से तथा सतर्कता से खर्च करते हैं, किन्तु नहर के पानी के प्रति वे उदासीन रहते हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि प्रत्येक फसल के लिये प्रति बीघा आवपाशी की दर निश्चित कर दी गई है। उदाहरण के लिये यदि एक किसान ईख की सिंचाई करता है और प्रति बीघा कम पानी खर्च करता है तो उसको आवपाशी प्रति बीघा उतनी ही देनी होगी जितनी कि एक दूसरा किसान देता है यद्यपि वह पहले किसान से कहीं अधिक पानी खर्च करता है। अतएव प्रत्येक किसान को यही लालच होता है कि वह अधिक से अधिक पानी खर्च करे इससे भूमि को हानि होती है। अनुमान किया जाता है कि संयुक्त प्रान्त तथा पंजाब में जिनकी भी नहरें निकल सकती थीं निकाल दी गईं।

तालाब (Tanks)

पहाड़ी प्रदेश में अधिकतर बाँध बनवाकर वर्षा के जल को रोक लिया जाता है और उससे सिंचाई की जाती है। राजपूताने के दक्षिणी भाग, मालवा, मध्य भारत तथा दक्षिण भारत में अधिकतर तालाबों से ही सिंचाई होती है, क्योंकि नहरें वहाँ निकाली ही नहीं जा सकती। कुआँ से सिंचाई अवश्य होती है परंतु कुआँ को खोदना तथा उनको बनाना इन पहाड़ी प्रदेशों में व्यवसाय है। राजपूताना तथा मध्य भारत के देशी राज्यों में जहाँ राज्यों ने बड़े बड़े बाँध और तालाब सिंचाई के लिये बनवाये हैं वहाँ गाँव वाले ने सामूहिक रूप से भी छोटे छोटे बाँध बनाकर सिंचाई के साधन उपलब्ध कर लिये हैं। इन तालाबों की मरम्मत भी गाँव वाले मिल कर स्वयं करते हैं। साधारणतः यह नियम होता है कि गाँव के प्रत्येक व्यक्ति को एक घन फुट मिट्टी बाँध कर डालनी पड़ती है। दक्षिण में ब्रिटिश शासन से पूर्व इस प्रकार के हजारों छोटे-छोटे बाँध (पट बंधा) गाँव वाले बना लेते थे किन्तु ब्रिटिश शासन काल में वे तालाब नष्ट हो गए। प्रयत्न करना चाहिए कि किसान इस प्रकार सामूहिक रूप से वर्षा के जल का जितना भी उपयोग कर सकें उतना करें।

यदि कहीं भूमि बहुत ऊँची है और नदी, तालाब अथवा नहर बहुत नीचे पर है वहाँ बिजली, आयरल ऐंजिन अथवा रंइट जो भी सुविधाजनक तथा प्राप्य हो, उसका उपयोग पानी के ऊपर उठाने में किया जा सकता

है। बिजली का उपयोग तो उसी क्षेत्र में किया जा सकता है। जहाँ नहर सस्ते दामों पर उत्पन्न की जाती हो। यह कार्य केवल सरकार कर सकती है। आइल एंजिन जमींदार तथा समृद्धिशाली किसान लगा सकते हैं। रैंडट का उपयोग प्रत्येक किसान कर सकता है।

यह अत आवश्यक है कि देश में खाद्य-पदार्थों की उपज बढ़ाई जाय। हमारे यहाँ खेता की एक मुख्य कठिनाई सिंचाई भी है। नहरों और बाँधों की व्यवस्था करने में कई वर्ष लगेंगे। अतः इस बीच में तालाबों की ओर ध्यान देना अति आवश्यक है। सन् १९४८ से संयुक्त-प्रांत तथा अन्य प्रांतों की सरकारों ने तालाब खुदाई का आन्दोलन आरम्भ किया है। पिछली कई शताब्दियों से हमारे तालाबों की ओर बहुत कम ध्यान दिया गया है। अतः तालाब मिट्टी से भर गए हैं और टूटी-फूटी अवस्था में हैं। प्रांतीय सरकार इन तालाबों की पुनः खुदाई और मरम्मत तथा नए तालाबों की खुदाई के लिए प्रयत्नशील हैं। वह देशांतियों के सहयोग से इस कार्य को आगे बढ़ा रही है।

साख (Credit)

प्रत्येक धंधे में साख की आवश्यकता पड़ती है। उत्पादन कार्य (Production) में लगे हुये प्रत्येक व्यक्ति को पूंजी (Capital) की आवश्यकता होती है। किसान को खेती के लिये ऋण लेना पड़ता है। परन्तु भारतवर्ष में किसान इतना गरीब है कि उसे अनुत्पादक (Unproductive) तथा उत्पादक (Productive) सभी कार्यों के लिये महाजन से ऋण लेना पड़ता है। महाजन किसान की गरीबी का अनुचित लाभ उठा कर उससे बहुत अधिक सूद लेता है। ऋण इसलिये लिया जाता है कि उससे खेती की जावे और खेती के लाभ से सूद सहित ऋण चुका दिया जावे। परन्तु यदि सूद इतना अधिक हो जितना कि खेती से लाभ हो ही न सके तब तो ऐसा ऋण किसान को सदा के लिये ऋणी बना देता है। यही अवस्था भारतीय किसान की है। ग्रामीण ऋण के सम्बन्ध में 'ग्रामीण ऋण तथा उसके कारण' शीर्षक अध्याय में विस्तार पूर्वक लिखा जायगा।

अतएव किसानों को साख का प्रबन्ध करने के लिये अपने अपने गाँव

में 'कृषि-सहकारी-साल-समिति' (Cooperative Credit Society) की स्थापना करना चाहिये। "कृषि-सहकारी-साल समिति" के विषय में एक पृथक अध्याय में विस्तारपूर्वक लिखा जायगा।

श्रम और संगठन (Labour and organisation)

श्रम और संगठन के अन्तर्गत किसानों का स्वास्थ्य, उनकी शिक्षा, फसलों के शत्रु तथा पैदावार को बँचने की समस्याओं का वर्णन होगा। ग्रामीण जनता का स्वास्थ्य तथा उनकी शिक्षा के सम्बन्ध में हम पूर्व ही लिख चुके हैं। जब तक किसानों का स्वास्थ्य अच्छा न होगा और उन्हें शिक्षित नहीं बनाया जावेगा तब तक वे अच्छे खेतिहर नहीं बन सकेंगे।

फसलों के शत्रु (Enemies of crops)

केवल अच्छे बीज, खाद और हल-बैल से ही खेती-बारी की उन्नति नहीं हो जावेगी। यदि एक ओर फसलों को अच्छा बनाने का प्रयत्न किया जावे और दूसरी ओर फसलों के शत्रु उन्में नष्ट कर दें तो सारा प्रयत्न निष्फल जावेगा। अतएव फसलों को उनके शत्रुओं से बचने की बहुत आवश्यकता है। फसलों के दो प्रकार के शत्रु होते हैं। एक तो फसलों के कीड़े जो फसलों को नष्ट कर देते हैं दूसरे वे जंगली तथा पालतू पशु और पक्षी जो फसलों को खा जाते हैं।

फसलों के कीड़े बहुत भयंकर होते हैं। प्रत्येक फसल का कोई कीड़ा होता है। जिस क्षेत्र में भी कीड़ा लग जाता है उस क्षेत्र की फसल को वह नष्ट कर डालता है। फिर कोई खेत उससे बच नहीं सकता। कभी तो फसलों के कीड़ों का ऐसा भयंकर प्रकोप हो जाता है कि साधारण प्रयत्न से वह जाता ही नहीं। तब कृषि-विभाग को ऐसे बीज उत्पन्न करना पड़ता है जिसमें वह कीड़ा नहीं लग सकता। भारतवर्ष में ही केवल यह समस्या ही ऐसी बात नहीं है—जर्मनी और अमेरिका जैसे देश में भी फसलों के कीड़ों की समस्या उठ खड़ी होती है।

फसलों के कीड़े विदेशों से भी आ सकते हैं इस कारण प्रत्येक देश ने ऐसे कानून बना दिये हैं कि जिससे ऐसी कोई खेती की पैदावार जिसमें बीमारी अथवा कीड़े लगे हों देश में आने से रोकी जा सकती है। सन् १९१४ में भारतवर्ष में भी एक कानून बना दिया गया जिसके अनुसार यदि

बन्दरगाह के अधिकारी किसी खेती की पैदावार को कीड़ों से युक्त तो उसको देश के अन्दर न आने दें। इस कानून के द्वारा विदेशों से कीड़ों का आरतवर्ष में आने का भय तो नहीं रहा, किन्तु देश के अन्दर फसलों के कीड़े तथा बीमारियों की कमी नहीं है।

फसल के कीड़ों को नष्ट करने अथवा उन्हें उत्पन्न ही न होने देने के लिये यह आवश्यक है कि कृषि-विभाग तथा किसानों का पूरा सहयोग हो। यही नहीं आवश्यकता पड़ने पर सारे गाँव का संगठित रूप में कीड़ों को नष्ट करने के लिये प्रयत्न करना चाहिये। यह ध्यान में रखने की बात है कि यदि इस वर्ष कुछ खेतों में कीड़ा है तो अगले वर्ष वह अन्य खेतों पर भी आक्रमण करेगा। टीड़ी और फसल के कीड़ों का कृषि विभाग के बतलाये हुये उपायों के अनुसार सामूहिक रूप से ही नष्ट किया जा सकता है। इस कार्य में सम्पूर्ण गाँव के सहयोग की आवश्यकता होती है।

साधारणतः फसल में बीमारी अथवा कीड़े लगने के वे ही कारण हैं जो की मनुष्य के शरीर में रोग उत्पन्न के कारण हैं। जो खेत ठीक तरह से जोते नहीं जाते जिनमें कम खाद डाली जाती है अथवा कम सड़ी खाद डाल दी जाती है, जिस खेत में निराई नहीं होती, आवश्यकता से अधिक अथवा बहुत कम पानी दिया जाता है, उस खेत में फसल निर्बल होती है और उस पर बीमारी तथा कीड़ों का आक्रमण शीघ्र होता है। किसान को निरन्तर फसल पर अपनी दृष्टि रखनी चाहिए और जैसे ही उसे ज्ञात हो कि फसल में बीमारी या कीड़ा लग रहा है उसे तुरन्त कृषि-विभाग से सलाह लेकर उसका इलाज करना चाहिए।

फसल में कीड़ों के लगने का एक मुख्य कारण यह है कि किसान अथवा वे महाजन और जमींदारी जाँ कि खेत्तियों और कोठारों में बीज के लिए अनाज भरते हैं, बीज की सफाई का ध्यान नहीं रखते, और उन खेत्तियों या कोठारों को ही साफ करते हैं। इसका फल यह होता है कि बीज खराब हो जाता है, उसमें कीड़ा लग जाता है, और जब फसल तैयार होती है तो कीड़ा करोड़ों की संख्या में बढ़ कर फसल को नष्ट करता है। बीज तथा बीज भंडार को कीड़ों से मुक्त करने का यह एक सरल तथा सफल उपाय है कि जहाँ बीज रखा जाता है उसे हर बार जब उसमें बीज भरा जावे साफ

कर निम्न स्वे, और बीज को भी साफ कर लिया जावे। इसके उपरान्त उस कोठार को चारों ओर से गीली मिट्टी से बन्द करके, एक अंगीठी में जलते हुए कोंयलों पर गंधक डाल कर उसे कोठार में रख दिया जावे। जब खूब धुआँ भर जावे तो कोठार का दरवाजा बन्द कर दिया जावे। दो दिन बन्द रख कर कोठार को साफ किया जावे तब उसमें बीज भरा जावे।

परन्तु इतने पर भी यदि किसी के खेत में अथवा अधिक खेतों में कीड़े लग जावें तो उस समय से पूर्व जब कीड़े अपनी वशवृद्धि करते हैं उनको नष्ट कर दिया जाना चाहिए। उनके अंडे तथा नर और मादाओं के जिस प्रकार कृषि विभाग बतलाए अवश्य नष्ट कर डालना चाहिए। इन कीड़ों को नष्ट करने तथा टिड्डी के अंडों और असंख्य टीढ़ियों को भूमि से खोद कर निकालने तथा उन्हें खाइयों में दबा कर मार डालने के लिए बहुत से व्यक्तियों की आवश्यकता होगी। कृषि-विभाग भिन्न भिन्न फसलों के कीड़ों की कब और कैसे नष्ट किया जाना चाहिए इसका प्रचार करना चाहिए और गाँव के लोगों को मिला कर कीड़ों के विरुद्ध युद्ध करना चाहिए इस कार्य में गाँव के रकाउट (बालचर) तथा गाँव की पाठशाला के विद्यार्थियों से खूब सहायता मिल सकती है। गाँव के बालचरों और स्कूल के विद्यार्थियों को यह बतलाया जाना चाहिए कि इन कीड़ों को नष्ट करना गाँव की सबसे बड़ी सेवा है।

जिस खेत में कीड़ा लग चुका हो उसकी फसल काट लेने के उपरान्त उस खेत में आग लगा देनी चाहिए और साल नया और अच्छा बीज मोल लेकर खेत में डालना चाहिए। इतना करने पर ही कीड़े को समूल नष्ट किया जा सकता है।

परन्तु जब कोई कीड़ा बहुत बड़े क्षेत्र में बहुत दिनों तक फैलता रहता है तब इस प्रकार सारे प्रयत्न करने पर भी वह दूर नहीं होता। उस दशा में कृषि-विभाग को ऐसा बीज उत्पन्न करना चाहिए कि जिसमें वह कीड़ा न लग सके।

कीड़ों के अतिरिक्त जंगली पशु भी खेती का नुकसान करते हैं। बम्बई प्रान्त में इस समस्या पर बिचार करने के लिये एक कमेटी बिठलाई गई थी उसका अनुमान था कि केवल बम्बई प्रान्त में प्रति वर्ष जंगली

पशुओं के द्वारा सत्तर लाख रुपये की खेती की हानि होती है। सुअर, भेड़, चूहे, जंगली बिलाव, बन्दर, तथा अन्य गली पशु खेती को नष्ट कर डालते हैं। जंगली पशुओं से फसल की रक्षा करने के दो उपाय हैं। (१) खेती के चारों ओर कांटेदार झाड़ी अथवा मिट्टी की ऊँची बाड़ बनाई जावे जिससे कि जंगली जानवर फसल को नष्ट न कर जा सकें। (२) गाँव वालों को ऐसे जानवरों को मारने के लिए बन्दूक का लायसेंस दे दिये जावे। किन्तु बाड़ बनाना अथवा कोई कांटेदार झाड़ी खेतों के चारों ओर लगाना श्रमसाध्य तथा खर्चीला है यदि खेत बिल्खरे-हुए न हों, एक चक्र में हों तो किसान बाड़ अथवा कांटेदार झाड़ी लगा सकता है।

खेती की पैदावार बेचने की समस्या

(Marketing of Agricultural Produce)

किसान के लिए केवल यही आवश्यकता नहीं है कि वह खेत में अधिक पैदावार उत्पन्न करे। अच्छी फसल उत्पन्न करने के साथ ही यह भी आवश्यक है कि वह अपनी पैदावार का अधिक से अधिक मूल्य भी प्राप्त करे। यदि किसान खेत में अधिक पैदावार उत्पन्न कर भी ले किन्तु उसको अपनी पैदावार का कम मूल्य मिले तो उसका परिश्रम और व्यय व्यर्थ जावेगा। अतएव किसान को अपनी पैदावार का अधिक से अधिक मूल्य मिलना चाहिये। परन्तु आज कल जैसी अवस्था है उसके कारण किसान को अपनी पैदावार को सस्ते दामों पर बेच देना पड़ता है जैसा कि क्रय-विक्रय सहकारी समितियों की आवश्यकता बतलाते हुये पहिले कहा जा चुका है।

किसान की निर्धनता उसको सस्ते दामों पर अपनी पैदावार बेचने के लिए विवश करती है। यदि वह किसी महाजन अथवा व्यापारी का ऋणी है तो उसको उस व्यापारी अथवा महाजन के हाथ पैदावार बेचनी होती है। कहीं कहीं ऋण लेते समय यह ही बात तय हो जानी है कि किसान फसल सस्ते दामों पर अपने महाजन को देगा। यदि किसान अपने महाजन को बेचने के लिये बधा नहीं ही तो भी उसे लगान, आबपाशी तथा ऋण चुकाने के लिये फसल तैयार होते ही बाजार में बेचनी पड़ती है। उस समय भाव गिरा हुआ होता है। अतएव किसान को

सहकारी विपणन समितियों के द्वारा ही अपनी फसल बेचना चाहिये तभी उसकी अपनी पैदावार का अच्छा मूल्य मिल सकता है।

गाँवों की सड़कें (Village Roads)

इस सम्बन्ध में एक बात और ध्यान देने योग्य है। गाँवों में पक्की सड़क तो है ही नहीं, अधिकांश गाँवों की कच्ची सड़कें भी इतनी खराब होती हैं कि गाँव से पैदावार को गाड़ियों में भरकर मंडियों तक लाना बहुत कठिन होता है। बरसात में तो वे दलदल के अतिरिक्त और कुछ नहीं होती गाँव की सड़कें खराब होने के कारण गाँव में गमनागमन के साधनों का नितान्त अभाव होता है। यह ध्यान में रखने की बात है कि जब तक गाँवों की सड़कों का सुधार नहीं होता तब तक गाँवों की आर्थिक दशा भी नहीं सुधर सकती। परन्तु गाँव की सड़कों को सुधारने का काम इतना खर्चीला है कि जब तक किसान और ज़मींदार कुछ स्वयं करने को तैयार न हों तब तक सरकार भी कुछ नहीं कर सकती। किन्तु सड़कों को सुधारने के लिये सारे गाँव को संगठित रूप में प्रयत्न करना होगा। कहीं कहीं एक से अधिक गाँवों के सहयोग की आवश्यकता होगी। सड़क सुधर जाने पर बैलों की टांगे और गाड़ियों के पहिये नहीं टूटा करेगे।

मंडियों का पुनर्संगठन (Market Organisation)

मंडियों में किसान को कई तरह से लूटा जाता है जैसे कि पहले बताया जा चुका है। दलाल अधिकतर व्यापार को लाभ करने का प्रयत्न करते हैं। किसान के दामो में से बहुत सा धर्मादा (गऊशाला, पाठशाला, मन्दिर, प्याऊ, धर्मशाला इत्यादि के लिये) तथा मनमाने खर्च काट लिये जाते हैं। बहुत से स्थानों पर बाँट भारी रख लिये जाते हैं। और तौलनेमें किसानों को धोखा दिया जाता है। कभी कभी भाव तप हा जाने पर जब किसान गाड़ी खाली कर देता है और तौल शुरू हो जाता है तब यह कह कर कि अन्दर माल खराब निकला उसको मूल्य कम लेने पर विवश किया जाता है। इस प्रकार के अनेक दोष मंडियों में हैं। शाही कृषि कमिशन ने यह सिफारिस की है कि प्रत्येक प्रान्त में मंडी कानून (Market Act) बना कर इन दोषों को दूर कर दिया जावे। परन्तु इन दोषों के दूर हो जाने पर भी

किसान को तो अपनी पैदावार को सहकारी विक्रय समिति के द्वारा ही बेचना चाहिये ।

किसान को सनक तथा परिश्रमी होना चाहिए

खेती में सफलता तभी मिल सकती है जब कि किसान उन सब बातों को अपनावे जिनसे अच्छी फसल उत्पन्न होने की सम्भावना हो और लगकर खेत पर परिश्रम करे । भारतवर्ष में यद्यपि अधिकांश खेतहर जातियाँ परिश्रमी हैं किन्तु हिन्दुओं की ऊँची कही जाने वाली जातियों के लोग अच्छे किसान नहीं होते । खेती एक बहुत महत्वपूर्ण धंधा है । उसको नीचा नहीं समझना चाहिये । किसान का परिश्रम के अतिरिक्त बुद्धि से काम लेना चाहिये । उसे अपनी भूमि की उपजाऊ शक्ति को ध्यान में रखकर वही फसल बोनी चाहिये जिससे उसे अधिक लाभ हो । बाजार की माँग (Demand) को भी उसे ध्यान में रखना चाहिये । केवल उसे इसलिये कपास नहीं बोना चाहिये कि वह पहले भी कपास बोता था । उसे कपास की माँग और उसके मूल्य को देखकर ही उसे बोना चाहिये । फसलों के ढेर फेर (Rotation of Crops) का उसे पूरा ध्यान रखना चाहिये जिससे कि भूमि की उपजाऊ शक्ति घटने न पावे ।

अभ्यास के प्रश्न

- १—हिन्दोस्तान में खेतों की दशा खराब क्यों है ?
- २—बिखरे हुए छोटे छोटे खेतों से क्या हानि हाती है ?
- ३—खेतों की चक्रबन्दी से क्या लाभ होते हैं ?
- ४—किसान गोबर की खाद क्यों नहीं बनाता ? गड़हों में खाद तैयार करने से क्या लाभ होगा ?
- ५—किसान खेती के बड़े बड़े यन्त्रों और आधुनिक औजारों को काम में क्यों नहीं लाता ?
- ६—हिन्दोस्तान में किसान की ज़रूरतों का देखते हुये कैसे खेती के औजार और यन्त्र उपयुक्त होंगे ?
- ७—किसान ज्यादातर कैसे बीज खेत में डालता है ? किसान को अच्छा बीज कहाँ से और कैसे प्राप्त हो सकता है ?

दस वर्षों में जल से भूमि का कटाव (Erosion of Soil) क्या होता है और उससे क्या हानि होता है ?

६—ट्यूब-वेल द्वारा सिंचाई से क्या क्या लाभ है ? संयुक्त प्रान्त के किन किन जिलों में ट्यूब-वेल हैं ?

१०—नहर के पानी से जमीन कमजोर क्यों हो जाती है ?

११—फसलों के कौन से शत्रु हैं और उनसे क्या हानि होती है ?

१२—फसलों को उसके शत्रुओं से कैसे बचाया जा सकता है ?

१३—फसलों में कीड़े कैसे लग जाते हैं ?

१४—किसान अपनी पैदावार का अधिक से अधिक मूल्य क्यों नहीं पाता ?

१५—हिन्दोस्तान में मंडियों के वर्तमान प्रबन्ध से किसान को क्या हानि है ?

तेइसवाँ अध्याय

मुकदमेबाजी (Litigation)

आज भारतवर्ष के ग्रामों में ईर्ष्या, द्वेष, कलह का साम्राज्य है। साधारण सी बातों पर फौजदारी हो जाना, लम्बे मुकदमों के कारण घर के घर तबाह हो जाना। गांवों में आये दिन की बात हो गई है। मुकदमेबाजी ग्रामीणों के शत्रुणी होने का एक मुख्य कारण है। भारतीय न्यायालयों में किसानों को किस प्रकार लूटा जाता है यह किसी से छिपा नहीं है। मुकदमेबाजी एक ऐसा भयंकर रोग है कि जिसके कारण गांवों के लोग दिवालिये होते जा रहे हैं। प्रसिद्धि अर्थशास्त्री, श्री एम० एल० डार्लिङ्ग का तो यहां तक कहना है “जिस प्रकार अंग्रेजों का जातीय खेल क्रिकेट है उसी प्रकार मुकदमेबाजी भारतीयों का जातीय खेल प्रतीत होता है”। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि यह रोग यहां बुरी तरह फैला हुआ है।

यह तो सर्वमान्य बात है कि जुर्म करने की भावना का उदय सामाजिक विघमना अथवा समाज की गिरी हुई दशा के कारण होता है। यदि मनुष्य जिस वातावरण में रहता है वह अच्छा नहीं है तो वह मनुष्य भी अच्छा

नहीं बन सकता। भारतीय ग्रामीण जिस प्रकार का जीवन व्यतीत करता है उसका परिणाम इसके अतिरिक्त और हो ही क्या सकता है कि आपस में लड़े और आपस में सुकदमेबाजी करे। भारतीय ग्रामीण अधिकांश में अशिक्षित, ऋण के बोझ से दबा हुआ, अस्वस्थ, निर्धन, फिजूलखर्ची, खराब रस्मों को मानने वाला कहीं कहीं नशा पीने वाला, आलसी मनोरंजन के साधनों से हीन, तथा अत्यन्त गंदे स्थानों पर रहता है। इस प्रकार के वातावरण में रहकर उसका हमेशा शान्तिप्रिय रहना कठिन है। यही कारण है कि कृषक जो स्वाभावतः शान्तिप्रिय होता है कभी कभी कलहप्रिय हो उठता है और अपना सर्वनाश कर लेता है। कुछ विद्वानों का तो यहां तक कहना है कि गांवों में मनोरंजन के तथा खेलने के साधन न होने के कारण उसका लड़ने तथा झगड़ने में भी कुछ मन बहलाव होता है, इसी कारण सीधा सादा किसान कभी कभी लड़ बैठता है। यदि गांवों में मनोरंजन के साधन उपलब्ध हो जायें और गांवों की दशा में सुधार हो जाये तो लड़ाई-झगड़े तथा सुकदमेबाजी में बहुत कमी हो सकती है।

लड़ाई झगड़े को दूर करने के लिए निम्नलिखित बातें आवश्यक हैं—

(१) लाभदायक कार्य, सुवर्चिपूर्ण मनोरंजन तथा खेल, (२) आकर्षक घर, (३) संगठित गांव।

खेती का सुधार होने के अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि किसान को ग्राम उद्योग घरे सिखाये जायें जिससे कि वह बेकारी के समय उन धंधों से कुछ कमा ले। इससे यह लाभ होगा कि वह काम में लगा रहेगा और जोड़ साल में चार-पाँच महीने वह बेकार रहता है वह न रहेगा। इसके अतिरिक्त मनोरंजन तथा खेल-कूद के साधन भी उसको मिलने चाहिए।

आकर्षक गृह (Attractive Homes)

केवल इतने से ही काम न चलेगा, हमको गांव में रहने वालों के घरों को अधिक सुन्दर तथा आकर्षक बना देना चाहिए। जब मनुष्य का घर में मन नहीं लगता है, उसकी स्त्री गृहस्थी को सुखमय बनाना नहीं जानती, खाना पकाना, घर को सुन्दर और साफ रखना तथा बच्चों का लालन पालन करना नहीं जानती तथा पति के साथ सहयोग नहीं करती तो पुरुषों में लड़ाई-झगड़े की मनोवृत्ति उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक है। यदि घर

सुन्दर और आकर्षक हो, यह स्वामिनी घर का संचालन सभी प्रकार करती हो और यह स्थी सुख मय हो तो कौन अपने स्वर्ग सहश घर को छोड़ कर शराब पीने वाले अथवा लड़ाई-भगड़ा करने वालों में सम्मिलित हागा। सुखमय घर जुर्म तथा लड़ाई भगड़े को कम करने का मुख्य साधन है।

इसके अतिरिक्त दो बातें और हैं गाँव वालों में आत्मसंयम (Self-Control) तथा स्वाभिमान लेश मात्र भी नहीं रहा है। किसी भी जाति में यह दो गुण मिलजुल कर रहने के लिये अत्यन्त आवश्यक हैं। परन्तु यह गुण गाँव वालों में सभी आ सकते हैं जब कि गाँव की स्त्रियाँ बच्चों का लालन पालन करना जानती हों तथा वे शिक्षित हो, जिससे कि आरम्भ में ही गाँव के बच्चों में आत्मसंयम, इत्यादि आवश्यक गुण उत्पन्न हो सकें। इस दृष्टि से ग्रामीण स्त्रियों के सुधार की अत्यन्त आवश्यकता है।

घरों का अधिक सुन्दर बनाने के लिये भारतवर्ष में यह-वाटिका (Home Garden Plot) आन्दोलन चलना चाहिये। प्रत्येक घर के साथ एक छोटी सी वाटिका हो। उसमें तरकारी, फूल और फल के वृक्ष लगाये जावें। घर भर के लोग उसमें अवकाश के समय काम करें। यह-वाटिका से घर अधिक सुन्दर बनेगा साथ ही मन बहलाव भी होगा।

गाँव पंचायत

इस समय भारतीय ग्राम अत्यन्त गिरी हुई दशा में हैं। प्रत्येक सम्य देश में गाँवों का एक संगठन होता है जो गाँव के सम्बन्ध की देखभाल करता है। भारतवर्ष में ब्रिटिश शासन के पूर्व जब गाँव की पंचायत एक जीवित संस्था थी तब गाँवों की दशा ऐसी खराब नहीं थी। आवश्यकता इस बात की है कि प्रत्येक चार पाँच गाँवों में एक ग्राम पंचायत स्थापित की जाय जो कि गाँव की सफाई, शिक्षा तथा अन्य प्रबन्धकार्यों की देखभाल के अतिरिक्त, गाँव में लड़ाई-भगड़ा तथा मुकदमेबाजी को रोके और कोई भगड़ा हो भी जावे तो उसका निपटारा करे। यदि पंचायत ठीक तरह से काम करे तो गाँवों की दशा सुधर जाय और उनमें बहुत कम भगड़े हो और उनमें से भी अधिकांश का पंचायत ही निर्णय कर दे। निर्धन ग्रामीण उस लम्बी मुकदमे-बाजी से बच जावें जो कि उनको तबाह कर देती है।

पंचायत अध्यात्म

मुकदमेबाजी को कम करने तथा गाँव वालों को भारतीय अदालतों की लूट से बचाने के लिये आवश्यक है कि गाँवों में पंचायत अदालत स्थापित की जावें। चर पाँच ग्राम पंचायतों की एक पंचायत अदालत हो। प्रत्येक पंचायत से पंचायत अदालत के लिये पाँच पंच चुन लिये जावें। जब कोई भगड़ा उठ खड़ा हो तो पहले तो पंच दोनों पक्षों में समझौता कराने की कोशिश करे और यदि सम्झौता न हो सके तो फिर पंचायत फैसला कर दे। पंचायतों में वकीलों को आने की आज्ञा न होगी।

अभी तक जो पंचायतें देश में स्थापित की गईं उनके पंचों को सरकार नामजद करती थी और उनको १० २० से अधिक जुर्माना करने का अधिकार नहीं था इस कारण वे अधिक सफल नहीं हुईं। अब पंचायत अदालत को एक सौ रुपये जुर्माना करने का अधिकार दे दिया गया है। हर्ष की बात है। कि अब संयुक्त प्रांत के गाँवों में पंचायत अदालत स्थापित हो गई हैं।

अभ्यास के प्रश्न

१— हिन्दोस्तान के गाँवों में लड़ाई-भगड़े बहुत होते हैं इसका क्या कारण है ?

२— मुकदमेबाजी से गाँव वालों को क्या हानियाँ हैं और उनको कम करने का क्या उपाय है ?

३— गाँवों और गाँवों में रहने वालों की गिरी हुई दशा का लड़ाई-भगड़े और मुकदमेबाजी से क्या सम्बन्ध है ?

४— यदि गाँव में एक ऐसी पंचायत हो जिसमें सबकी श्रद्धा हो तो उसका क्या प्रभाव पड़ेगा ?

५— शावबन्दी से गाँवों में लड़ाई भगड़े कहाँ तक बंद हो सकते हैं ?

६— यदि किसानों के घर अधिक आकर्षक बन जावें तो उसका किसानों पर क्या प्रभाव पड़ेगा ?

७— गाँव में घरों को अधिक आकर्षक बनाने के लिए किन बातों की जरूरत है ?

चौबीसवाँ अध्याय

ग्रामवासियों को ऋणमुक्त करना

भारतवर्ष में ग्रामीण ऋण की समस्या अत्यन्त भयंकर हो उठी है और आज सरकार, राजनीतिज्ञ और जनता सभी का ध्यान इस महत्वपूर्ण समस्या की ओर आकर्षित हो गया है। हिन्दोस्तान के गाँवों में रहने वाले किसान कर्ज के भयंकर बोझ से इस बुरी तरह से दबे हुए हैं कि साधारण रूप से उनके छुटकारे की कोई आशा नहीं हो सकती। ऋणी होने के कारण किसानों का राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा चारित्रिक विपथक पतन ही रहा है। कहीं कहीं तो उसकी दशा अपने महाजन के मोल लिए हुए दास जैसी हो गई है। यह निर्विवाद है कि देश की आर्थिक दशा सुधारने के लिए इस समस्या को हल करना आवश्यक है। जब कि जन सख्या का एक बहुत बड़ा भाग दासता का जीवन व्यतीत करता हो तब देश की आर्थिक उन्नति का प्रयत्न करना निष्फल है।

१९३० में जो केन्द्रीय बैंकिंग जाँच कमेटी बिठाई गई थी उसने ब्रिटिश भारत के समस्त प्रान्तों के ग्रामीण ऋण का अनुमान लगाया है। उक्त कमेटी के हिसाब से समस्त ब्रिटिश भारत का ग्रामीण ऋण उस समय ६०० करोड़ रुपये था। किन्तु १९३० से ही खेती की पैदावार का मूल्य बहुत घट गया और उसी अनुपात में ऋण का बोझ बढ़ गया। अर्थशास्त्र के विद्वानों का मत है कि १९३६ में ग्रामीण ऋण उस समय से लगभग दुगुना अर्थात् १८०० करोड़ रुपये के लगभग होगा। ध्यान में रखने की बात है कि इन अंकों में देशी राज्यों के ग्रामीण ऋण के अङ्क सम्मिलित नहीं हैं। १९३० में संयुक्त प्रान्तीय बैंकिंग जाँच कमेटी के अनुसार संयुक्त प्रान्त का ग्रामीण ऋण लगभग १४४ करोड़ रुपये था।

१९३६ में महायुद्ध आरम्भ हो गया। जिसके फलस्वरूप खेती की पैदावार का मूल्य बेहद बढ़ गया। इससे कर्जों का बोझ कुछ हलका झरूर हुआ। अगर इस अवसर का लाभ उठाया जाता और सरकार इस तरफ ध्यान देती तो किसान का सारा कर्जा चुकाया जा सकता था। लेकिन

* देखो अध्याय अट्ठाईस।

किसान ने उस रुपये का उपयोग चाँदी खरीदने, कपड़े तथा अन्य वस्तुओं के मोल लेने, तीर्थ यात्रा, विवाह और भोजों में किया और कर्ज वैसे का वैना ही बना रहा ।

प्रान्तीय बैंकिंग कमेटियों की सम्मति में भारतीय ग्रामीण ऋण पिछले १०० वर्षों में बराबर बढ़ता गया है । सर एडवर्ड मैकलेगन ने १८११ में कहा था “यह मानना पड़ेगा कि ग्रामीण ऋण ब्रिटिश शासन में और विशेषकर पिछले पचास वर्षों में बहुत बढ़ गया है ।” शाही कृषि कमीशन की भी लगभग यही सम्मति है । जब से खेती की पैदावार का मूल्य गिर गया है तब से किसानों के कर्ज का बोझ और भी बढ़ गया है । इस भयंकर बोझ को किसान किस प्रकार सभाल सकेगा यह प्रत्येक विचारवान व्यक्ति समझ सकता है ।

अभी तक यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि गाँव में प्रतिशत कितने लोग कर्जदार हैं । कुछ अर्थशास्त्र के विद्वानों का मत है कि ६० से ७० प्रतिशत ग्राम निवासी कर्जदार हैं ।

महायुद्ध और ऋण

सन् १९३६ के उपरान्त जब से द्वितीय महायुद्ध आरम्भ हुआ तब से खेती की पैदावार का मूल्य बहुत बढ़ गया है और कुछ अर्थशास्त्री यह मानने लग गये हैं कि किसान ऋण मुक्त हो गये हैं । परन्तु, हम जैसा ऊपर कह आये हैं, ऐसा नहीं हुआ । फिर भी यह मानना होगा कि ऋण का भार कुछ हलका अवश्य हुआ । अभी कुछ दिन हुये मद्रास सरकार ने इस सम्बन्ध में एक जाँच करवाई थी उससे यह ज्ञात हुआ कि २० प्रतिशत ऋण कम हुआ है और बड़े किसानों के ही ऋण में कमी हुई है छोटे किसानों की दशा वैसी ही है । हाँ, यदि इस समय सरकार ऋण की जाँच करवा कर उसे कानून बना कर घटा दे और उसकी अदायगी का कुछ प्रबन्ध करे तो समस्या हल हो सकती है । परन्तु यदि ऐसा कुछ न हुआ, किसान की आज की खुशहाली शादियों, ओना-चाँदी, तीर्थ-यात्रा, मेलों, तमाशों पर कम हो गई और आगे चल कर खेती की पैदावार का मूल्य कम हो गया तो फिर किसान कर्जों के बोझ से ऐसा दब जावेगा कि उसका उबरना कठिन होगा ।

कर्जदार होने के कारण

१—पैतृक ऋण

किसान को कर्जदार बनाने में उसके बाप के समय का कर्ज बहुत सहायक होता है। बाप का ऋण चुकाना एक धार्मिक कर्तव्य समझा जाता है। बाप के मरने पर महाजन पुत्र से पुराने कर्जे के लिये नया कागज लिखवा लेता है।

२—महाजन के लेन-देन करने का ढंग

महाजन इतना अधिक सूद लेता है कि यदि कोई किसान एक बार महाजन के चंगुल में फँस गया तो फिर उसका ऋण-मुक्त होना असम्भव हो जाता है। गाँवों में भिन्न-भिन्न प्रान्तों में सूद की दर भिन्न है, परन्तु फिर भी साधारणतः यह कहा जा सकता है कि किसान को २५ से ७५ प्रतिशत तक सूद देना होता है। इतना अधिक सूद किसान कैसे दे सकता है? फल यह होता है कि ऋण बढ़ता जाता है। किसान जो कुछ देता है वह सूद में ही कट जाता है और किसान कभी भी ऋण से मुक्त नहीं हो पाता। किसान अशिक्षित होता है इस कारण कभी कभी महाजन हिसाब में गड़बड़ कर देता है और किसान को धोखा दे देता है।

३—किसान के पास खेती के लिये यथेष्ट भूमि न होना

साधारण किसान के पास इतनी भूमि नहीं कि वह उस पर खेती करके अपने कुटुम्ब का पालन कर सके। देश में उद्योग धंधे कम होने के कारण, आवश्यकता से अधिक जनसंख्या खेती बारी पर अवलम्बित है। इस कारण खेती के योग्य भूमि की बहुत कमी है। केवल यही खराबी नहीं है, जो कुछ भी भूमि किसान के पास है वह भी एक स्थान पर न होकर दूर दूर छोटे छोटे टुकड़ों में बिखरी होती है, (Fragmented Land holdings) इन बिखरे हुए खेतों के कारण वैज्ञानिक ढंग से खेती हो सकती और न खेती में लाभ हो सकता है।

अनिश्चित खेती

भारतवर्ष में खेती अत्यन्त अनिश्चित है, किसी साल वर्षा कम होने से, अथवा वर्षा अधिक होने से, ओला या पाला पड़ने से, या फसल के कीड़े

लग जाने से अथवा अन्य किसी कारण से जब फल मारी जाती है तो किसान को कर्ज लेना पड़ता है।

बैलो का मृत्यु

पशुओं की महामारी (प्लेग आदि) फैलने से भारतवर्ष में प्रतिवर्ष लाखों पशु मरते हैं। किसान के बैल मर जाने पर उसे कर्ज लेकर नए बैल मील लेने पड़ते हैं।

राजा जक तथा धार्मिक कृत्यों में अधिक व्यय करना

भारतीय ग्रामीण विवाह, मृत्यु, जन्म तथा अन्य धार्मिक और सामाजिक कृत्यों पर कर्ज लेकर अधिक व्यय कर देता है। कुछ लोग इसको अत्यधिक कर्जदार होने का मुख्य कारण बतलाते हैं परन्तु इसमें अतिशयोक्ति है।

मुकदमेबाजी

मुकदमेबाजी किसान के श्रृंखली होने का एक मुख्य कारण है। किसान कर्ज लेकर मुकदमे लगता है। भारतवर्ष में मुकदमेबाजी का रोग ऐसी छुरी तरह फैला हुआ है कि इसके कारण लाखों परिवारों का सर्वनाश हो गया है। बकील, अदालतों के कर्मचारी तथा खर्चीला न्याय किसान को कर्जदार बना देते हैं।

लगान और मालगुजारी

मालगुजारी उचित से अधिक है, क्योंकि खेती से लाभ बहुत कम है। जब कभी फसलें नष्ट हो जाती हैं अथवा खेती की पैदावार की कीमत कम हो जाती है तो किसान को लगान देना कठिन हो जाता है। यद्यपि ऐसे समय कुछ छूट दी जाती है, परन्तु वह आवश्यकता से बहुत कम होती है। निर्धन किसान को महाजन से कर्ज लेकर लगान या मालगुजारी देनी होती है। क्योंकि जमींदार तथा सरकारी कर्मचारी उसे बहुत सख्ती से वसूल करते हैं। भूमि की कमी होने के कारण कभी कभी किसान लम्बे पट्टे लेता है और उसके लिए बहुत अधिक लगान देना स्वीकार करता है। कभी कभी कर्ज लेकर वह भूमि मील ले लेता है।

किसान फसल बोने के समय महाजन से सवाय अथवा ष्वाड़े पर बीज

लाता है। महाजन पुराना सड़ा बीज दे देता है। खाद इत्यादि डालने के लिये भी वह कर्ज लेता है। फसल तैयार होने पर उसे अपनी पैदावार तुरन्त बेचनी पड़ती है क्योंकि जमींदार लगान, सरकारी आबपाशी, तथा महाजन अपने कर्ज के लिये जल्दी मचाते हैं। उस समय बाज़ार भाव मन्द होता है। महाजन बाज़ार भाव से भी बहुत सस्ते दामों पर किसान की पैदावार मोल ले लेता है। किसान थोड़े दिनों ठहर सके तो उसे अपनी पैदावार का अधिक मूल्य मिल सकता है। जूट, गन्ना और कपास इत्यादि की फसलों में तो कारखाने वाले किसान को कुछ रुपये पेशगी कर्ज दे देते हैं और बहुत सस्ते दामों पर फसल को पहले से ही मोल ले लेते हैं।

अधिकतर किसानों की स्थिति यह है कि फसल काटने के उपरान्त सब लेनदारों का रुपया चुकाने पर उसके पास ब्रेवल आठ महीने का भोजन ही बच रहता है। पिछले चार महीनों में किसान को महाजन से सवाये या क्योड़े पर अनाज उधार लेना पड़ता है। कहीं कहीं तो कर्जदारों की स्थिति मोल लिये हुये दामों से भी गई बीती हो जाती है।

सरकार द्वारा ऋण की समस्या को हल करने का प्रयत्न

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में दक्षिण भारत, अजमेर, मेरवाड़ा प्रान्त तथा बिहार प्रान्त के छोटा नागपुर डिवीज़न में किसान विद्रोही हो उठे। उन्होंने बहुत से महाजनो के घर जला दिये और उन्हें मार डाला। सरकार ने एक कमीशन बिठाया। कमीशन ने इन उत्पातों का मुख्य कारण किसानों की भयङ्कर कर्जदारी बतलाई। सरकार ने किसानों की रक्षा के लिये देशी कानून में सुधार किये और एक कानून बनाया जिससे अदालतों को यह अधिकार दे दिया कि वे किसी भी नालिश के मुकदमें में उचित सूद की ही डिगरी दें, फिर किसान ने महाजन को चाहे जितने अधिक सूद देने का वादा क्यों न किया हो। किन्तु इस कानून से कोई लाभ न हुआ क्योंकि अदालतों का न्याय खर्चीला है और किसान निर्धन है।

भारतीय सरकार ने किसानों में मितव्ययिता का भाव उत्पन्न करने के लिये पोस्ट आफिस सेविङ्ग बैंक खोले। अशिक्षित किसान पोस्ट आफिस सेविंग बैंक से अधिक लाभ न उठा सका। सरकार ने कई बार सिविल ला

में इस दृष्टि से सुधार किए कि किसानों को कुछ सुविधा दी जावे किन्तु कानून द्वारा सरकार किसानों की कुछ भी सहायता न कर सकी।

सरकार ने देखा कि किसान को खेती बारी का धन्धा करने के लिए साख (कर्ज़) की आवश्यकता होती है। किसान को दो तरह की साख चाहिए—थोड़े समय के लिए और अधिक समय के लिये। अस्तु, भारतीय सरकार ने दो कानून बनाकर प्रान्तीय सरकारों को यह अधिकार दे दिया कि वे किसान की दोनों प्रकार की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए तक्कावी दे सकती हैं। किन्तु तक्कावी से भी यह समस्या हल नहीं हुई और न किसानों ने तक्कावी का अधिक उपयोग ही किया कारण यह है कि किसानों को तक्कावी पटवारी, कानूनगो तथा नायब तहसीलदार की तिकारिश से मिलती है। इस कारण किसान को रुपया समय पर नहीं मिल पाता। आवश्यकता के समय तक्कावी न मिलने के तथा बसूली में कड़ाई होने से तक्कावी का अधिक प्रचार नहीं हुआ।

कर्ज़दार होने के कारण किसानों के हाथ से भूमि निकल कर महाजनों के पास चली जाती थी और किसान उन पर मज़दूरों की भाँति कार्य करता था। पंजाब में इस समस्या को हल करने के लिए “पंजाब लैंड एल्लिएशन ऐक्ट” पार करके गैर खेतिहर जातियों को खेती की भूमि लेने से वंचित कर दिया गया। संयुक्त प्रान्त के बुन्देलखंड प्रदेश तथा मध्यप्रान्त के कुछ भागों में इसी प्रकार का कानून लागू कर दिया गया है।

यह सब कुछ हुआ परन्तु ग्रामीण ऋण की समस्या पूर्ववत् ही बनी रही। इसी बीच में इटली और जर्मन की सहकारी साख समितियों की आश्चर्यजनक सफलता से भारत सरकार का ध्यान सहकारी साख आन्दोलन की ओर आकर्षित हुआ और सन् १९०४ से भारतवर्ष में भी सहकायिता आन्दोलन का श्रीगणेश किया गया। सहकारी साख आन्दोलन कहाँ तक सफल हुआ है यह तो अगले अध्यायों में लिखा जावेगा, किन्तु इतने वर्षों के अनुभव से यह तो सिद्ध हो ही गया है कि सहकारी साख समितियाँ किसान के पुराने कर्ज़ों को अदा नहीं कर सकतीं। थोड़े समय के लिए खेती बागी में जो ऋण की आवश्यकता होती है उसका प्रबन्ध यह साख समितियाँ सफलतापूर्वक

कर सकती हैं। जब तक किसान पुराना ऋण नहीं चुकाता तब तक वह महाजन के चंगुल से मुक्त नहीं हो सकता।

पुराने ऋण को चुकाने के लिये तथा अन्य कार्यों के लिए अधिक समय तक को ऋण देने के लिए भूमि बंधक बैंक (land mortgage banks) अधिक उपयुक्त है। ये बैंक किसान अथवा ज़मींदारों की भूमि को गिरवी रख उन्हें बीस या तीस वर्ष तक के लिये ऋण देते हैं। और किरतों में वसूल कर लेते हैं। ऋण देने के लिये बहुत पूँजा की आवश्यकता होती है वह बैंक बंधक रखी हुई भूमि की ज़मानत हर डिबेंचर (ऋण-पत्र) बेच कर इकट्ठी करते हैं। अभी भारतवर्ष में यादों से ही भूमि बंधक बैंक स्थापित हुए हैं। परन्तु यह बैंक उन्हीं किसानों को ऋण दे सकेंगे जो कि भूमि बंधक रख सकेंगे। बहुत से प्रान्त में किसान का भूमि पर स्वामित्व ही नहीं है वहाँ ये बैंक किसानों की सहायता न कर सकेंगे।

ऋण—परिशोध

केन्द्रीय बैंकिंग जाँच कमेटी की समीति में सरकार को निम्नलिखित योजना के अनुसार कार्य करना चाहिये।

प्रान्तीय सरकार इन कार्य के लिए विशेष कर्मचारी नियुक्त करे जो गाँवों में दौरा करके पता लगावें कि किसानों पर कितना ऋण है। इसके लिए एक कानून बना कर महाजनों को विवश किया जावे कि वे किसान के ऋण का पूरा हिसाब बतावे तद्उपरान्त वह कर्मचारी ऋण को चुकाने के लिये महाजन को कम से कम रुपया लेकर किसान को ऋण मुक्त करने के लिये राजी करे। जब यह निश्चय हो जावे कि महाजन कम से कम कितना रुपया ले कर किसान को ऋण मुक्त कर देगा, तब किसान को साखसमिति का सदस्य बनवा दिया जाये। साख समिति किसान का वर्ज़ा एक मुश्त अथवा किश्तों में चुका दे। तथा खेती बारी के लिये किसान को आवश्यक साख (कर्ज) देती रहे।

यदि महाजन किश्तों में रुपया लेना स्वीकार करे तो जितना स्वयं दे सके उतना दे दे और शेष किश्तों को देने की जिम्मेदारी साख समिति ले ले। समिति किसान से किश्तें वसूल करती रहे। यदि महाजन एक मुश्त रुपया माँगे तो सरकार को उतना रुपया समिति को उधार दे देना चाहिए।

साख समिति किसान से वार्षिक किरतें लेकर सरकार का कर्ज चुका देगा !

यह भी सम्भव है कि महाजन कर्ज के इस प्रकार चुकाये जाने के लिए तैयार न हों और समझौता न करें। ऐसी परिस्थिति में कानून बना कर उन्हें विवश किया जावे।

कतिपय प्रान्तों में ऋण समझौता-बोर्ड (Debt Conciliation Board) तथा भूमि बंधक बैंक (Land Mortgage Banks) साथ साथ स्थापित किए गये हैं। ऋण समझौता बोर्ड सदस्य के ऋण के विषय में महाजन से समझौता करके रकम को कम से कम करने का प्रयत्न करता है और भूमि बंधक-बैंक सदस्य की भूमि को बन्धक रख कर उस रकम को चुका देता है तद् उपरान्त किरतों में सूद सहित सदस्य से रुपया वसूल कर लेता है। अभी ये संस्थाएँ बहुत कम संख्या में हैं और इन्हें कार्य करते अधिक दिन नहीं हुये हैं।

अभी कुछ वर्ष हुए हैं कि भिन्न भिन्न प्रान्तों में कुछ कानून जमींदारों और किसानों की रक्षा के लिए बनाये गये हैं। सयुक्त-प्रान्त में भी कुछ कानून इस सम्बन्ध में बन गये हैं। इन कानूनों के द्वारा ऋण के लिए भूमि या जमींदारी कुर्क नहीं कराई जा सकती। अदालत सूद की दर निश्चित करके किरत बांध देती है। इस कानून से जमींदारों को अधिक लाभ हुआ है। उनकी जमींदारियों महाजनों के हाथ में जाने से बच गई हैं। किन्तु इन कानूनों से किसानों का अधिक लाभ नहीं हुआ।

ग्रामीण ऋण की समस्या इतनी गम्भीर और महत्वपूर्ण है साथ ही इतनी कठिन भी है कि वह साधारण प्रयत्नों से हल न होगी। इसके लिए कोई क्रान्तिकारी तथा साहसी प्रयोग करना होगा। इस दृष्टि से भावनगर राज्य का ग्रामीण ऋण सम्बन्धी प्रयोग उल्लेखनीय है। भावनगर के तत्कालीन दीवान मर प्रभाशकर पट्टनो ने राज्य भर के किसानों के ऋण की जाँच करवाई तो ज्ञात हुआ कि राज्य के किसानों पर छियासी लाख से कुछ अधिक ऋण है। उन्होंने राज्य भर के महाजनों का बुलवाया और उनसे बीस लाख रुपये लेकर किसानों को ऋण मुक्त कर देने का कहा। पहिले तो महाजन तैयार नहीं होते थे किन्तु जब उन्होंने देखा कि समझौता न बर राज्य ऐसे कानून बना देगा कि जिनके कारण किसानों से रुप---

न ही सूकेगा तो वे बीस लाख रुपये लेकर किसानों को ऋण मुक्त करने को तैयार हो गये। राज्य ने एक मुश्त बीस लाख रुपये देकर किसानों को महा-जनों के ऋण से मुक्त कर दिया। ध्यान रहे किसान प्रतिवर्ष लगभग पच्चीस लाख रुपये तो केवल-सूद में दे देते थे। राज्य अब विप्लव में वह रुपया लगान के साथ किसान से वसूल करता है। राज्य में सहकारी साख समितियाँ स्थापित की जा रही हैं और राज्य तकावी देता है जिससे कि किसान फिर महाजनों के ऋणी न हो जावे। इस प्रकार ऋण मुक्त होने का फल भाव-नगर में यह हुआ कि किसान स्वयं वैज्ञानिक ढंग की खेती करने लगे हैं। अच्छे हल, बैल, खाद, तथा बीज का उपयोग किया जा रहा है और गाँव समृद्धिशाली बनते जा रहे हैं। ब्रिटिश भारत में भी जब इसी प्रकार की कोई क्रान्तिकारी योजना काम में लाई जावेगी तभी ग्रामीण ऋणमुक्त हो सकेंगे। जब तक किसान ऋणमुक्त नहीं होते तब तक उनकी स्थिति में सुधार होना सम्भव नहीं है।

यद्यपि भावनगर राज्य की भाँति कोई क्रान्तिकारी योजना प्रान्तों में काम में नहीं लाई गई परन्तु पिछले बर्षों में भी कुछ कानून बनाए गये हैं जिनसे कर्जदारों को बहुत लाभ और सुविधा हो गई है। इनमें नीचे लिखे मुख्य हैं :—

महाजन लायरोस कानून— (Money-lenders act) बंगाल आसाम, मध्यप्रान्त, बिहार, बम्बई, पंजाब में महाजन पर नियंत्रण रखने के उद्देश्य से कानून बनाये गये हैं। इन कानूनों की मुख्य बातें एक सी हैं।

कानून के अनुसार प्रत्येक महाजन को सरकार से एक लायसैस लेना होगा। प्रत्येक लायसैसदार महाजन को नियमानुसार हिमाव रखना होगा और प्रत्येक कर्जदार का निश्चित समय पर उसका हिसाब लिखा कर देना होगा जब कभी कर्जदार कुछ रुपया महाजन को दे तो महाजन को उसकी रसीद देनी होगी।

इन कानूनों के साथ ही प्रान्तीय सरकारों ने सूद की दर भी कानून से निश्चित कर दी है। यद्यपि भिन्न भिन्न प्रान्तों में सूद की दर भिन्न है। फिर भी पहले से सूद की दर बहुत कम हो गई है।

मद्रास और मध्यप्रान्त मे कानून बना कर किसान के कर्ज को कुछ प्रतिशत कम कर दिया गया है। कुछ प्रान्तों में ऋण समझौता बोर्ड स्थापित करके किसान के ऋण की रकम को घटाने का प्रयत्न किया गया है।

किन्तु इन सुविधाओं से ऋण की समस्या हल नहीं हुई। आवश्यकता इस बात की है कि भावनगर राज्य की तरह ही सरकार इस समस्या को हल करने के लिए एक योजना तैयार करे और उसको शीघ्र ही लागू कर दे।

आवश्यकता इस बात की है कि सरकार इस समय ग्रामीण ऋण की जाँच करवाये। कानून बनाकर उसे उचित मात्रा में कम कर दे। कम करने में यह ध्यान अवश्य रखना चाहिये कि महाजन ने बहुत अधिक सूद लेकर अपनी रकम को बढ़ा लिया है। अस्तु कर्ज की रकम की सभी बातों को ध्यान में रखकर कम कर दिया जावे। जिन किसानों के बारे में यह प्रतीत हो कि वे दस वर्ष में भी घटी हुई रकम को अदा नहीं कर सकते क्योंकि उनके पास कुछ भी बचत नहीं होती उनको 'ग्रामीण दिवालिया कानून' (Rural Insolvency Act) बनाकर दिवालिया करार दे दिया जावे और उन्हें फिर से नये सिरे से काय आरम्भ करने की इजाजत दी जावे। भूमि, बैलों की जोड़ी, खेती के औजार, बीज, ६ महीने के खाने के अन्न को छोड़कर जो भी उसके पास हो उसको महाजनों में बाँट दिया जावे। और किसान का ऋण मुक्त कर दिया जावे। शेष किसानों की क़म की हुई रकम सरकारी बाँटों के रूप में किसानों के महाजनों को दे दी जाय। इसका मतलब यह हुआ कि सरकार उन महाजनों की कर्जदार हो गई और जब तक सरकार महाजनों का कर्जा न चुका सके तब तक उस पर २½ प्रतिशत सूद देती रहे। सरकार यह रकम किसान से सूद सहित क़िस्तों में वसूल कर ले। इस प्रकार ऋण की समस्या को हल किया जा सकता है।

अभ्यास के प्रश्

- १ गाँवों में किसान किन आदमियों और संस्थाओं से ऋण लेता है ?
- २—हिन्दोस्तान में ग्रामीण ऋण की समस्या इतनी महत्वपूर्ण क्यों हो उठी है ?
- ३—किसान के कर्जदार होने के मुख्य कारण क्या हैं ?

४—क्या ऋण लेना हर हालत में हानिकर होता है ? भारतीय किसान किन किन कार्यों के लिए ऋण लेता है ?

५—क्या यह सच है कि भारतीय किसान ऋण जन्म लेता है और ऋणी ही मरता है ? इस भयंकर कर्जदारी का उसके जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है ?

६—किसान के ऋणी होने से उसकी क्या हानि होती है ?

७—भारतीय किसान का जो निराशवादी दृष्टिकोण बन गया है उस पर उसके कर्जदार होने का क्या असर पड़ता है ?

८—“तकावी” क्या है और उससे किसान को कहाँ तक सहायता मिलती है ?

९—केन्द्रीय बैंकिंग जाँच कमेटी ने ऋण की समस्या को हल करने के लिये क्या उपाय बतलाया है ?

१०—भावनगर राज्य में ऋण की समस्या को कैसे हल किया गया और उसका फल क्या हुआ ?

११—भूमि बन्धक बैंक किसे कहते हैं ? वह क्या कार्य करता है ?

पच्चीसवाँ अध्याय

गाँवों में आय ३. भाधन और गमनागमन

गाँवों में खेती के सिवाय आय के दूसरे माधन नहीं के बराबर हैं। जन-संख्या के बढ़ने और भूमि की कमी के कारण प्रति किसान पाँछे भूमे इतनी कम (ढाई एकड़) है कि एक परिवार का उस पर पालन होना साधारण समय में भी असम्भव है। फिर भारत में हर तीसरे चौथे साल फसल नष्ट हो जाती है। सूखा, बाढ़, अतिवर्षा, ठीड़ी, आला, फसलों के रोग, पाला, हत्यादि दैवी कारणों से फसलें नष्ट हो जाती हैं और कहीं कहीं तो भीषण आकाल पड़ जाता है। ऐसे समय में किसान की दशा अत्यन्त दयनीय हो जाती है। यह तो हुई उन सालों की बात जब कि फसल खराब हो जाती है। जब फसल ठीक होती है तब भी किसान के पास इतना नहीं होता

कि वह परिवार का पालन-पोषण ठीक तरह से कर सके। इन्होंने यह आवश्यक है कि खेती के अलावा किसान के पास आय के दूसरे भी साधन हों।

ग्रामीण धंधे

भारत में साधारणतः किसान वर्ष में ४ से ६ महीने बेकार रहता है कारण खेती का धंधा ऐसा है कि इसमें वर्ष भर लगातार काम नहीं रहता। किन्हीं दिनों उसे बहुत अधिक काम करना पड़ता है, किन्हीं दिनों कम, और कभी वह बिल्कुल बेकार रहता है। गाँव के मजदूरों को तो वर्ष में ४ या ५ महीने से अधिक काम मिलता ही नहीं। यह मानी हुई बात है कि कोई ६ महीने काम करके १२ महीने का भोजन नहीं पा सकता।

यूरोप तथा अमेरिका जैसे देशों में जहाँ किसान के पास बड़े बड़े काम हैं किसान केवल खेतों पर ही अवलम्बित नहीं रहता वह ग्राम उद्योगों के द्वारा अपनी आय बढ़ाता है। ऐसी दशा में भारत में जहाँ भूमि का अकाल है किसान बिना ग्रामीण धंधों के कैसे जीवित रह सकता है।

१—धंधा ऐसा होना चाहिये जो खेती के काम में बाधक न हो अर्थात् जब खेतों पर अधिक काम हो तब उसको बिना हानि के छोड़ा जा सके।

२—धंधा ऐसा हो जिसमें अधिक कुशलता प्राप्त करने की जरूरत न हो। नहीं तो किसान को उस धंधे की शिक्षा की समस्या उठ खड़ी होगी।

३—धंधे में कच्चे पदार्थ की जो आवश्यकता हो वह गाँव से ही पूरी हो सके।

४—धंधे की चीज़ ऐसी होनी चाहिये कि जिनकी माँग सब जगह हो जिससे माल के बेचने में कठिनाई न हो।

५—धंधा ऐसा होना चाहिये जिसके चलाने में अधिक पूँजी की जरूरत न हो।

६—साथ ही जहाँ तक ही ग्रामीण धंधे ऐसे चुने जावें जिनकी होड़ मिलों में बने माल से न हो।

ऊपर दिये हुए गुणों को ध्यान में रखते हुये नीचे लिखे धंधे गाँव के लिये उपयुक्त हो सकते हैं ।

१—दूध घी-मक्खन का धंधा, (२) गुर्गी पालने का धंधा, (३) कलों का धंधा, (४) तरकारी पैदा करना, (५) शहद उत्पन्न करना, (६) सूत कातने का धंधा, (७) रेशम के कीड़े पालने का धंधा, (८) भेड़ें पालने का धंधा, (९) गुड़ बनाना, चावल कूटना, रस्सी बँटना, डालियाँ तैयार करना, (१०) सूत कातना, गाड़ी चलाना, तेल पेरना इत्यादि ।

ग्राम उद्योग संघ

महात्मा गाँधी के नेतृत्व में ग्राम उद्योग संघ की स्थापना हुई है जो ग्रामीण धंधों की उन्नति के लिये प्रयत्न कर रही है । आशा है कि इससे गाँव वालों के आय का एक अच्छा साधन मिल जावेगा । क्या ही अच्छा हो कि सरकार का औद्योगिक विभाग भी इस ओर ध्यान दे ।

गाँव में जाने का असुविधा

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि गाँव में सड़कों न होने के कारण वे बाहरी दुनिया से अलग रहते हैं गाँवों की उन्नति के लिए सड़कों की उन्नति के सबसे पहले जरूरी है । यदि सड़कों की उन्नति की जावे और हर एक गाँव मुख्य पक्की सड़कों से जोड़ दिया जावे तो थोड़े ही दिनों में गाँवों की काया-पलट हो सकती है । उस दशा में मोटर कारों के द्वारा गाँव की पैदावार बहुत जल्दी और कम खर्च से शहरों तक लाई जा सकती है । गाँवों का व्यापार सड़कों की उन्नति से बहुत जल्दी बढ़ सकता है और गाँवों में और दूसरे कारबार चल सकते हैं । इसलिए देश में सड़कों की उन्नति बहुत जरूरी है । हार्न की बात है कि सरकार इस ओर अब कुछ ध्यान देने का विचार कर रही है ।

किन्तु केवल सड़कों से ही काम नहीं चलेगा । डाक, तार, तथा रेडियो की भी सुविधा गाँवों को मिलनी चाहिये जिससे वे दुनिया की हलचलों से परिचित हो सकें ।

अभ्यास के प्रश्न

१—किसानों को खेती के सिवाय दूसरे आय के साधनों की क्या जरूरत है ?

२--ग्रामीण धन्धों में कौन सा विशेष गुण होना चाहिये ? . .

३--सड़कों की उन्नति से गांव के जीवन पर क्या प्रभाव पड़ेगा ?

४--कौन से ग्रामीण धन्धे तुम अपने गांव में चयाना चाहोगे ? उनके सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक लिखो ।

छब्बीसवाँ अध्याय

कृषि-विभाग के कार्य तथा खाद्य समस्या

सर्व-प्रथम संयुक्त प्रान्त में कृषि विभाग की स्थापना सन् १८७५ ईसवी में हुई । तत्कालीन लैफ्टीनेन्ट गवर्नर सर जान स्टैचे ने प्रयत्न करके प्रान्त में एक डायरेक्टर आफ एग्रीकल्चर और कामर्ष की नियुक्ति करने की आज्ञा प्राप्त कर ली । डायरेक्टर आफ एग्रीकल्चर को इस आज्ञा की आज्ञा दी गई की वह प्रान्त के किसानों को नये तरीके से खेती करने के लाभ बतलाये और ऐसी फसलों और छोटे छोटे धन्धों की उन्नति करने के लिये प्रयोग करे कि जिनके द्वारा किसानों को अधिक लाभ हो । आरम्भ में रेशम के कीड़े को पालने तथा रेशम उत्पन्न करने के धन्धे, मत्त, तथा तम्बाकू की ओर अधिक ध्यान दिया गया । उसमें पूर्ण ही प्रान्त में तीन माडल फार्म थे जो कि नव निमित्त कृषि-विभाग ने ले लिये । रेशम के कीड़े का एक फार्म देहरादून में खोला गया, तम्बाकू का फार्म गाजीपुर में और फलों का फार्म कमायूँ की पहाड़ियों पर खोला गया । तम्बाकू और रेशम के फार्म असफल रहे किन्तु कमायूँ का फार्म बहुत सफल हुआ । प्रान्त में आलू और फलों के व्यापार की जो आशातीत उन्नति हुई है उसका मुख्य कारण कमायूँ का फार्म है ।

संयुक्त प्रान्त के कृषि-विभाग को प्रान्त की सड़कों के किनारे पेड़ लगाने का भी कार्य सौंपा गया था जो कि आज तक कृषि-विभाग करता आ रहा है । १८८० में कृषि-विभाग ने अपनी एक शाखा स्थापित करके पुराने कुओं के सुधार तथा नये को खोदने का काम भी अपने हाथ में लिया । वेल बोरिंग ब्रांच (Well boring branch) किसी भी जमींदार

अथवा किसान को यह सलाह देती है कि इस क्षेत्र में कितनी दूरी पर पानी निकलेगा । यदि किसान अथवा जमींदार चाहे तो वे कुये को खोद भी देते हैं ।

इनके अतिरिक्त उस समय कृषि विभाग ने ऊसर भूमि तथा पानी द्वारा काटी भूमि (Ravines) को खेतों के योग्य बनाने, गाय और बैलों की नस्ल को सुधारने, कपास के तथा गन्ने के बीज को उन्नत करने का भी प्रयत्न किया । यद्यपि गाय और बैलों की उन्नति करने में सीधी सफलता नहीं मिली किन्तु ऊसर भूमि के सुधार होने पर वहाँ चरागाह बन गये जिससे अप्रत्यक्ष रूप से गाय और बैलों का सुधार हुआ और प्रान्त में डेयरी का धन्धा पनपा ।

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक इसी नीति के अनुसार कार्य होता रहा । इस बीच में केवल दो परिवर्तन हुये । कानपुर में कृषि स्कूल खोला गया । बाद को वही स्कूल कृषि कालेज में परिणत हो गया, कृषि-विभाग को अधिक आदमी देकर शाक्तशाला बनाया गया, तथा प्रान्त में फार्मों की संख्या बढ़ा दी गई ।

सन् १९०५ में भारत सरकार ने घोषणा की कि वह २० लाख रुपये (जो बाद को बढ़ाकर २४ लाख कर दिये गये) प्रति वर्ष प्रान्तों में कृषि विषयक अनुसंधान, प्रयोग, प्रदर्शन, तथा शिक्षा के लिए देगी । इस सहायता से प्रत्येक प्रान्त में कृषि कालेजों की स्थापना की गई और उनके अध्यापकों के पदों पर भिन्न भिन्न विषयों के विशेषज्ञ रखे गये । इन विशेषज्ञों का कार्य केवल कालेज के विद्यार्थियों को पढ़ाना ही नहीं था वरन् अपने विषय के अन्तरगत प्रान्तीय समस्याओं को हल करने के लिए अनुसन्धान करना भी था । उदाहरण के लिए यदि कोई विशेषज्ञ फसल की बीमारियों की शिक्षा देता है तो वह प्रान्त में होने वाला फसलों की बीमारियों के सम्बन्ध में अनुसन्धान भी करता है । प्रत्येक बड़े क्षेत्र में विशेषज्ञों द्वारा बतलाई हुई बात का प्रयोग करने के लिए एक प्रयोग करने वाला स्टाफ (Experimental Staff) रखा गया । इनका कार्य फार्मों पर विशेषज्ञों द्वारा बतलाई हुई बातों का प्रयोग करना और उस प्रदेश के लिए उपयोगी सिद्ध होने पर उस त का गाँवों में प्रचार करना है । प्रचार-कार्य उन छोटे छोटे प्रदर्शन

फार्मों (Demonstration farm) के द्वारा किया जाता है जो कि प्रत्येक जिले अथवा तहसीलों में स्थापित किये गए हैं।

कृषि-विभाग का संगठन और उसका कार्य

यह तो पूर्व ही कहा जा चुका है कि कृषि-विभाग का प्रधान अधिकारी डायरेक्टर आफ ऐग्रीकल्चर होता है। डायरेक्टर विभाग सारा काम सभालता है। कृषि विषयक शिक्षा देने के लिए कानपुर में एक प्रथम श्रेणी का कृषि कालेज (Agricultural College) है। कानपुर में कृषि कालेज में कृषि विषयक उच्च शिक्षा तथा अनुसंधान (Research) कार्य भी होता है। बीजों का सुधार, खाद, फसलों के कीड़े, भूमि तथा सिंचाई सम्बन्धी अनुसंधान कार्य इसी कालेज के विशेषज्ञ अध्यापक करते हैं। साधारण कृषि विषयक शिक्षा, ग्रामीणों, जमींदारों तथा कृषि-विभाग के छोटे कर्मचारियों को देने के लिए प्रान्त से बुलन्दशहर तथा एक दो अन्य स्थानों पर कृषि स्कूल खोले गये हैं।

समस्त प्रान्त को कुछ सर्किलों में बाँटा गया है प्रत्येक सर्किल एक डिप्टी डायरेक्टर-आफ-ऐग्रीकल्चर की आधीनता में होता है। उसका मुख्य कार्य अपने क्षेत्र में स्थित प्रयोग फार्म (Experimental farms), बीज फार्म (Seed farms) तथा प्रदर्शन फार्म (Demonstration farms) का प्रबन्ध करना तथा प्रदर्शन प्लॉट्स (Demonstration plots) की देख-भाल करना है। इसके अतिरिक्त अपने सर्किल में अच्छे बीज और खेती के औज़ारों को बेचना तथा कृषि सुधार विषयक प्रचार करना भी उसके जिम्मे है। इस कार्य के लिए उसकी आधीनता में इन्स्पेक्टर और फ्रील्डमैन रहते हैं जो इस कार्य को करते हैं।

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि संयुक्त प्रान्तीय कृषि-विभाग तीन प्रकार के फार्म रखता है, एक जिन पर विशेषज्ञों द्वारा अनुसंधान की हुई बातों का प्रयोग किया जाता है, दूसरे जिनपर अच्छा बीज अधिक राशि में उत्पन्न करके किसानों को बेचा जाता है, तीसरे वह जिन पर अच्छी खेती करने का ढंग किसानों को बताया जाता है।

प्रदर्शन फार्म और प्रदर्शन प्लॉट (Demonstration farm Demonstration plot) का प्रबन्ध फ्रील्डमैन करता है।

किसी भी किसान को जिस प्रकार फील्डमैन कहे उस प्रकार खेती करने को राजी कर लिया जाता है। फील्डमैन अपनी देखरेख में किसान से खेती कराता है। जब उस किसान की फसलें अपने पड़ोसियों की फसलों से अच्छी होती हैं और उसे अधिक लाभ होता है तो गाँव के अन्य किसानों को फील्डमैन की बताई हुई बातों पर विश्वास हा जाता है और कृषि विभाग के द्वारा बताये हुये सुधारों को अपना लेते हैं।

कृषि-विभाग प्रचुर बीज बेचने और उसको अपने सीड फार्मस (बीज उत्पन्न करने के फार्म) पर उत्पन्न करने में अपनी बहुत शक्ति लगाता है। गेहूँ, गन्ना, कपास तथा अन्य फसलों के अच्छे बीज तैयार करने में कृषि-विभाग को बहुत सफलता मिली है। कृषि-विभाग उस अच्छे बीज को अपने फार्म पर तथा अपनी देख रेख में जमींदारों के फार्म तथा किसानों के खेतों पर उत्पन्न करते हैं। किसानों को बीज बेचने के लिये कृषि-विभाग ने देहातों में बहुत बड़ी संख्या में बीज भण्डार (Seed Depot) खोले थे जहाँ से किसानों का बीज दिया जाता था। कृषि साख समितियों, रहन सहन सुधार समितियों और ग्राम-सुधार के आर्गनाइजिंग के द्वारा भी कृषि विभाग किसानों को अच्छा बीज बेचता था। बीज के अतिरिक्त कृषि-विभाग अच्छे हल, फाँलू, तथा अन्य खेती के यन्त्र भी बेचता रहा है।

कृषि सुधार सम्बन्धी आवश्यक बातों का प्रचार तथा प्रदर्शन करने का काम भी कृषि-विभाग का ही करना पड़ता है। कृषि प्रदर्शनों, मेलों तथा अन्य समारोहों पर कृषि विभाग अपने कर्मचारियों द्वारा किसानों में प्रचार कराता है। जब कहीं फसलों में कीड़ा लग जाता है तो उनको दूर करने के उपाय तथा पशुओं की नस्ल के उत्थति के उपाय भी किसानों को बताए जाते हैं।

कृषि विभाग मुर्गी, गाय, बैल, बकरी तथा अन्य पशुओं की नस्ल को सुधारने तथा खेतों के यन्त्रों में आवश्यक सुधार करने का भी प्रयत्न करता रहा है। पिछले दिनों में कृषि विभाग ने गन्ने की ओर विशेष ध्यान दिया है और यहाँ कारण है कि गन्ने की पैदावार प्रान्त में बहुत अच्छी होने लगी है।

कृषि-विभाग के अतिरिक्त आल इंडिया कृषि कौंसिल भी है जो खेती से सम्बन्ध में अनुसंधान करवाया करता है और कृषि-विभागों को सलाह-मशविरा देती है। यही नहीं भारत सरकार कों भी खेती के बंधे के बारे में क्या नाति बरती जावे इस सम्बन्ध में कौंसिल सलाह देती है। युद्ध के उपरान्त खेती की उन्नति करने की योजना बनाई गई है। खाद, अच्छे हल और पैदावार का बढ़ाने का प्रयत्न किया जावेगा।

प्रान्तीय उन्नयन योजना

(Provincial Development Plan)

अब तक कृषि-विभाग ग्राम सुधार विभाग, सहकारी विभाग तथा पशु-विभाग जिलों, तहसीलों और गाँवों में अपनी-खिचड़ी अलग-अलग पकाते थे। उनके जिला और ग्रामीण कार्यकर्त्ताओं में कोई व्यवहारिक सहयोग नहीं स्थापित हो पाता था। खेती के तल पर किसान और काम करने वालों को उत्तम और टेक्निकल राय और नेतृत्व की आवश्यकता होती है। इसके लिए अफसरों को उपयुक्त ट्रेनिङ देनी पड़ती है और उन्हें काफी वेतन मिलता है। परन्तु अब तक यह अफसर किसान तक नहीं पहुँच पाते थे। इनका अधिकांश समय आफिस की खानापूरी तथा छोटे कर्मचारियों की देख-रेख में ही बीत जाता था। यह अति आवश्यक है कि यह कमी दूर की जाय।

अतः अब प्रान्तीय उन्नयन बोर्ड के अतिरिक्त प्रत्येक जिले में एक उन्नयन अफसर नियुक्त किया गया है और प्रत्येक जिले में एक जिला उन्नयन संघ स्थापित हो गया है, जो जिला उन्नयन योजना निश्चित करेगा। इन उन्नयन योजनाओं का एकीकरण प्रांतीय उन्नयन बोर्ड करेगा। जिला उन्नयन अफसर जिला संघ की मदद करेगा और उन्नयन योजना को कार्यान्वित करने का कार्य करेगा। उसके नीचे उपयुक्त विभागों के जिला इंस्पेक्टर रहते हैं। प्रत्येक जिले में लगभग पंद्रह पंद्रह गाँवों के उन्नयन ब्लाक बना लिये गए हैं। इस प्रकार के लगभग ८ सौ ब्लाक बन चुके हैं। अब तक संयुक्त प्रान्त के कृषि विभाग के पास जो ८ सौ बीज स्टार थे वे इन ब्लाक के लिये बनाई गई बहुधैयसी सहकारी समिति को दे दिए गए हैं। ब्लाक के अन्दर योजना को कार्य रूप में परिणित करने की जिम्मेदारी इन समितियों

पर-ही है। जिला उन्नयन अफसर का इन समितियों से सीधा सम्बन्ध है और यह आशा की जाती है कि यह अफसर सब प्रकार के इंसपेक्टरो को काम की एक योजना के अनुसार व्यवस्थित कर सकेगा। आरंभ में इन उन्नयन ब्लाक में तालाब खुदाई, कम्पास्ट की खाद उत्पादन, वृक्ष लगाने, डेरी को व्यवस्था तथा प्रौढ़ शिक्षा का कार्य किया जायगा।

—:(*):—

भारत में खाद्य पदार्थों की कमी

द्वितीय महायुद्ध के पूर्व, यद्यपि साधारणतः लोग यह समझते थे कि भारतीय कृषि का धंधा पिछड़ा हुआ है उसमें उन्नति की आवश्यकता है प्रति बीघा पैदावार कम होती है। किन्तु उन्हें यह कल्पना भी नहीं थी कि भारत में खाद्य पदार्थों का ऐसा भयंकर टोटा भी हो सकता है कि विदेशों से खाद्य पदार्थ न आने पर यहाँ अकाल पड़ सकता है और भूख से मनुष्य मर सकते हैं। आज देश के सामने अनाज की कमी की भयंकर समस्या खड़ी है और प्रतिवर्ष करोड़ों रुपये का अनाज विदेशों से मगाना पड़ रहा है।

बात यह थी कि १९३६ के पूर्व भी देश में यथेष्ट अनाज उत्पन्न नहीं होता था। शहरो तथा मंडियों में काफी अनाज बिकने को आ जाता था इस कारण किसी को इस कमी का आभास नहीं मिलता था। इसका मुख्य कारण यह था कि खेती की पैदावार का मूल्य बहुत गिरा हुआ था २३ और ३५० मन गेहूँ बिकता था और लगान तथा सूद की दर बहुत अधिक थी। अस्तु किसान को विवश होकर अपनी पैदावार को मंडियों में बेचना पड़ता था तब जाकर वह लगान और सूद चुका पाता था परन्तु उसके पाग खाने के लिए काफी अनाज नहीं बचता था। वह आधा भूखा रहकर, दिन में एक समय भोजन करके तथा मोटा अनाज खाकर गुजर करता था। गेहूँ तो वह त्योहार तथा पर्वों के समय ही खाता था।

किन्तु आज स्थिति बदल गई है। खेती की पैदावार का मूल्य आकाश चंगा है किन्तु लगान सूद, तथा खेती के अन्य खर्चों में कोई विशेष वृद्धि है। अस्तु उसे इस बात की आवश्यकता नहीं रही कि वह भूखे रहकर

अपना समय काटे और खेत की अधिकांश पैदावार बाजार में बेच दें। अब वह कुछ अधिक खाने लगा साथ ही गेहूँ, इत्यादि भी बहुधा खाने लगा इसका परिणाम यह हुआ कि खाद्य पदार्थों की कमी गांवों से हटकर शहरों में पहुँच गई। शहरों में खाद्य पदार्थों का टोटा पड़ गया।

इसके अतिरिक्त बर्मा के जापान द्वारा अधिकृत हो जाने तथा स्वतंत्र हो जाने के उपरान्त वहाँ गृह-युद्ध आरम्भ हो जाने के कारण वहाँ से चावल आना कठिन हो गया। फिर देश के विभाजन के फल स्वरूप पाकिस्तान में वह प्रान्त चले गए जो खाद्य पदार्थों की उत्पत्ति की दृष्टि बहुल प्रान्त थे और भारत में वह प्रान्त आये जिनमें अनाज की कमी थी। फिर काश्मीर युद्ध तथा सैनिक आवश्यकताओं के लिए अधिक अनाज भर कर रखने के कारण देश में अनाज का टोटा पड़ गया। कंट्रोल की अव्यवस्था चोर बाजार तथा भ्रष्टाचार के कारण स्थिति और भी भयावह हो उठी।

खाद्य पदार्थों की कमी का अनुभव १९४२ में हुआ “खाद्य पदार्थ अधिक उत्पन्न करो” आन्दोलन चलाया गया। कपास तथा तिलहन की पैदावार को कम करने अनाज को बढ़ाने का प्रयत्न किया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि कुछ भूमि जो पहले कपास पैदा करती थी अनाज उत्पन्न करने के काम में आने लगी। “खाद्य पदार्थ अधिक उत्पन्न करो” आन्दोलन को थोड़ी सफलता हुई परन्तु अधिक सफलता नहीं मिली।

खाद्य पदार्थों की दृष्टि से जो प्रान्त बहुल प्रान्त थे वहाँ से अनाज लेकर टोटे वाले प्रान्तों में अनाज भेजा जाने लगा। साथ ही खाद्य पदार्थों का राशनिंग भी स्थापित किया गया।

देश में अधिक खाद्य पदार्थ उत्पन्न करने के लिए बंजर भूमि को जो बेकार पड़ी थी उसको खेती के योग्य बनाने के लिये भारत सरकार ने एक ट्रैक्टर विभाग खोला है। इस केन्द्रीय ट्रैक्टर विभाग से मध्य भारत, मध्य-प्रान्त, राजस्थान, पूर्वीय पंजाब तथा सयुक्त प्रान्त को ट्रैक्टर दिये गये हैं और हजारों बीघा भूमि को खेती के योग्य बनाया जा रहा है।

भारत सरकार तथा प्रान्तीय सरकारों ने मिलकर खाद बनाने के दो बड़े कारखाने स्थापित करने का निश्चय किया है जो ४॥ लाख टन खाद उत्पन्न करेंगे।

कृषि अनुसंधान कौंसिल का मत है कि देश में लगभग ३० प्रतिशत जनसंख्या को पूरा भोजन नहीं मिलता और जो भोजन भारतीय जनता को मिलता है न तो वह ध्येष्ट है और न पुष्टिक० । अतएव खाद्य पदार्थों में नीचे लिखी वृद्धि आवश्यक है । अनाज में १० प्रतिशत, दालों में २० प्रतिशत, घी तेल इत्यादि २५० प्रतिशत, फलों में ५० प्रतिशत, सब्जी में १०० प्रतिशत दूध से ३०० प्रतिशत अंडे और मछली में ३०० प्रतिशत चारे में ५५ प्रतिशत ।

सब कुछ प्रयत्न करने पर भी खाद्य समस्या का हल नहीं हुआ तो प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने अब एक गम्भीर अपील की है कि यदि हम खाद्य समस्या को हल नहीं कर सके तो डूब जावेंगे । इसी उद्देश्य से एक फूड कमिशनर नियुक्त किया गया है ।

आवश्यकता इस बात की है कि जो भी बंजर भूमि खेती के योग्य बनाई जा सकती है उसको खेती के योग्य बनाया जावे, कुयेँ खोदने के लिए किसानों को सहायता दी जावे । सरकारी कुओं को बनवाने के लिए प्रयत्न किया जावे । तथा रेल नहरों, कालेज, स्कूलों, तथा बंगलों, में जो भी भूमि है उसपर खेती की जावे । आज देश के सामने भयंकर समस्या उपस्थित है, सारा देश जब तक खाद्य समस्या को हल करने का प्रयत्न नहीं करेगा तब तक वह हल नहीं हो सकती ।

अभ्यास के प्रश्न

१—संयुक्त प्रान्त में कृषि-विभाग कब खोला गया और आरम्भ में उसने क्या काम किया ?

२—आजकल प्रान्त में कृषि-विभाग कौन कौन से कार्य करता है ?

३—प्रान्त में कृषि शिक्षा का कहाँ कहाँ प्रबन्ध है और इन कृषि स्कूल और कालेजों से क्या लाभ हैं ?

४—कृषि-विभाग के स्थापित होने से प्रान्त में खेती की क्या उन्नति हुई है ?

५—कृषि-विभाग अपने कर्मचारियों द्वारा किये गये आविष्कारों का किस प्रकार करता है ?

६—अच्छे बीज पैदा करने और उसका बेचने का प्रबन्ध इस प्रान्त में कैसा है ?

७—कृषि प्रदर्शनियों की क्या उपयोगिता है ?

सत्ताइसवाँ अध्याय

ग्राम और ज़िले का शासन

अब हम ग्राम और जिले का किस प्रकार शासन होना है इस पर विचार करते हैं। अधिकांश गाँवों की दशा खराब है, पढ़ लिख कर सुयोग्य हो जाने पर लोग जाकर शहरों में बस जाते हैं, वे ग्रामों का ध्यान नहीं रखते। इसी से ग्रामों की सफाई, रहन-सहन आदि में यथेष्ट उन्नति नहीं हो पाती। देश का जो भला चाहते हैं उन्हें गाँवों की समस्याओं का सहानुभूति पूर्वक अध्ययन करना चाहिये।

ग्राम शासन; ग्राम के मुख्य कर्मचारी

हर गाँव में चार कर्मचारी होते हैं। मुखिया, नम्बरदार, पटवारी और चौकीदार। नम्बरदार जमींदारों से मालगुजारी तथा सिंचाई (आबपाशी) की रकम वसूल करता है, और उसे तहसील में जमा कर देता है। वह अपने गाँव में शान्ति रखने का प्रयत्न करता है।

मुखिया

गाँव के किसी प्रभावशाली व्यक्ति को मुखिया बना दिया जाता है। गाँव की घटनाओं की मुखिया चौकीदार के द्वारा पुलिस में रिपोर्ट करवाता है। उसका तहसील से भी सम्बन्ध होता है। दौरे के समय वह राज्य कर्मचारियों के साथ सहयोग करता है।

पटवारी

बड़े गाँवों में एक ही गाँव का, और छोटे छोटे गाँवों में दो दो या अधिक का, एक पटवारी होता है। वह अपने गाँव के किसानों और जमींदारों के भूमि सम्बन्धी अधिकारों के कागज तथा रजिस्टर आदि रखता है। जब खेती में कोई तबदीली हो, कोई खेत या उसका हिस्सा बिक जावे,

या किसी खेत का मालिक बदल जावे या मर जावे तो पटवारी इस बात की रिपोर्ट तहसील में करता है। वह खेतों के नक्शे बनाता है, मालगुजारी का हिसाब रखता है। खेतों में कितनी पैदावार हुई है कितनी भूमि पर अमुक फसल उत्पन्न की गई है, गाँव में कितने पशु हैं इनके आँकड़े भी पटवारी ही रखता है।

चौकीदार

चौकीदार गाँव में पहरा देता है और चौकसी करता है। वह पुलिस में प्रति सप्ताह यह खबर देता है कि गाँव में उस सप्ताह के भीतर कितने आदमी मरे, कितने बच्चों का जन्म हुआ; वह गाँव की चोरी, मारपीट तथा अन्य अपराधों की रिपोर्ट करता है।

तहसीलदार

ऊपर बतलाए हुए गाँवों के कर्मचारी तहसीलदार के आधीन होते हैं। तहसीलदार अपनी तहसील का प्रधान अधिकारी होता है। तहसीलदार के सहायक कर्मचारी नायब तहसीलदार, कानूनगो इत्यादि होते हैं। प्रत्येक कानूनगो को एक परगना दे दिया जाता है, वह उस परगने के पटवारियों के काम की देखभाल करता है। तहसीलदार प्रजा और अपने से ऊपर के अधिकारियों को एक दूसरे के सम्बन्ध में आवश्यक सूचना देता रहता है। उसका मुख्य कार्य तहसील की मालगुजारी वसूल करना है, जिसे वह अपने सहायक कानूनगोओं की सहायता से वसूल करता है। तहसीलदार फौजदारी के मामले भी सुनता है। उसे तीसरे या दूसरे दर्जे की मजिस्ट्रेटों के अधिकार भी होते हैं। वह पचास से लेकर दो सौ रुपये तक जुर्माना और एक माह से छः माह तक की कैद की सजा दे सकता है। इन राज्य कर्मचारियों के अतिरिक्त कुछ ऐसे विभाग हैं जिनका गाँव के शासन से तो कोई सम्बन्ध नहीं है वरन् गाँव की भलाई करना जिनका कर्तव्य है। इन विभागों के कर्मचारियों का भी गाँवों से सम्पर्क रहता है, उदाहरण के लिए आबपाशी,

*मजिस्ट्रेट—वह कर्मचारी जिसे शासन तथा न्याय सम्बन्धी कुछ अधिकार प्राप्त हों।

कृषि-विभाग, सहकारिता विभाग, ग्राम सुधार विभाग तथा स्वास्थ्य विभाग के कर्मचारी। इन कर्मचारियों का गाँव की सेवा करना मुख्य कार्य है।

देहाती बोर्ड और जिला-कौंसिल

देहातों में प्रारम्भिक शिक्षा और स्वास्थ्य आदि का कार्य करने वाली मुख्य संस्थाएँ बोर्ड कहलाती हैं। इनके तीन भेद हैं। किसी किसी प्रान्त में तो इनमें से तीनों ही प्रकार के बोर्ड हैं और कहीं कहीं केवल दो या एक ही तरह के हैं।

१—लोकल-बोर्ड, यह कुछ ग्रामों के समूह में होता है।

२—ताल्लुका या सब-डिवीजनल-बोर्ड यह एक ताल्लुके या सब डिवीजन में होता है। यह लोकल बोर्डों के काम की देखभाल करता है।

३—जिला बोर्ड, इसे किसी प्रान्त में जिला कौंसिल भी कहते हैं; यह एक जिले में होता है और जिले भर के लोकल-बोर्डों (या ताल्लुका बोर्डों) का निरीक्षण करता है।

इन बोर्डों का संगठन कुछ कुछ म्यूनिसिपैलिटियों की ही भाँति होता है। यद्यपि बोर्डों में अधिकतर चुने हुये सदस्य ही होते हैं, तथापि कहीं-कहीं नामजद सदस्य भी काफी होते हैं। किस जिला बोर्ड में कितने सदस्य हों; तथा उसका सभापति चुना हुआ रहे या नियुक्त किया जावे, यह प्रत्येक प्रांत के जिला बोर्ड-कानून से निश्चित किया हुआ है। संयुक्त प्रान्त में सभापति चुना हुआ एवं गैर सरकारी होता है।

निर्वाचक और सदस्य

जिला बोर्डों के लिए निम्नलिखित व्यक्ति निर्वाचक या मतदाता नहीं हो सकते :—(क) जो स्वतन्त्र भारत की प्रजा न हों (ख) जो अदालत से पागल ठहराए गये हों और (ग) जो इक्कीस वर्ष से कम के हों। इन्हें छोड़कर साधारणतया ऐसा प्रत्येक व्यक्ति (पुरुष या स्त्री) निर्वाचक हो सकता है जो कि एक निश्चित मालगुजारी, लगान अथवा कर देता हो। वह शिक्षित हो। शिक्षा कौन सी दर्जे तक हो यह भी निश्चित है।

निर्वाचकों को चाहिये कि खूब सोच समझ कर वोट दें। उन्हें ऐसे उम्मीदवार को ही अपना वोट देना चाहिए जो कि गाँव वालों की सच्ची सेवा करना चाहता हो और सदस्य बनने के सर्वथा योग्य हो और जिर

गाँवों के विशेष हित होने की आशा हो। किसी स्वार्थवश वा किसी प्रकार के लिहाज़ के कारण अयोग्य आदमियों को कभी बोट न देना चाहिये।

बोर्ड के चुनाव के लिए जिले को भिन्न भिन्न निर्वाचन क्षेत्रों में बाँट दिया जाता है। प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र से एक सदस्य बोर्ड में जाता है। बोर्ड के सदस्य गाँवों के हित का बहुत कुछ काम कर सकते हैं, उन्हें गाँव वालों की सेवा का बहुत अवसर मिलता है। यदि सच्चाई और ईमानदारी से सदस्य ग्रामवासियों की सेवा करना चाहें तो वे बहुत कुछ कर सकते हैं। अतएव उन्हीं लोगों को उम्मीदवार चुनाव के लिये खड़े होना चाहिए जो कि योग्य हों और समय देकर गाँव वालों की सेवा करना चाहें।

जिला बोर्ड के कार्य

बोर्ड का कर्तव्य अपने ग्राम्य क्षेत्र में शिक्षा, स्वास्थ्य, सफाई आदि के अतिरिक्त कृषि और पशुओं की उन्नति करना है। इस प्रकार इनके मुख्य कार्य ये हैं :—१—सड़के बनवाना और उनकी मरम्मत करवाना। उन पर पेड़ लगवाना और उन पेड़ों की रक्षा करना। २—प्रारम्भिक शिक्षा का प्रचार और प्रबन्ध करना (देहातों में प्राइमरी या मिडिल स्कूल जिला बोर्ड के ही होते हैं) ३—चिकित्सा और स्वास्थ्य का प्रबन्ध करना, चेचक या प्लेग आदि का टीका लगवाना, पशुओं के इलाज के लिये पशु-चिकित्सालय की व्यवस्था करना। ४—बाजार, मेला, नुमाइश या कृषि-प्रदर्शनी का प्रबन्ध करना। ५—पीने के पानी के लिये तालाब या कुएँ खुदवाना या उनकी मरम्मत करवाना। ६—क़ाँजी हौज अर्थात् ऐसे स्थान की व्यवस्था करना, जहाँ खेती आदि की हानि करने वाले जानवर रोक कर रखे जाते हैं, [जिस आदमी का पशु नुकसान करते हैं वह उन्हें क़ाँजी हौज भेज देता है, जब पशु का मालिक उसे लेने आता है तो उसे निर्धारित जुर्माना देना पड़ता है] ७—घाट, नाव, पुल आदि का प्रबन्ध करना।

जिला बोर्डों की आय

स्वतन्त्र भारत में बोर्डों के क्षेत्र में रहने वाले व्यक्तियों की संख्या इक्कीस करोड़ से भी अधिक है। उपयुक्त कार्यों तथा इस जन संख्या को देखते हुये उनकी कुल वार्षिक आय जो लगभग सौ लह करोड़ रुपये हैं बहुत कम

है। आय अधिकतर उस महसूल से होती है जो भूमि पर लगाया गया है, और जो सरकारी वार्षिक लगान या मालगुजारी के साथ ही प्रायः एक आना या अधिक फी रुपये के हिसाब से वसूल करके इन बोर्डों को दे दिया जाता है। इनके अतिरिक्त विशेष कार्यों के लिये सरकार बोर्डों को कुछ रकम, कुछ शर्तों से प्रदान करती है। आय के अन्य साधन, तालाब, घाट, सड़क पर महसूल पशु-चिकित्सा और स्कूलों की फीस, काँजी हौज की आमदनी, मेले, नुमाइशों पर कर तथा सार्वजनिक उद्यानों का भूमि कर है। प्रायः लोकल बोर्डों की कोई स्वयं आय नहीं होती, उन्हें समय पर जिला बोर्डों से ही कुछ रुपया मिल जाता है। वे उस रुपये को जिला-बोर्ड की इच्छा या सम्मति के विरुद्ध खर्च नहीं कर सकते।

सरकारी नियंत्रण

डिप्टी कमिश्नर (या कलेक्टर) अथवा कमिश्नर इनके काम की देखभाल करते हैं। कलेक्टर को इनके सम्बन्ध में बहुत अधिक अधिकार हैं। जब वह समझे कि जिला बोर्ड का कोई काम या कोई प्रस्ताव आदि ऐसा है जिससे सार्वजनिक हित की हानि होती है तो वह उस काम को बन्द कर सकता है तथा उस प्रस्ताव को अमल में लाये जाने से रोक सकता है। यदि प्रान्तीय सरकार यह समझे कि कोई बोर्ड अपना कार्य ठीक तरह से नहीं करता तो वह उसे तोड़ सकती है। उस दशा बोर्ड में नया चुनाव होता है। संयुक्त प्रान्त की सरकार जिला बोर्डों के सम्बन्ध में एक नया कानून बनाने जा रही है उसके अनुसार बोर्डों के कार्य में कलेक्टर या कमिश्नर को हस्तक्षेप करने का भविष्य में अधिकार नहीं रहेगा और न बोर्ड में नामजद सदस्य ही रखे जावेंगे। स्वायत्त शासन विभाग का मन्त्री (Minister for Local Self-Government) ही बोर्डों का नियंत्रण करेगा।

नागरिक भावों की आवश्यकता

हमें भी भली भाँति समझ लेना चाहिये कि यदि हमारे गाँव में शिक्षा गंदगी और लड़ाई भगड़ा रहेगा तो हमारी उन्नति कभी नहीं हो सकती। अतएव हमें अपने गाँव और जिले की भलाई का ध्यान रखना चाहिये। अस्तु, प्रत्येक गाँव के व्यक्ति को जिला बोर्ड के काम में दिलचस्पी लेना चाहिये और यह देखते रहना चाहिये कि उनके निर्वाचित सदस्य :

अलाई के लिये क्या क्या कार्य कर रहे हैं ? जब मददाता (बोटर) इतने सतर्क रहेंगे सभी बोर्ड अधिक उपयोगी-प्रमाणित हो सकेंगे ।

जिले का शासन

यह तो हम पहले ही बतला चुके हैं कि ग्राम के कर्मचारी तहसीलदार के आधीन होते हैं । तहसीलदार सब-डिवीजनल अफसर के आधीन, और सब-डिवीजनल अफसर, जिला मैजिस्ट्रेट (कलेक्टर) के आधीन होते हैं । जिला मैजिस्ट्रेट को पंजाब, मध्यप्रान्त तथा अवध में डिप्टी कमिश्नर कहते हैं और आगरा तथा शेष प्रान्तों में कलेक्टर कहते हैं ।

मदरास प्रान्त को छोड़कर अन्य प्रान्तों में कुछ कुछ जिलों की एक कमिश्नरी है । उसका प्रधान अधिकारी कमिश्नर कहलाता है । वह अपनी कमिश्नरी के जिलों के प्रबन्ध की देख-भाल करता है । अब हम जिले का शासन कैसे होता है इसका वर्णन करते हैं ।

शासन व्यवस्था में जिले का स्थान

स्वतंत्र भारत में कुल मिलकर करीब २५० जिले हैं । जिलों का क्षेत्रफल, जनसंख्या और सरकारी आय भिन्न-भिन्न है । तथापि राज्य की कल जैसी एक जिले में चलती हुई दिखलाई देती है वैसी ही प्रायः अन्य जिलों में भी है । जैसे अफसर एक जिले में काम करते हैं वैसे ही औरों में भी हैं । जनता के काम-काज का केन्द्र जिला होता है । ग्रामीण जो अधिकतर प्रवास भीरु होते हैं उन्हें भी जिलों में काम पड़ता है । जिले के शासन प्रबन्ध को देखकर ही देश के शासन का अनुमान किया जा सकता है ।

जिला मैजिस्ट्रेट के कार्य

प्रत्येक जिले का प्रधान जिला मैजिस्ट्रेट कहलाता है । उसे कलेक्टर या डिप्टी कमिश्नर भी कहते हैं । उस पर जिले की मालगुजारी वसूल करने की जिम्मेदारी होती है । इसीलिए उसे कलेक्टर कहते हैं । वह अपने जिले की भूमि सम्बन्धी मामलों पर विचार करता है, सरकार और प्रजा के सम्बन्ध का ध्यान रखता है, और जमींदार और किसानों आदि के झगड़ों का फैसला करता है । दुर्भिक्ष, बाढ़ तथा फव्वारों के नष्ट हो जाने पर अथवा अन्य आवश्यकता के समय कृषकों का सरकारी सहायता उसकी भूमि के अनुसार ही मिलती है । जिले के खजानों का वही उत्तरदाता है ।

उसे म्यूनिसिपैलिटियों तथा जिला बोर्ड की निगरानी का अधिकार है। उसे अव्वल दर्जे के मजिस्ट्रेट के भी अधिकार प्राप्त हैं जिनसे वह एक अपराध पर दो साल की कैद और एक हजार रुपये तक का जुर्माना कर सकता है। जिले की सब प्रकार सुख-शान्ति का वही उत्तरदाता है। वही स्थानीय पुलिस की निगरानी भी करता है इस बात का निश्चय करने में कि कहाँ पुल, सड़क, इत्यादि बनने चाहिये, कहाँ सफाई का प्रबन्ध होना चाहिये तथा जिले के किन-किन स्थानों का स्थानीय स्वराज्य मिलना चाहिए, उसी की सम्मति प्रामाणिक मानी जाती है। जिले में जिस बात का प्रबन्ध ठीक न हो उसका सुधार करना, और हर एक बात की रिपोर्ट उच्च कर्मचारियों के पास भेजना, उसी का कर्तव्य है। जिले की आन्तरिक दशा जानने तथा उसे सुधारने के विचार से उसे देहात में दौरा भी करना होता है।

जिले के अन्य कर्मचारी

जिले में अनेक प्रकार के कार्य होते हैं, जैसे शान्ति रखना, झगड़ों का फैसला करना, मालगुजारी वसूल करना, सड़क, पुल आदि बनवाना, अकाल में लोगों की सहायता करना, रोगियों का इलाज करना, म्यूनिसिपैलिटी जिला बोर्डों की निगरानी रखना, जेलखाने और स्कूलों का निरीक्षण करना। इन विविध कार्यों के लिये जिले में कई अफसर रहते हैं, जैसे स्कूल के डिप्टी इन्स्पेक्टर, पुलिस का सुपरिन्टेन्डेंट या पुलिस कप्तान, अस्पताल का सिविल सर्जन, जेला का सुपरिन्टेन्डेंट, निर्माण कार्य के लिये एग्जक्यूटिव इंजीनियर, और न्याय कार्य के लिये जिला जज आदि होते हैं। ये अफसर अपने पृथक् पृथक् विभागों के कर्मचारियों के अधीन होते हैं। परन्तु शासन के विचार से जिला जज और मुंसिफ आदि को छोड़कर सब पर जिला मजिस्ट्रेट ही प्रधान होता है। जिला मजिस्ट्रेट के कार्य में सहायता देने के लिये डिप्टी और सहायक मजिस्ट्रेट भी रहते हैं।

प्रायः प्रत्येक जिले के कुछ भाग होते हैं जिन्हें सब डिवीजन कहते हैं। हर एक सब डिवीजन एक डिप्टी कलेक्टर अथवा एकस्ट्रा असिस्टेंट कमिश्नर के अधीन रहता है। वह अपने अपने सब डिवीजन में सब डिवीजनो के अफसरों के अधिकार जिला मजिस्ट्रेट की भांति होते हैं।

कमिश्नर

पहिले बहा जा चुका है कि मदरास प्रान्त को छोड़ कर प्रत्येक बड़े प्रान्त में कुछ कमिश्नरियां होती हैं। इनके प्रधान अफसर को डिवीज़नल कमिश्नर या कमिश्नर कहते हैं। वह शासन सम्बन्धी कोई विशेष कार्य नहीं करता बवल अपने आधीन ज़िला अफसरों के कार्य की जांच पड़ताल करता है, जिलों से जो रिपोर्ट या पत्र आदि प्रान्तीय सरकार के पास जाते हैं वे सब कमिश्नर के हाथ से गुजरते हैं। कमिश्नर माल (रेव्यू) के मुकदमों की अपील भी सुनता है। मालगुजारी के बन्दोबस्त में इसका काम केवल परामर्श देना है, पर विशेष दशाश्रों में उसे मालगुजारी की वसूलयाबी रोकने का अधिकार है।

कमिश्नरों को अपनी अपनी ग्युनिसिपैलिटियों के काम देखने-भालने के भी कुछ अधिकार होते हैं। परन्तु उनका विशेष सम्बन्ध मालगुजारी के प्रबन्ध के लिये होता है। पञ्जाब और सी० पी० में सर्वोच्च अधिकारी फाइनेंसियल कमिश्नर है और संयुक्त प्रान्त, बिहार और बंगाल में रेव्यू बोर्ड हैं। रेव्यू बॉर्ड में एक से लेकर चार तक मेम्बर होते हैं। फाइनेंसियल कमिश्नर और रेव्यू बोर्ड मालगुजारी के सम्बन्ध में कमिश्नरों और कलेक्टरों के कार्य की देखभाल करते हैं, माली मामलों में यह कमिश्नरों के निर्णय के विरुद्ध अपील भी सुनते हैं।

अभ्यास के प्रश्न

१—गाँव के मुख्य कर्मचारी कौन से होते हैं और वे क्या कार्य करते हैं ?

२—तहसीलदार और उसके अधीन कर्मचारी क्या काम करते हैं ?

३—ज़िला बॉर्ड किसे कहते हैं और वह कैसे बनता है ?

४—ज़िला बोर्ड क्या क्या काम करता है ?

५—ज़िला बॉर्ड के पास खर्च करने के लिये रुपया कहाँ से आता है ?

६—यदि तुम कभी अपने ज़िला बोर्ड के चेयरमैन चुने जाओ और बहुमत तुम्हारे पक्ष में हो तो तुम गाँवों की दशा सुधारने के लिये क्या करोगे ?

७—जिला का शासन किस प्रकार चलना है ? पटवारी या मुखिया का इसमें क्या स्थान है ? [१९४३]

८—जिला मजिस्ट्रेट और कमिश्नर क्या काम करते हैं ?

९—गांव वालों का कौन से सरकारी विभागों से अधिक काम पड़ता है ?

१०—अपने जिले की शासन व्यवस्था का विशद वर्णन कीजिये । ग्रामीणों के लिये चौकीदार, पटवारी और तहसीलदार का क्या काम और महत्व है । (१९४५)

अट्ठाइसवां अध्याय

ग्राम-पंचायत

यद्यपि गांव की दशा अत्यन्त गिरी हुई है और हानिकर रूढ़ियों के कारण उनकी दशा और भी खराब हो गई है, फिर भी गांवों के सामाजिक जीवन में कुछ ऐसी अच्छाइयाँ हैं जो आज भी नष्ट नहीं हुई हैं । यदि गांव की उन अच्छी रस्मों के आधार पर गांव में कार्य किया जावे तो वहां बहुत कुछ सुधार हो सकता है । गांवों के सामाजिक जीवन का अध्ययन करने के लिये यह आवश्यक है कि गांव वालों के पारस्परिक सम्बन्ध को समझ लिया जावे ।

गांव वालों का पारस्परिक सम्बन्ध

गांव में भ्रातृ भाव तथा सहयोग की भावना अब भी बहुत कुछ अंशों में शेष है । सारा गांव एक बड़े कुटुम्ब के समान होता है और समय पड़ने पर सब लोग एक दूसरे की सहायता के लिए तैयार रहते हैं ।

यदि किसी किसान के यहाँ लड़की का विवाह होता है तो गांव भर के लोग चारा, लकड़ी, दही, दूध तथा ठीके के रुपये से उसकी सहायता करते हैं । विवाह का सारा कार्य बिरादरी तथा गांव की अन्य स्त्रियाँ मिलकर कर लेती हैं । पुरुष भी बारात की सेवा में भरसक सहायता देते हैं । खेतों की बुवाई, सिंचाई और कटाई के समय भी किसान एक दूसरे का काम करते

है जिससे कि काम हलका हो जाता है। प्रत्येक बिरादरी की एक पंचायत होती है जो कि अपनी बिरादरी से सामाजिक जीवन का नियन्त्रण करती है। किसी-किसी प्रदेश में जहाँ कि पश्चिमीय सभ्यता का प्रभाव नहीं पड़ा है, गाँव का सारा आर्थिक और सामाजिक संगठन ही सहयोग के अधार पर खड़ा हुआ मिलता है। राजताने के गाँवों में सिंचाई के लिए गाँव के तालाब की मरम्मत गाँव के प्रत्येक पुरुष और गाँव की बहू (गाँव की लड़कियाँ इस श्रम से मुक्त हैं) को करनी पड़ती है। गाँव के मन्दिर के व्यय के लिए घर पीछे पाव भर रुई सवा सेर तेल और छटांक भर घी लिया जाता है। गाँव के भगड़ों का फैसला पंचायत करती है और शिक्षा तथा अन्य सार्वजनिक कार्यों के लिए ग्राम पंचायत घर के पीछे कर उगाहती है। एक प्रकार से सारा स्थानीय शासन ही गाँवों की पंचायत करती है। गाँव के लोग फिर चाहे वे भिन्न-भिन्न जातियों के ही क्यों न हों एक दूसरे को अपने भाई के सामन ही मानते हैं। एक क्षत्रिय का लड़का भी एक कहार को जो उससे आयु में बड़ा है चाचा या दादा कहकर पुकारता है। पहले तो गाँवों का जीवन सुन्दर, मधुर, और सहयोग का आदर्श जीवन था। किन्तु आधुनिक काल में पश्चिमीय सभ्यता के मूल आधार व्यक्तिवाद (Individualism) के प्रभाव के कारण तथा आर्थिक और सामाजिक तन के कारणों से गाँवों का यह सुन्दर सामाजिक संगठन नष्ट होता जा रहा है। आवश्यकता इस बात की है कि गाँवों की इन अच्छी रस्मों और भावभाव को नष्ट होने से बचाया जावे और गाँवों को नवजीवन प्रदान किया जावे।

गाँवों की संस्थाएँ और उनका महत्व

भारतीय ग्रामों की मुख्य संस्था पंचायत थी। ब्रिटिश शासन के पूर्व पंचायत वस्तुतः गाँव का शासन करती थी और प्रत्येक गाँव इस दृष्टि से स्वावलम्बी था। किन्तु ब्रिटिश शासन काल में उनका महत्व जाता रहा है। पंचायत के विषय से नीचे विस्तारपूर्वक लिखा जाता है। भविष्य में सम्भवतः पंचायतें फिर महत्वपूर्ण हो जावेंगी।

*व्यक्तिवाद - इस सिद्धान्त को मानने वाले केवल अपने स्वार्थों की ओर ही ध्यान देते हैं।

दूसरी महत्वपूर्ण संस्था जो किसी किसी गाँव में पाई जाती है वह है सहकारी समिति। सहकारी समितियाँ भिन्न भिन्न प्रकार की होती हैं। साख समिति उत्पादक समिति, क्रय-विक्रय समिति, रहन-सहन-सुधार समिति, तथा उपभोक्ता स्टोर इत्यादि। सहकारी समितियों गाँव वालों को ऋण देने तथा उनकी आर्थिक स्थिति को अच्छा बनाने का प्रयत्न करती हैं। इनके विषय में सहकारिता के अध्याय में विस्तारपूर्वक लिखा गया है।

थोड़े दिनों से गाँवों में प्रान्तीय सरकारों की ओर से ग्राम-सुधार का कार्य हो रहा है। जिस गाँव को ग्राम-सुधार कार्य के लिये छूटा जाता है वहाँ एक ग्रामसुधार पचायत का चुनाव कर लिया जाता है। आर्गनाइज़र इस पचायतों के सहयोग तथा परामर्श से ग्राम-सुधार का कार्य करते हैं।

इनके अतिरिक्त किसी किसी गाँव में स्वतन्त्र पचायत होती हैं जो पुरानी पंचायतों के अवशेष चिह्न मात्र होती हैं। वे सरकार द्वारा स्वीकृत नहीं होती हैं, परन्तु गाँव के सार्वजनिक कार्यों की देख-भाल करती हैं तथा उन पर नियन्त्रण रखती हैं। गऊशाला, मन्दिर, प्याऊ पौसला तथा कहीं कहीं पाठशालाओं को भी ये पचायतें चलाती हैं। परन्तु इस प्रकार की पचायतें बहुत कम हैं।

पचायतें

प्राचीन काल में यहाँ प्रत्येक गाँव और नगर में एक प्रभावशाली पचायत रहती थी, जो सारा स्थानीय शासन स्वयं करती और केन्द्रीय (Central) सरकार अर्थात् राजा के सामने अपने क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करती थी। पंचायत स्थानीय रक्षा के लिये अपनी पुलिस रखती, स्वयं भूमि कर वसूल करके राज-कोष में भेजती, गाँव और नगर की सफाई का प्रबन्ध करती थी। अपने क्षेत्र के धार्मिक स्थानों, जलाशयों तथा पाठशालाओं की देख-भाल तथा उनका संचालन करती थी, और अपने गाँव वा नगर में छोटे-छोटे दीवानी और फौजदारी के झगड़ों का निपटारा करती थी। भारतवर्ष में पंचायतों का यहाँ तक विश्वास और प्रभाव था कि अब तक भी “पंच परमेश्वर” की कहावत चला आती है। हिन्दू राजाओं के ज़माने से ही यहाँ पंचायतें थीं, मुसलमानी अमलदारी में भी वे एक महत्वपूर्ण संस्था के रूप में रहीं। परन्तु अंग्रेजी शासन काल में उनकी आय तथा अधिकार प्रान्तीय

सरकार ने लें लिया। पुलिस तथा फौजदारी अदालतें स्थापित कर दी गई इससे पंचायतों का कमश ह्रास हो गया। अब भी कहीं कहीं पंचायतें हैं जो धर्मशाला, मन्दिर, जलाशय तथा अन्य धार्मिक हित के कार्य करती हैं किन्तु ये प्राचीन व्यवस्था के स्मृति-चिन्ह मात्र हैं।

कुछ वर्षों से भारतीय ग्रामों की इस संस्था का महत्व सरकार ने समझा है और पंचायतों का पुनः नवीन रूप से स्थापित करने का उद्योग किया जा रहा है। इनके सम्बन्ध में भिन्न भिन्न प्रान्तों में नए कानून बनाये गये हैं और धीरे धीरे इनकी स्थापना की जा रही है।

पंचायतों की स्थापना

कुछ प्रान्तों में यह नियम है कि यदि किसी ग्राम के निवासी अपने यह पञ्चायत स्थापित करना चाहें तो उस ग्राम के कुछ प्रतिष्ठित व्यक्तियों को कलेक्टर के यहाँ इस आशय की दरखास्त देनी चाहिये। कलेक्टर इस बात की जाँच करेगा कि वहाँ पञ्चों का सब कार्य करने योग्य काफी आदमी मिल सकते हैं या नहीं। यदि इस जाँच का फल अनुकूल हो तो वह पञ्चों को नामजद कर देता है और उन पंचों में से एक को सरपंच नियुक्त कर देता है। जब यह कार्यवाही हो चुकती है तो पंचायत स्थापित हो जाती है, और यह निश्चय कर दिया जाता है कि सप्ताह में किस दिन और किस स्थान पर तथा किस समय पंचायत काम किया करेगी। संयुक्त प्रान्त में तो नए कानून के अनुसार प्रत्येक ग्राम में पंचायत स्थापित हो गई हैं।

यह तो पूर्व ही कहा जा चुका है कि कुछ प्रान्तों में कलेक्टर पंच को रथ नामजद करता है। यदि भविष्य में कलेक्टर को यह ज्ञात हुआ कि कोई पंच अथवा सरपंच अयोग्य अथवा बेईमान है तो वह उस पंच अथवा सरपंच को हटा भी सकता है। यदि कोई पञ्च इस्तीफा दे दे अथवा मर जावे तो कलेक्टर उसके स्थान पर दूसरा पञ्च नामजद कर देता है।

कमिश्नर की लिखित सम्मति से कलेक्टर किसी भी पञ्चायत को तोड़ सकता है।

पञ्चायत अदालत में कम से कम पाँच और अधिक से अधिक सात पञ्च होते हैं किन्तु यदि तीन पञ्च भी हाज़िर हो तो कार्य हो सकता है।

पञ्चायत अदालत को छोटे मोटे दीवानी तथा फौजदारी मामलों का फैसला करने का अधिकार होता है तथा (Cattle Trespass Act) अथवा घूमने वाले मवेशियों द्वारा खेतों का नुकसान होने पर उनके मालिकों पर जुर्माना करने का भी अधिकार होता है। इनके अतिरिक्त सफाई सम्बन्धी कानून (Village Sanitation Act) के अनुसार पञ्चायतों को सफाई सम्बन्धी अधिकार भी है।

फौजदारी के मामलों में पञ्चायतों को अधिक से अधिक एक सौ रुपये मवेशियों द्वारा हानि पहुँचाये जाने के मामलों में अधिक से अधिक पाँच रुपये तथा गाँव की सफाई सम्बन्धी मामलों में अधिक से अधिक एक रुपया जुर्माना करने का अधिकार है।

प्रत्येक पञ्चायत के क्षेत्र में एक विलेज-फंड (Village fund) खोला जाता है जिसका प्रबन्ध पञ्चायत करती है। विलेज फंड में मुकदमा लड़ने वाले वादियों और प्रतिवादियों से ली हुई फीस, जुर्माने का रुपया, तथा बॉर्ड तथा प्रान्तीय सरकार द्वारा दी गई सहायता जमा की जाती है। इस फंड के द्वारा पञ्चायत अपने क्षेत्र में शिक्षा, स्वास्थ्य, सफाई, पानी, गाँव के रास्ते ठीक करना तथा अन्य सार्वजनिक हित के कार्य करती है।

पञ्चायतों के कार्य करने का ढंग

जो भी व्यक्ति कोई मुकदमा दायर करना चाहता है वह सरपंच को लिखित अथवा जवानी दरखास्त देता है और नियत फीस जमा कर देता है। उस व्यक्ति की दरखास्त रजिस्टर में लिख ली जाती है और उसके आँगूठे का निशान अथवा हस्ताक्षर ले लिए जाते हैं। पञ्चायत की आगामी बैठक में उस व्यक्ति की दरखास्त सुनने के उपरान्त यदि पञ्चायत ठीक समझती है तो प्रतिवादी के नाम समन भेजती है। पञ्चायत में किसी भी पक्ष की ओर से कोई वकील पैरवी नहीं कर सकता। फैसला पक्षों के बहुमत से होता है। कुछ प्रान्तों में भी लगभग ऊपर लिखे हुए नियम लागू हैं।

पञ्चायत की सफलता के उपाय

पञ्चायतों से ग्राम-सुधार तथा न्याय सम्बन्धी बहुत कुछ काम हो सकता है। लोगों का मुकदमेंबाजी में जो अपरिमित धन और शक्ति नष्ट होती है वह बहुत कुछ बच सकता है। हाँ, ऐसी संस्थाओं की सफलता के लिए

यह अत्यन्त आवश्यक है कि वे अपने उत्तरदायित्व को समझें। वे अधिकारियों के दबाव में न रहें अपने नैतिक बल से कार्य करें, तभी जनता का उन पर यथेष्ट विश्वास हो सकता है और उन्हें लोगों का समुचित सहयोग मिल सकता है। पञ्च ऐसे आदमी होने चाहिये। जिनके लिये जनता की सम्मति हो, जिन्होंने सर्वसाधारण की सेवा की हो तथा भविष्य में भी जो लोक-हित के अभिलाषी हों। पञ्चों का कर्त्तव्य है कि वे अधिकार की भावना न रखकर अपने कार्य को कर्त्तव्य समझकर सेवा भाव से काम करें; जनता के अधिकाधिक सम्पर्क में आवें, और उनकी आवश्यकताओं और परिस्थितियों की यथेष्ट जानकारी रखें। अभी तक पञ्चायतों को बहुत कम अधिकार दिये गये थे इसी कारण उनका कोई विशेष महत्व नहीं था। जनता की माँग है कि भविष्य में पञ्चायतों को अधिक अधिकार दिये जावें। सम्भवतः अब जब कि जनता के प्रतिनिधि ही प्रान्त का शासन कर रहे हैं तब सब प्रान्तों में पञ्चायतों के अधिकार अवश्य बढ़ा दिये जावेंगे।

संयुक्त प्रान्त का पञ्चायत राज्य ऐक्ट

१९४७ में संयुक्त प्रान्त का पञ्चायत राज्य ऐक्ट पास हो गया और २७ दिसम्बर १९४७ में वह लागू कर दिया गया। इस ऐक्ट के अनुसार गाँव की पञ्चायतों को गाँव के शासन में बहुत कुछ अधिकार मिल गये हैं। और वे स्थानीय शासन को अपने हाथ में ले रही हैं।

इस ऐक्ट के अन्तर्गत नीचे दी हुई संस्थायें स्थापित हो गई हैं जो गाँव का शासन प्रबन्ध करती हैं :—

गाँव सभा

प्रान्तीय सरकार ने गाँवों में गाँव सभा स्थापित कर दी है। प्रत्येक गाँव सभा में वे सब प्रौढ़ सम्मिलित होते हैं जो उस क्षेत्र के स्थायी निवासी हों। लेकिन ऐसा कोई प्रौढ़ उसका सदस्य नहीं हो सकेगा यदि :—

(क) उसका दिमाग खराब हो।

(ख) उसको कोढ़ हो।

(ग) वह दिवालियेपन से बरी नहीं किया गया हो।

(घ) सरकारी नौकर हो या आनरेरी मैजिस्ट्रेट हो, आनरेरी मजिस्ट्रेट

या आनरेरी असिस्टेन्ट कलेक्टर हो जिसके अधिकार क्षेत्र में किसी गविन्सभा का क्षेत्र हो ।

(ड) उसे चुनाव सम्बन्धी किसी अपराध के लिए दंड दिया जा चुका हो या ।

(च) उसको किसी नैतिक अपराध में दंड दिया जा चुका हो या नेक-चलनी के लिए जमानत जमा करने की आज्ञा दी गई हो ।

गाँव सभा की वर्ष में दो बैठकें होंगी, एक खरीफ की बैठक दूसरी रबी की बैठक, आवश्यकता पड़ने पर सभापति स्वयं अथवा दूसरे सदस्यों की लिखित माँग पर स्वयं बैठक बुला सकता है ।

गाँव सभा की खरीफ की बैठक में सभा का बजट तैयार करके विचारार्थ उपस्थित किया जावेगा तथा रबी की बैठक में वर्ष का हिसाब रक्खा जावेगा ।

गाँव सभा अपने सदस्यों में से एक को सभापति और दूसरे को उप-सभापति चुनेगी जो तीन वर्ष तक अपने पद पर रहेंगे ।

गाँव सभा अपने सदस्यों में से कम से कम ३० व्यक्तियों की एक "गाँव पंचायत" चुनेगी जो सभा की कार्यकारी होगी । गाँव सभा का सभापति और उपसभापति क्रमशः गाँव पंचायत के सभापति और उपसभापति होंगे ।

गाँव पंचायत के कार्य

(क) सड़कों को बनवाना उनकी मरम्मत करना उनकी सफाई तथा रोशनी का प्रबन्ध करना ।

(ख) चिकित्सा का प्रबन्ध करना ।

(ग) गाँव की सफाई करवाना तथा संक्रामक रोगों को न फैलने देने तथा दूर करने का उपाय करना ।

(घ) जन्म, मृत्यु तथा विवाहों का रजिस्टर रखना ।

(ङ) मेलों तथा बाजारों का प्रबन्ध करना ।

(च) गाँव में प्रारम्भिक शिक्षा का प्रबन्ध ।

(छ) चरागाहों को छोड़ना, और उनका प्रबन्ध करना ।

(ज) कुओं तथा तालाबों को सार्वजनिक उपयोग के लिए बनवाना तथा उनकी मरम्मत करना ।

(अ) खेती बारी, व्यापार और उद्योग धंधों की उन्नति में सहायता करना ।

(ज) आग लग जाने पर लोगों के जीवन तथा उनकी सम्पत्ति की रक्षा करना ।

(ट) सूतिका • (बच्चा उत्पन्न कराने) और शिशुओं का हित साधन करना ।

(ठ) खाद इकट्ठा करने के लिये स्थान नियत करना ।

(ड) मार्गों पर तथा अन्य स्थानों पर पेड़ लगवाना ।

(ण) मवेशियों की नरल सुधारना, उनकी चिकित्सा और उनके रोगों की रोक थाम करना ।

(त) गाँव की रक्षा करने तथा गाँव पंचायत की सहायता करने के लिए गाँव स्वयंसेवक दल का संगठन करना ।

(थ) गाँव में मनोरंजन के साधन उपलब्ध करना तथा पुस्तकालय इत्यादि स्थापित करना ।

गाँव पंचायत के कर

इन कार्यों को करने के लिए गाँव सभा निम्नलिखित कर वसूल कर सकेगी :—

(१) एक आना की रुपया मालगुजारी पर टैक्स किसानों से वसूल करेगी ।

(२) अधिक से अधिक ६ पाई की रुपया मालगुजारी पर जमींदार से वसूल करेगी ।

(३) एक टैक्स खुदकाश्त या सीर पर भी लगाया जावेगा ।

(४) एक टैक्स व्यापार, कारबार और पेशों पर जो ऐसी दर से अधिक न होगा जो नियत किया जावे, लगाया जावेगा ।

(५) एक टैक्स उन इमारतों पर जो ऐसे व्यक्तियों के स्वामित्व में हों जो ऊपर दिये हुए कोई टैक्स न देते हों, लगाया जावेगा । उसकी दर सरकार नियत करेगी ।

करों द्वारा जो धनराशि इकट्ठी होगी वह “गाँव-कोष” में जमा की जायेगी और गाँव सभा द्वारा बजट की स्वीकृति हो जाने पर गाँव पंचायत द्वारा जो लिखे कामों पर खर्च की जावेगी ।

‘गाँव पंचायत’ पटवारी, पतरौल, चौकीदार तथा अन्य सरकारी कर्मचारियों के कार्य से यदि असन्तुष्ट हो तो उनकी शिकायत उन विभागों के उच्च अधिकारियों में कर सकेगी और वह अधिकारी जाँच करने के उपरान्त अपना निर्णय गाँव पंचायत के पास भेज देगा ।

पंचायत अदालत ✓

प्रान्तीय सरकार जिले को बहुत से क्षेत्रों में बाँटेगी और प्रत्येक क्षेत्र में एक “पंचायत अदालत” स्थापित की जावेगी ।

किसी क्षेत्र की प्रत्येक ‘गाँव सभा’ उक्त क्षेत्र की पंचायत अदालत में पंचों की हैसियत से काम करने के लिए अपने सदस्यों में से पाँच सदस्य चुनेगी । किसी क्षेत्र की सारी ‘गाँव सभाओं’ के चुने हुए पंचों का एक ‘पंच मंडल’ होगा ।

इस प्रकार सब चुने हुए पंच पंचायती अदालत के ‘सरपंच’ का काम करने के लिए अपने में से एक व्यक्ति को चुनेंगे ।

सरपंच प्रत्येक मुकदमे के लिए पंच मंडल में से पाँच पंचों का एक बेंच नियुक्त करेगा । पंचायत अदालत में कोई वकील पैरवी न कर सकेगा ।

पंचायत अदालतों का माल, दीवानी तथा फौजदारी सभी के मुकदमे लेने का अधिकार होगा परन्तु कानून के अनुसार कुछ धारारें दे दी गई हैं केवल उन्हीं के अंतर्गत अदालत मुकदमों का फैसला कर सकेगी ।

इस कानून से गाँवों की दशा में विशेष सुधार होगा । गाँव वालों को स्थानीय शासन के अधिकार प्राप्त होंगे और अदालतों में जाकर जो उनका भयंकर शोषण होता है, उनके समय और धन की जो बर्बादी होती है वह दूर होगी । काँग्रेस सरकार ने गाँव पंचायत राज्य ऐक्ट बनाकर ग्रामीण जनता की बहुत भलाई की है ।

अभ्यास के प्रश्न

१—जमींदार और किसानों का पहले कैसा सम्बन्ध था और आज कैसा सम्बन्ध है ?

२—गाँवों के रहने वालों में भाईचारे का जो सम्बन्ध आज तक चला जा रहा है उससे क्या हानि-लाभ है ?

३—गाँव में महाजन का क्या उपयोग है ?

- पंचायत किसे कहते हैं और वह क्या कार्य करती है ?
 —संयुक्त प्रान्त में पंचायतों को क्या क्या अधिकार दिये गये हैं ?
 ६—प्राचीन काल में पंचायतों का गाँव के संगठन में कैसा स्थान था ?
 ७—सरकार द्वारा रबीकृत पंचायतों में छोटे छोटे सुकदमों का फैसला किस प्रकार होता है ?
 ८—क्या पंचायतों के अधिकारों को बढ़ाने की जरूरत है ? यदि है तो कौन से अधिकार उन्हें दिये जाने चाहिए ?
 ९—पंचायतों के कर्त्तव्य क्या है ? भारतीय ग्रामीण जीवन में उनका क्या महत्व है ?

उन्तीसवाँ अध्याय

सहकारी साख्य समितियाँ

(Cooperative Credit Societies)

सहकारिता के मूल-सिद्धान्त (Principles of Cooperation)

आधुनिक काल में समाज ने आर्थिक जीवन में प्रतिस्पर्धा या होड़ (Competition) के सिद्धान्त को अपना लिया है। जो निर्बल हैं उनके लिये समाज में कोई स्थान नहीं है। उदाहरण के लिए जुलाहा कपड़े की मिल की प्रतिस्पर्धा में अग्रफल होता है, किसान को महाजन से ७५ प्रतिशत सूद पर ऋण मिलता है जबकि कोई सेठ अथवा जमींदार किसी बैंक से ७ या ८ प्रतिशत पर ऋण पा सकता है। निर्धन मजदूर या किसान जब किसी दूकान पर सौदा लेने जाता है तो क्योंकि वह पेमे दो पैसे का सौदा लेता है इस कारण दूकानदार उसे खराब चीज अधिक दामों पर देता है। धनी व्यक्ति अच्छी वस्तु सस्ते दामों पर पा सकते हैं क्योंकि वे अधिक खरीदते हैं। इसका अर्थ यह है कि निर्धन व्यक्ति फिर चाहे वह सम्पत्ति उत्पादन (Production) करने वाला हो अथवा उपभोग (Consumption) करने वाला हो वह आधुनिक प्रतिस्पर्धा के कारण लूटा जाता

है। सहकारिता इन निर्धनों को भाईचारे के आधार पर संगठित करके उन्हें वेही सुविधायें प्रदान करना चाहती है जो कि धनी और ऐश्वर्यशाली व्यक्तियों को प्राप्त हैं। उदाहरण के लिए सहकारिता आन्दोलन बहुत से जुलाहों को भाईचारे के आधार पर संगठित करके उन्हें मिलों की प्रतिस्पर्धा में सफल बनाने का प्रयत्न करता है। निर्धन किसानों की साख समिति स्थापित करके उन्हें उचित सूद पर ऋण दिलाने का प्रबन्ध करता है। सारांश यह कि आज के इस होड़ (प्रतिस्पर्धा) के जमाने में जो सुविधायें केवल धनी और समाज के सबल सदस्यों को ही प्राप्त हैं; सहकारिता आन्दोलन उन्हें सहकारी संगठन के द्वारा निर्धन और समाज के निर्बल सदस्यों को भी पहुँचाता है।

यहाँ हम उदाहरण देकर यह समझाने की चेष्टा करेंगे कि सहकारिता किसे कहते हैं। सहकारिता का अर्थ है मिलकर एक साथ कोई काम करना। मानलो कि एक गाँव से पच्चीस किसान जिनके पास भैंस या गाय हैं अपना अपना दूध शहर के हलवाईयों के पास प्रातः तथा सायंकाल ले जाते हैं। इसका अर्थ यह हुआ पच्चासों किसान प्रतिदिन तीन या चार घंटे समय अपना थोड़ा-सा दूध हलवाई के पास ले जाने में व्यय करते हैं। यदि यह नियम बनालें कि उनमें से केवल एक किसान प्रतिदिन बारी से सब का दूध शहर ले जावेगा तो हर एक दिन शेष चौबीस किसानों का तीन या चार घंटा समय नष्ट होने से बच जावेगा और सबों का दूध भी यथा समय शहर पहुँच जाया करेगा। यही नहीं यदि वे पच्चीस किसान एक साथ मिल कर अपना दूध बेचे तो हलवाईयों से उन्हें दूध के अच्छे दाम मिल सकते हैं। हम इस प्रकार के संगठन को सहकारी समिति कहेंगे। जुलाई के महीने में यदि तुम अपने दर्जे के लड़कों को इस बात के लिए राजी करलो कि वे अलग-अलग अपनी पाठ्य पुस्तकें शहर के बुकसेलरो से न खरीद कर एक साथ मिलकर प्रकाशकों से खरीदें तो तुम लोगों को पुस्तकें कम कीमत में मिल जावेंगी और तुम्हारा यह संगठन विद्यार्थियों की सहकारी समिति कहलावेगा। बस अब तो तुम समझ ही गए होंगे कि किसी काम को एक साथ मिल कर करने को सहकारिता कहते हैं।

सहकारी साख समितियाँ (Cooperative Credit Societies)

सहकारी साख आन्दोलन की जन्मभूमि जर्मनी में दो प्रकार की साख

समितियाँ कार्य कर रही हैं। १- रैफिसन ग्राम्य सहकारी साख समितियाँ जिनके जन्मदाता श्री रैफिसन महोदय थे। २- शुल्ज समितियाँ जो विशेषतः नगरों में मध्यवर्ग तथा छोटे-छोटे कारीगर और व्यापारियों के लिए स्थापित की गईं। भारतवर्ष में सहकारी आन्दोलन जर्मनी से नकल किया गया। रूस का रूस यहाँ भी दो प्रकार की सहकारी समितियाँ स्थापित की गईं। प्रथम रैफिसन प्रणाली की कृषि सहकारी साख समितियाँ (Agricultural Co-operative Credit Societies) जो गाँवों में स्थापित की गईं, दूसरी शुल्ज प्रणाली के प्यूप्लिस नैक्क जा कि नगरों में स्थापित किए गए। गैर साख कृषि सहकारी समितियों के विषय में अगले परिच्छेद में विस्तारपूर्वक लिखा जायगा। कृषि साख समितियों और प्यूप्लिस नैक्को (नगर साख समितियों) में मुख्य अन्तर निम्नलिखित हैं।

१- कृषि साख समितियों में हिस्से या तो नहीं होते अथवा बहुत कम मूल्य के होते हैं। नगर साख समितियों में हिस्से अधिक मूल्य के होते हैं।

२- कृषि साख समितियों का दायित्व अपरिमित (Unlimited liability) होता है परन्तु नगर साख समितियों का दायित्व परिमित (Limited liability) होता है।

३- कृषि साख समितियों में लाभ नहीं बाँटा जाता (किसी विशेष दशा में ही बाँटा जाता है) नगर साख समितियों में लाभ बाँटा जाता है।

४- कृषि साख समितियों में किसी भी सदस्य को समिति का कार्य

अपरिमित दायित्व (Unlimited liability) :—अपरिमित दायित्व वाली समितियों के सदस्य व्यक्तिगतरूप से समिति के सारे ऋण को चुकाने के लिए जिम्मेदार होते हैं। उदाहरण के लिए यदि एक साख समिति टूटती है और उस पर बाहर वालों का कर्जा चढ़ जाता है तो समिति के लेनदार (Creditor) किसी एक सदस्य से सारा कर्जा वसूल कर सकते हैं। परिमित दायित्व वाली समितियों के सदस्यों की ऋण चुकाने की जिम्मेदारी उनके हिस्से के मूल्य से परिमित होती है। यदि सदस्य ने अपने हिस्से का मूल्य चुका दिया है तो समिति का लेनदार सदस्य से कुछ वसूल नहीं कर सकता।

संचालन के लिए कोई नेतृत्व नहीं मिलता पन्तु नगर-साख समितियाँ प्रबन्ध करने वाले सदस्यों का चयन दिया जा सकता है ।

द्वैतस्य और गुलज प्रणालियों को भारतवर्ष की परिस्थिति के अनुसार कुछ संशोधन करके अपना लिया गया है । दोनों प्रकार की समितियाँ अपने सदस्यों का उचित सूद पर ऋण देने का प्रबन्ध करती हैं ।

प्राथमिक कृषि सहकारी साख समितियाँ

(Primary Agricultural Cooperative Credit Societies)

सन् १९०४ में जब सहकारिता आन्दोलन का यहाँ आरम्भ हुआ तो उसका उद्देश्य केवल गाँव वालों की साख की समस्या को हल कर देना था । अन्य धंधों की माँति खेती वारी में भी पूँजी उधार लेने की आवश्यकता है । कृषक महान्न से पूँजी उधार लेकर उसका दास बन जाता है अतएव पूँजी की समस्या को हल करने के लिए ही कृषि सहकारी साख समितियाँ स्थापित की गईं । आरम्भ में साख की समस्या को हल करने की ओर विशेष ध्यान दान के कारण सहकारिता विभाग ने कृषि-सहकारी-साख समितियों का अधिक संख्या में स्थापित किया । इसी का फल है कि कृषि सहकारी साख समितियाँ अन्य सब प्रकार की समितियों से संख्या में अधिक हैं ।

कृषि साख समिति के उद्देश्य

कृषि साख समिति का मुख्य उद्देश्य अपने सदस्यों को खेती वारी तथा अन्य उपयोगी कार्यों के लिए ऋण देना है । सदस्यों को ऋण देने के लिए समिति गाँव वालों से डिपॉजिट (जमा) लेती है अथवा बैंक-सहकारी-वैकों से ऋण लेती है । इसके अतिरिक्त कृषि-साख समिति अपने सदस्यों के लिए बीज, खाद, हल तथा अन्य खेत के औजारों को खरीदती है, तथा वैज्ञानिक खेती किस प्रकार हो सकती है इसका प्रचार करती है ।

समिति की सदस्यता

समिति के कम से कम दस सदस्य होते हैं । यदि सदस्यों की संख्या दस

से कम हो जाँ, तो रजिस्ट्रार* उस समिति को तोड़ सकता है। समिति का सदस्य बही बनाया जाता है जिसका चरित्र अच्छा हो, जो ईमानदार हो, शराब न पीता हो और जुआ न खेलता हो। समिति के सदस्य बनाते समय उसके चालचलन की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। कृषि साख समिति के सदस्य वे ही हो सकते हैं जो कि एक ही गाँव अथवा पास के गाँव में रहते हो अथवा एक ही जाति या पेशे के हों।

अपरिमित उत्तरदायित्व (Unlimited Liability)

कृषि साख समिति का उत्तरदायित्व अपरिमित होता है। अपरिमित उत्तरदायित्व का अर्थ यह है कि प्रत्येक सदस्य केवल अपना कर्ज़ ही चुकाने का जिम्मेदार नहीं होता परन्तु आवश्यकता पड़ने पर उसे समिति का सारा कर्ज़ चुकाना होता है। उदाहरण के लिये मान लिया जावे कि अनन्तपूर नामक गाँव की साख समिति दिवालिया हो जाती है, समिति के अधिकतर सदस्य अपना कर्ज़ अदा नहीं कर सकते। केवल दो या तीन सदस्य ही ऐसे हैं जिनके पास सम्पत्ति है। ऐसी दशा में समिति के लेनदार (Creditors) उनमें से किसी एक से अथवा सबों से समिति का पूरा कर्ज़ वसूल कर सकते हैं। उन धनी सदस्यों को अपनी सारी सम्पत्ति बेच कर भी समिति का कर्ज़ चुकाना होता है।

इसी कारण यह नितान्त आवश्यक है कि सदस्य एक दूसरे के चरित्र तथा माली हालत से भली भाँति परिचित हों। यदि सदस्य एक दूसरे को भली भाँति न जानते हो तो वे अपरिमित दायित्व स्वीकार न करेंगे। अपरिमित दायित्व के अनुसार प्रत्येक सदस्य समिति के ऋण को नामांकित तथा व्यक्तिगत रूप से चुकाने के लिये बाध्य है।

जब कोई नवीन सदस्य समिति में आना चाहता है तो वह सर्व सम्मति से ही लिया जा सकता है। एक गाँव में अधिकतर एक ही समिति होती है किन्तु यदि गाँव बड़ा हो तो एक से अधिक समितियाँ भी हो सकती हैं।

*रजिस्ट्रार सहकारिता विभाग का प्रधान कर्मचारी है जो समिति की रजिस्ट्री, आय-व्यय निरीक्षण, देख भाल करता है और समितियों को तोड़ भी सकता है।

समिति का प्रबन्ध

समिति के कार्य संचालन का पूरा अधिकार जनरल मीटिंग (साधारण सभा जिसमें समिति का प्रत्येक सदस्य होता है) को होता है। प्रत्येक सदस्य केवल एक वोट ही दे सकता है कि उसके पास समिति के कितने भी हिस्से क्यों न हों। जनरल मीटिंग अपने मे से एक पञ्चायत चुन देती है जो कि समिति का सारा कार्य करती है। पञ्चायत के पाँच या सात सदस्य होते हैं। जनरल मीटिंग सब महत्वपूर्ण प्रश्नों पर अपना स्पष्ट मत दे देती है, और साधारण नीति निर्धारित कर देती है। पञ्चायत वस्तुतः सारा कार्य करती है। पञ्चायत का चुनाव करने के अतिरिक्त जनरल मीटिंग डिपॉजिट पर कितना सूद दिया जावे, सदस्यों के ऋण पर कितना सूद लिया जावे, अधिक से अधिक प्रत्येक सदस्य को उसकी हैसियत के अनुसार कितना ऋण दिया जा सकता है, तथा समिति सैन्ट्रल बैंक से अधिक कितना ऋण ले इन बातों का निश्चय करती है।

समिति की पञ्चायत के कार्य

१—पञ्चायत सदस्यों को हिस्से देकर उन्हें समिति का सदस्य बनाती है।

२—गाँव से डिपॉजिट आकर्षित करने का प्रयत्न करती है तथा सैन्ट्रल अथवा जिला बैंक से ऋण लेने का प्रबन्ध करती है। पञ्चायत को समिति के सदस्यों से तथा अन्य ग्रामवासियों से अधिक से अधिक मात्रा में रुपया जमा करने को कहना चाहिये।

३—पञ्चायत यह भी निश्चय करती है कि किन सदस्यों को कितने समय के लिए कर्ज दिया जावे। पञ्चायत उस समय के अन्तर्में ऋण वसूल करती है।

४—पञ्चायत समिति के आय-व्यय का हिसाब रखती है।

५—पञ्चायत रजिस्ट्रार से समिति सम्बन्धी कार्यों में लिखा पढ़ी करती है।

६—सदस्यों के लिये सम्मिलित रूप में आवश्यक वस्तुएँ खरीदती हैं तथा उनकी पैदावार को बेचती हैं।

७—पञ्चायत सरपञ्च तथा मन्त्री का निर्वाचन करती है। सरपञ्च समिति के कार्य की देखभाल रखता है।

समिति की पूँजी (Capital)

कृषि साख समितियों की कार्यशील पूँजी (Working Capital) निम्नलिखित प्रकार से प्राप्त होती है ।

१—समिति प्रवेश फीस ।

२—हिस्सों का मूल्य जो सदस्य देते हैं ।

३—डिपॉज़िट जो सदस्यो तथा गैर सदस्यो में मिलती है ।

४—सैन्ट्रल बैंक या ज़िला बैंकों से लिया हुआ ऋण ।

५—रक्षित कोष (reserve fund)

प्रवेश फीस नाम गान को एक रुपया ली जाती है ज कि शुरू के खर्च के काम आती है ।

कुछ प्रान्तों में सदस्यों का हिस्से खरीदने पड़ते हैं और कुछ प्रान्तों में हिस्से नहीं होते । पंजाब, संयुक्तप्रान्त तथा मद्रास में सगितियाँ हिस्से वाली होती हैं । अन्य प्रान्तों में समितियाँ हिस्से तथा गैर हिस्से वाली दोनों ही प्रकार की होती हैं । संयुक्तप्रान्त में एक हिस्सा २० रुपए का होता है । कम से कम एक हिस्सा प्रत्येक सदस्य को लेना होता है । हिस्से का मूल्य छमाही एक रूपए की किरत में दस वर्षों में चुका दिया जाता है ।

साख समिति का कोई सदस्य एक निश्चित रकम से अधिक के हिस्से नहीं खरीद सकता । प्रत्येक सदस्य का केवल एक वोट देने का ही अधिकार होता है । सगितियों को अधिकतर पूँजी के एक सैन्ट्रल बैंक पर ही निर्भर रहना पड़ता है क्योंकि अभी तक ये डिपॉज़िट अधिक आकर्षित नहीं कर सकी है । जितनी ही अधिक काँई सगिति डिपॉज़िट आकर्षित करे उतनी ही उसकी गतिविधता समझी जानी चाहिये, क्योंकि डिपॉज़िट तभी अधिक जमा होगी जब कि जनता को समिति का भराया हागा और उनकी आर्थिक स्थिति में विश्वास होगा । जब तक की साख समितियाँ अपनी आवश्यकता के अनुसार डिपॉज़िट आकर्षित कर के पूँजी जमा नहीं कर सकती तब तक उनको निर्बल ही समझना चाहिए ।

कृषि सहकारी साख समितियों में साधारणतः लाभ सदस्यों में बाँटा नहीं जाता । हाँ जब रक्षित कोष (Reserve fund) एक निश्चित रकम से अधिक हो जावे तो पान्तीय सरकार से अनुमति लेकर तीन चौथाई लाभ

सदस्यों में बाँटा जा सकता है। फिर भी २. प्रतिशत रक्षित कोष में जमा करना ही पड़ता है।

कृषि सहकारी साख्त समितियों का प्रबन्ध व्यय लगभग कुछ न होने के कारण तथा लाभ न बँटने के कारण रक्षित कोष यथेष्ट जमा हो जाता है। प्रत्येक साख्त समिति के लिये रक्षित कोष अत्यन्त आवश्यक है। जब तक कि समिति के पास यथेष्ट कोष न हो जावे तब तक वह सफल नहीं बन सकती। रक्षित कोष किसी अवस्था में भी सदस्यों को बाँटा नहीं जा सकता। उसका उपयोग समिति के कार्य में दानि हो जाने पर उसे पूरा करने में होता है। यदि समिति भङ्ग हो जावे अथवा तोड़ दी जावे तो रक्षित कोष किसी अन्य सहकारी समिति को दे दिया जावेगा या रजिस्ट्रार की अनुमति से किसी सार्वजनिक हित के कार्य में व्यय कर दिया जावेगा।

समिति के लाभ को न बँटने से समिति की आर्थिक व्यवस्था शीघ्र उत्तम हो सकती है। अधिकतर गरीब व्यक्ति ही समिति बनाते हैं। अतः आरम्भ में समिति की अपनी रकम बहुत कम होती है। उसका कार्य दूसरे साधनों से मिलने वाले धन से चलता है। समिति दूसरों पर निर्भर रहती है। यह कमजोरी शीघ्र से शीघ्र दूर होनी चाहिये। द्वितीय यदि लाभ बँटने लगेगा तो आरंभ से ही सदस्य लाभ के फेर में पड़ जायेंगे। इसी प्रकार रक्षित कोष जारी करने का अभिप्राय उससे सहकारी-आन्दोलन की वृद्धि करना था। इसी कारण रक्षित कोष अविभाजित रहता है।

समिति के कार्यकर्त्ताओं का अवैतनिक होना

समिति के पञ्चों को कोई वेतन नहीं दिया जाता। यदि सदस्यों में कोई ऐसा व्यक्ति नहीं होता जो कि समिति का हिसाब इत्यादि रख सके, तो गाँव के किसी शिक्षित व्यक्ति को थोड़ा सा वेतन देकर वैतनिक मन्त्री रख लिया जाता है, किन्तु वैतनिक मन्त्री को समिति की मीटिंग में कोई सम्मति देने का अधिकार नहीं होता। सदस्य मन्त्री को कोई वेतन नहीं मिलता। गाँव के पटवारी को कभी मन्त्री न बनाना चाहिये क्योंकि उसका गाँव में बहुत प्रभाव होता है और वह पञ्चों पर दबाव डाल सकता है।

समिति को साख निर्धारित करना

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि जनरल मीटिंग समिति को अधिकतम-साख निर्धारित करती है, उससे अधिक पंचायत ऋण नहीं ले सकती। समिति की साख निर्धारित करने के लिये सब सदस्यों की हैसियत का लेखा प्रतिवर्ष तैयार किया जाता है, सब सदस्यों की हैसियत का एक चौथाई से आधी तक समिति की साख मानी जाती है। किसी भी सदस्य की सम्पत्ति का पचास प्रतिशत से अधिक उसको उधार नहीं दिया जाता।

अभिति द्वारा ऋण देने का कार्य

कृषि साख सहकारी समिति केवल सदस्यों को ही ऋण देती है। जो भी सदस्य ऋण लेना चाहता है वह एक प्रार्थना-पत्र पंचायत को देता है। दरखास्त में उसे यह भी बतलाना पड़ता है कि वह किस कार्य के लिए ऋण लेना चाहता है। ऋण लेने वाले सदस्य को दो व्यक्तियों की जमानत देनी होती है। ऋण देते समय कज लेने का उद्देश्य तथा सदस्य को चुकाने की शक्ति का अनुमान कर के ही समिति कर्जा देना निश्चित करती है।

सहकारिता आन्दोलन का यह सिद्धान्त है कि ऋण अनुत्पादक कार्यों के लिए न दिया जावे, किन्तु भारतवर्ष में कृषि सहकारी साख समितियाँ विवाह, श्राद्ध, तथा अन्य सामाजिक कार्यों के लिये भी रुपया उधार दे देती हैं। पंचायत का यह मुख्य कर्तव्य है कि वह इस बात की जाँच करे कि सदस्य ने जिस कार्य के लिये ऋण लिया है उसी पर व्यय कर रहा है अथवा नहीं। यदि सदस्य किसी दूसरे काम में रुपया लगावे तो पंचायत को रुपया वापस माँग लेना चाहिये। यदि पंचायत ऐसी रोक न लगावे तो गरीब ग्रामीण कोई भी कारण बता कर ऋण लेंगे और उसे अपनी वर्तमान अनुत्पादक आवश्यकता पर व्यय कर देंगे।

पंचायत ऋण देते समय ही सदस्य की स्थिति को दृष्टि में रखते हुए किश्त बाँध देती है क्योंकि सदस्यों को किश्तों द्वारा ऋण चुकाने में सुविधा होती है। पंचायत को किश्तें समय पर वसूल करनी चाहिए, किन्तु फसल नष्ट हो जाने पर अथवा अन्य अनिवार्य कारण उपस्थित होने पर किश्त की मियाद बढ़ा दी जाती है।

समितियाँ अधिकतर नीचे लिखे हुए कार्यों के लिये ऋण देती हैं।

१—खेती बाँी के लिये, मालगुजारी तथा लगान देने के लिये।

२—भूमि का सुधार करने के लिये।

३—पुराने ऋण को चुकाने के लिये।

४—गृहस्था के कार्यों के लिये।

५—व्यापार के लिये।

६—भूमि खरीदने के लिये।

अब क्रमशः कृषि साख सहकारी समितियाँ पुराने ऋण को चुकाने के लिए तथा भूमि खरीदने के लिये कम ऋण देने लगी हैं क्योंकि समितियों ने अब यह भाँति बना ली है कि वे अधिक समय के लिए कर्ज न देंगी।

समितियों का आय-व्यय-निरीक्षण

साख समितियों का आय-व्यय-निरीक्षण रजिस्ट्रार की आधीनता में होता है। रजिस्ट्रार सहकारी के विभाग के आय-व्यय-निरीक्षकों (आडिटर्स) से समितियों के आय-व्यय की जाँच कराता है। किसी किसी प्रान्त में आय-व्यय निरीक्षण का कार्य प्रान्तीय यूनियन की आधीनता में भी होता है। उस दशा में भी प्रान्तीय यूनियन के आय-व्यय-निरीक्षकों (आडिटर्स) को जब तक रजिस्ट्रार लायसेंस न दे दे तब तक वे आय-व्यय की जाँच नहीं कर सकते। आडिटर्स हिसाब की जाँच तो करता ही है परन्तु इस बात की भी जाँच करता है कि समिति नियमानुसार कार्य करती है या नहीं, परन्तु भारत वष में आय-व्यय-निरीक्षण का कार्य मली भाँति नहीं होता।

आय-व्यय-निरीक्षण के अतिरिक्त साख समितियों की देखभाल तथा उनका नियन्त्रण रजिस्ट्रार तथा उनके सहायक कर्मचारी और प्रान्तीय सहकारी यूनियन दोनों ही करते हैं।

कृषि सहकारी साख समितियों को मिली हुई सुविधायें

यदि समिति ने किसी सदस्य को बीज या खाद उधार दिया है अथवा उसको मोल लेने के लिए रुपया उधार दिया है तो समिति को उसके द्वारा उत्पन्न की हुई फसल से अपना रुपया वसूल करने का प्रथम अधिकार होगा। सदस्य का कोई दूसरा लेनदार उस फसल को कुर्क नहीं करवा सकता।

इसी प्रकार यदि समिति ने सदस्यों को बैल, खेती तथा अन्य धन्वों में काम आने वाले यन्त्र, तथा धन्वों के लिए कच्चा माल उधार दिया है तो उन वस्तुओं पर, तथा उस कच्चे माल के तैयार किए हुए पक्के माल पर, समिति का प्रथम अधिकार होगा।

सहकारी समिति के लाभ पर इनकमटैक्स (आयकर) नहीं लिया जाता और न सदस्यों के लाभ पर टैक्स लिया जाता है। सहकारी समितियों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर मनीआर्डर द्वारा रकमा भेजने पर पोस्ट आफिन एक चौथाई रेट पर उनका रकमा भेज देता है।

समिति के सदस्य का हिस्सा उसका कोई लेनदार (Creditor) कुर्क नहीं करवा सकता। किसी भी सदस्य के जमा किये हुये रुपये तथा लाभ के हिस्से को समिति ऋण के बदले में ले सकती है, कोई दूसरा लेनदार उसे कुर्क नहीं करवा सकता।

रजिस्ट्रार को यदि विश्वास हो जावे कि समिति की दशा अच्छी नहीं है तो वह उसे भंग कर सकता है।

क्या कृषि साख समितियाँ सफल हो रही हैं ?

साख समितियाँ सफल हो रही हैं अथवा नहीं इसमें कुछ मतभेद हो सकता है, किन्तु हममें तनिक भी सन्देह नहीं कि वे अभी तक बहुत निर्बल हैं और वे वास्तव में सहकारी नहीं हैं। एक बार बैंकिंग के एक प्रसिद्ध जानकार ने कहा था “इन समितियों में सहकारिता के सिद्धान्तों की नितान्त अवहेलना की जाती है। ऋण ठीक समय पर कभी नहीं लुकाये जाते, आय व्यय-निरीक्षण ठीक नहीं होता तथा इन समितियों की देखभाल भी ठीक तरह से नहीं होती।” इसमें कोई सन्देह नहीं कि ऊपर लिखे हुये दोष इन समितियों में अवश्य हैं। कुछ विद्वानों का तो यहाँ तक कहना है कि अधिकतर सहकारी समितियों की आर्थिक दशा अच्छी नहीं है, किन्तु सहकारिता आन्दोलन में लगे हुये कार्यकर्त्ता इस बात को मानने के लिये तैयार नहीं हैं। शाही कृषि कमिशन की सम्मति है कि आन्दोलन की आर्थिक स्थिति अच्छी है, हाँ समितियों का कार्य दोषपूर्ण है।

सहकारी कृषि साख समितियों की सफलता के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि सदस्य सहकारिता के सिद्धांतों को समझें। भारतवर्ष में गांव के सदस्य यह समझते हैं कि सहकारी साख समितियां सरकार द्वारा खोले हुये बैंक हैं जा उन लोगों को ऋण देते हैं। वे कभी स्वयं भी नहीं सोचते कि यह हमारी समिति है और हम सम्मिलित साख के द्वारा उचित सूद पर पूँजी पा सकते हैं। जब तक सदस्यों में स्वावलम्बन का यह भाव जागृत नहीं होता तब तक सहकारिता आन्दोलन सफल नहीं हो सकता।

सहकारी साख समितियों को जो पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं हो सकी उसके तीन मुख्य कारण हैं। गांव वालों का अशिक्षित होना, उनका एही से थोटी तक महाजन का ऋणी तथा अत्यन्त निर्धन होना और योग्य कार्यकर्ताओं का अभाव। जब तक सेवा भाव के सच्चे और ईमानदार कार्यकर्ता इस आन्दोलन के लिये नहीं मिलते तब तक यह पूर्णतः सफल नहीं हो सकता।

कृषि साख समितियाँ बहुत सफल नहीं हुई हैं इससे यह न समझ लेना चाहिये कि उनसे ग्रामीण जनता को कोई लाभ ही नहीं हुआ। कृषि साख समितियों के द्वारा गाँवों को बहुत कुछ आर्थिक लाभ हो रहा है। समितियों ने बहुत सी कार्यशील पूँजी (Working Capital) इकट्ठी करली है जो किसानों को उचित सूद पर दी जाती है। इन समितियों की पूँजी चालीस करोड़ रुपये के लगभग है। जहाँ साख समितियाँ खुल गई हैं उन क्षेत्रों में प्रतिद्वन्द्विता के कारण महाजन ने भी सूद की दर घटा दी है। साधारण किसानों में सहकारिता का ज्ञान बढ़ रहा है। सदस्यों में कृपायतन शरी उत्पन्न हो रही है, और किसान स्वावलम्बी बने रहे हैं। अशिक्षित किसान जो कि साख तथा व्यापार के विषय में नितान्त अनभिज्ञ थे उनमें व्यापारिक ज्ञान बढ़ रहा है। बहुत से उदाहरण ऐसे हैं जहाँ कि कुछ पञ्जों ने इसलिये पढ़ना लिखना सीखा कि वे समिति का कार्य भली भाँति कर सकें, कुछ शराब पीने वालों ने केवल इसलिये शराब छोड़ दी कि जिसमें वे समिति में लिये जा सकें। सहकारी साख समिति के कारण गाँव में आत्मभाव फैलता है। यदि प्रत्येक गाँव में एक सहकारी साख समिति की स्थापना हो जावे और सफलतापूर्वक कार्य करने लगे तो ग्रामीण जनता का उद्धार हो सकता है।

अविभाजित भातवर्ष में कृषि साख सहकारी समितियों की संख्या ६० हजार और उनके सदस्यों की संख्या ३० लाख के लगभग है। इन समितियों की कार्यशील पूँजी जिसमें हस्ता पूँजी, रक्षित कोष, डिपॉजिट और सैन्ट्रल बैंको से लिया हुआ ऋण सम्मिलित है) ३६ करोड़ रुपये के लगभग हैं। इन अंशों को देखकर साल सहकारी समितियों के विषय में निराश होने का कोई कारण नहीं है।

बहुध्येयी सहकारी समितियाँ

(Multipurpose Co-operative Societies)

अब तो यह भनी सति समझ लिया गया है कि किसान बनिये या जमींदार के चंगुल से तब तक नहीं छूट सकता जब तक उनकी भाँत सहकारी समिति भी एक से अधिक कार्य करे। अर्थात् वह उधार देने के अतिरिक्त बीज या और अन्य आवश्यक वस्तुओं की पूर्त करे। इसी प्रकार कृषि पदार्थों की बिक्री भी इन्हीं समितियों के द्वारा हो। प्रांतीय सरकार ऐसी बहुध्येयी समितियाँ गाँवों में खुलवा रही है।

पिछले वर्ष से प्रान्त य सरकार उन्नयन योजना (Development Scheme) का प्रयाग कर रही है। उन्नयन कार्य के लिये कुछ गाँव का एक ब्लाक बना दिया जाता है। उन सब के सुधार की एक योजना चर्चती है। उसका कार्य एक सहकारी बहुध्येयी समिति के हाथ में पड़ा है। ये बहुध्येयी समितियाँ सर्व प्रथम बाँज और खाद के कार्य को उठा रही हैं। यह आशा की जाती है कि ये समितियाँ वृत्त लगवाएँगी, दूध घी की वृद्धि करेंगी तथा प्रौढ़ शिक्षा, शारीरिक और सांस्कृतिक वृद्ध करेंगी।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१—सहकारिता का क्या अर्थ है ?

२—उदाहरण देकर बतलाओ कि सहकारिता किसे कहते हैं ? मान लो कि एक गाँव के तीस किसान हर रोज अपना दूध बेचने पास के शहर में आते हैं। यदि वे आपस में समझौता कर लें कि पारी पारी से एक किसान सबों का दूध गाँव से शहर लाकर बेच आया करेगा तो क्या इसको सहकारिता कहेंगे ?

३—कृषि साख समिति और प्यूप्लिस बैंक (नगर साख समिति) का मुख्य कार्य क्या है और उसमें क्या अन्तर है ?

४—अप रमित और परिमित दायित्व की व्याख्या कीजिये ?

५—कृषि साख समिति का सदस्य कौन हो सकता है ? क्या भिन्न भिन्न गाँवों में रहने वाले लोग एक कृषि साख समिति के सदस्य हो सकते हैं ?

६—साख समिति का प्रबन्ध किस प्रकार होता है ? जनरल मीटिंग और पंचायत के कार्य बालाये ।

७—कृषि साख समिति का लाभ सदस्यों में नहीं बाँटने से और समिति के टूट जाने पर रक्षित कोष को भी सदस्यों में न बाँटने से क्या लाभ है ?

८—साख समिति में यह नियम क्यों लगाया गया है कि सदस्य जिस काम के लिये ऋण ले उसी पर खर्च करे ?

९—कानून के अनुसार कृषि साख समितियों को कौन सी सुविधायें प्राप्त हैं ?

१०—क्या कृषि साख समितियाँ सफल बनी जा सकती हैं ?

११—सहकारी साख समिति क्या है ? यदि आपसे एक ऐसी समिति स्थापित करने को कहा जाय तो आप कैसे आरम्भ करियेगा ? (१४३) ।

१२—सहकारीता के मुख्य सिद्धान्त क्या हैं ? इस देश के ग्रामीणों को किस प्रकार लाभ पहुँचा है ? [१४५] ।

१३—प्राथमरी कृषि साख समिति की व्यवस्था तथा कार्यप्रणाली का वर्णन कीजिये । इन समितियों को किस साधनों से पूँजी मिलती है ? [१६४५] ।

१४—किसानों को सहकारी समितियाँ से जो लाभ होते हैं उनका सच्चे में विवेचना कीजिये । [१६४६] ।

१५—प्राथमरी कृषि साख समिति की व्यवस्था तथा कार्यप्रणाली का वर्णन कीजिये । किसानों को इनसे जो लाभ होते हैं उनका विवेचना कीजिये । [१६४७] ।

१६—साख समिति और बहु-येयी साख समिति में से आप किसे पसन्द करते हैं ? और क्यों ? आपके प्रान्त की सरकार इस ओर क्या कर रही है ?

तीसवाँ अध्याय

गैर साख कृषि सहकारी समितियाँ

(Agricultural Non-Credit Societies)

भारतवर्ष में जब सहकारिता आन्दोलन का आरम्भ किया गया था उस समय साख की समस्या अत्यन्त महत्वपूर्ण समझी गई और वस्तु में बात भी ऐसी ही थी। इसी कारण १९०४ के बालून के अनुसार केवल साख समितियों के ही स्थापित करने की सुविधा प्रदान की गई। परन्तु आगे चल कर कार्यकर्ताओं को ज्ञात हुआ कि गाँव वालों का उद्धार केवल साख का प्रबन्ध कर देने से ही नहीं हो जावेगा। अपनी फसल बेचने में, खेती के लिये आवश्यक चीजों को खरीदने में, व्यापारी उनको लूटते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य कृषि-सम्बन्धी कार्यों को भी सहकारी समितियों के द्वारा सुविधापूर्वक किया जा सकता है। यही कारण है कि पिछले वर्षों में गैर-साख-कृषि सहकारी-समितियों की अधिकाधिक स्थापना की गई है। फिर भी इन समितियों की संख्या साख समितियों की तुलना में नहीं के बराबर है।

साख (Credit) केवल किसान की एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है, अतएव साख का प्रबन्ध हो जाने से बहुत सी आवश्यकताओं में से एक पूरी हो जाती है, किन्तु किसान की और भी आवश्यकताएँ हैं जिनका पूरा होना आवश्यक है। सिंचाई, खेतों की चकबन्दी, स्वास्थ्य और सफाई की उन्नति, पशुओं के जीवन का बीमा, दूध का घंघा, कृषि की आवश्यक वस्तुओं को मोल लेना तथा खेती की पैदावार को बेचना यह कुछ ऐसी समस्याएँ हैं जिनको सहकारी समितियों के द्वारा भली प्रकार हल किया जा सकता है। कुछ वर्षों से कृषि विभाग तथा सहकारिता आन्दोलन में कार्य करने वालों ने इन समितियों का महत्व समझा है और अब उनकी संख्या बढ़ रही है।

अन्य देशों में प्रत्येक गाँव में सब कार्यों के लिए केवल एक सहकारी

समिति के सिद्धांत को अधिकाधिक अपनाया जा रहा है। किसानों की जितनी भी आवश्यकताएँ हैं उन सबको केवल एक सहकारी समिति ही पूरा करती है। उदाहरण के लिए एक समिति ही साख, क्रय-विक्रय, तथा स्वास्थ्य और सफाई का कार्य करती है, परन्तु भारतवर्ष में भिन्न भिन्न कार्यों के लिये भिन्न-भिन्न समितियाँ एक ही गाँव में स्थापित करने की पद्धति चल पड़ी है। सिद्धान्त से एक समिति जो किसान की आवश्यकताओं को पूरा करती हो वह अधिक उपयोगी तथा साहूकार की शक्ति का नष्ट करने में अधिक सफल हो सकती है।

भारतवर्ष में लगभग पाँच हजार गैर साख कृषि सहकारी समितियाँ भिन्न-भिन्न प्रान्तों में कार्य कर रही हैं। परन्तु अभी यह आन्दोलन निर्बल है।

सहकारी क्रय-विक्रय समितियाँ

(Cooperative sale and purchase Societies)

किसानों के लिए साख के बाद, खेती की पैदावार को अच्छे मूल्य पर बेचना तथा आवश्यक वस्तुओं को उचित मूल्य पर खरीदना महत्वपूर्ण कार्य हैं। भारतवर्ष में किसान को बीज, यन्त्र, खाद, बैल तथा दैनिक आवश्यकताओं की वस्तुएँ गाँव के बनिये से अथवा दूकानदार से खरीदनी पड़ती हैं। अधिकांश में वह ऊपर लिखे हुई वस्तुओं को उधार (credit) खरीदता है और यदि वह साख समिति से ऋण ले कर भी इन वस्तुओं को खरीदे तो भी उसे उन वस्तुओं के लिये अर्ध मूल्य देना पड़ता है। किसान बेचने की कला का भा नहीं जानता, इसलिये वहाँ भी वह गाँव के बनिये, तथा मंडियों के दलालों और व्यापारियों द्वारा लूटा जाता है, और उसको अपनी पैदावार का मूल्य कम मिलता है।

यदि हम चाहते हैं कि किसान की आर्थिक दशा सुधरे तो केवल साख का प्रबन्ध कर देने से काम नहीं चलेगा। उसके लिये क्रय-विक्रय समितियों की आवश्यकता होगी। नहीं तो जहाँ हम साख समितियों के द्वारा किसान को महाजन के हाथों से बचाते हैं वहाँ वही महाजन किसान को आवश्यक

वस्तुएँ बेचने में उसकी पैदावार खरीदने में लूटता रहेगा । इस कारण क्रय-विक्रय समितियाँ स्थापित किये बिना किसान की स्थिति सुधर ही नहीं सकती ।

क्रय समितियाँ (Purchase Societies)

किसान के लिये आवश्यक वस्तुओं को खरीदने का कार्य तीन प्रकार की समितियाँ करती हैं । (१) सहकारी साख समितियाँ (२) सहकारी क्रय समितियाँ (३) सहकारी क्रय-विक्रय समितियाँ ।

सहकारी साख समितियाँ के द्वारा यह कार्य अत्यन्त सफलता पूर्वक किया जा सकता है । समिति का जब कोई सदस्य किसी वस्तु को खरीदने के लिये ऋण ले तब उसे रुपया न देकर उसकी वह वस्तु खरीद कर दी जावे । कृषि साख सहकारी समितियाँ बीज खाद और हल इत्यादि इकट्ठे खरीद कर अपने सदस्यों को उचित मूल्य पर देती हैं ।

जहाँ शुद्ध क्रय समितियाँ स्थापित की गई हैं वहाँ यह तरीका है कि समिति का मन्त्री सदस्यों से आर्डर इकट्ठे कर लेता है । रुब आर्डर इकट्ठे कर लेने पर चीज एक साथ मँगवा कर सदस्यों में बाँट दी जाती है । केवल नाम मात्र का कमीशन ले लिया जाता है । इससे वह लाभ होता है कि समिति थोक मूल्य पर वस्तुएँ खरीदती है और सदस्यों को वह वस्तुएँ उचित मूल्य पर मिल जाती हैं । क्रय सहकारी समिति की सफलता के लिये यह आवश्यक है कि मन्त्री अथवा प्रबन्धकारिणी समिति के सदस्य बाजार का अध्ययन करते रहें । बाजार भाव के उतार चढ़ाव का अध्ययन करने से यह लाभ होगा कि समिति मन्त्री के समय उन वस्तुओं को खरीद कर रख लेगी कि जिनकी सदस्यों को बहुत आवश्यकता पड़ती है । समिति के कार्य कर्मियों को इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि ग्राम से केवल उन्हीं वस्तुओं को खरीदा जावे जिनकी सदस्यों में अधिक माँग हो ।

क्रिया समिति परिमित दायित्व * (Limited Liability) वाली

*परिमित दायित्व:—समिति के ऋण को चुकाने की सदस्यों के निम्मेदारी हिस्से के मूल्य तक परिमित होती है ।

होती है। प्रत्येक सदस्य को कम से कम एक हिस्सा खरीदना पड़ता है। सब सदस्यों को एक माधारण मभा होती है जो फिर एक पञ्चायत अथवा प्रबन्ध कारिणी समिति का चुनाव करती है। यह पञ्चायत ही समिति के कार्य का संचालन करती है। यदि समिति बहुत बड़ी होती है तो एक वैतनिक मैनेजर रखा जाता है, नहीं तो अवैतनिक मन्त्री ही कार्य चलाता है।

सदस्यों के आर्डर आजाने पर मैनेजर उन आर्डरों को पञ्चायत के सामने रख देता है। पञ्चायत के आदेशानुसार मैनेजर पञ्चायत के एक सदस्य की सहायता से वस्तुयें खरीदता है। समिति उन वस्तुओं को सदस्यों के हाथ बेच देती है। लाभ सदस्यों में खरीद के हिसाब से बाँट दिया जाता है।

शुद्ध क्रय-समितियाँ भारतवर्ष में बहुत कम पाई जाती हैं। बम्बई प्रांत में कुछ क्रय-समितियाँ खाद, बीज तथा खेती के यन्त्रों के खरीदने के लिये स्थापित की गईं थीं किन्तु उनको दशांश अच्छी नहीं है, वे सफल नहीं हुईं। इन समितियों को अफ़ससता का मुख्य कारण दोषपूर्ण प्रबन्ध और सदस्यों की उदासीनता है। सदस्यों के उदासीन रहने का कारण यह भी है कि शुद्ध क्रय-समितियाँ वर्ष में कुछ ही समय कार्य करती हैं। खेती के लिये आवश्यक वस्तुयें खरीद लेने के उपरान्त उनका कोई कार्य नहीं रह जाता। जो समितियाँ क्रय-विक्रय दोनों ही कार्य कर रही हैं वे कुछ सफल अवश्य हुई हैं।

(विक्रय समितियाँ Marketing Societies):

यह तो पूर्व ही कहा जा चुका है कि अधिकांश किसान अज्ञानी हैं, इस कारण वे अपनी फसल बेचने में स्वतन्त्र नहीं होते जो गाँव का साहूकार लेन-देन करता है वही फसल को खरीदता है। एक तो फसल काटने के कुछ दिनों बाद तक बाजार भाव वैसे ही गिरा रहता है, दूसरे साहूकार गाँव में अकेला खरीदार होता है, इसलिये वह बाजार भाव से भी कम कीमत पर फसल खरीदता है। कपास, तम्बाकू, जूट तथा अन्य कच्चा औद्योगिक माल खरीदने के लिये व्यापारी (जो कि बड़े व्यापारियों के एजेंट होते हैं) गाँव

में जाकर फ़ल खरीदते हैं; ये व्यापारी विदेशों के भाव को भी भली-भाँति जानते हैं, वे लोग किसानों की फसल को सस्ते दामों पर खरीदते हैं। जिन बड़े किसानों के पास पैदावार अधिक होती है वे पाम की मन्डियों में अपनी पैदावार ले जाकर बेचते हैं। किन्तु इन मन्डियों में भी किसान को लूटा जाता है। नियमानुसार चुँगी तो उसे देनी ही पड़ती है। मन्डो में गाड़ी खड़ी करने का किराया तथा दलाली भी वही देता है। दलाल अधिकतर व्यापारी से मिला रहता है, इस कारण किसान को अपनी पैदावार का उचित मूल्य नहीं मिल पाता। वहीं वही किसान को तुलाई भी देनी होती है और तुलाई में अधिकतर उसे धोखा दिया जाता है। मूल्य चुकाने के समय व्यापारी धर्म-शाला, गौशाला, प्याऊ, मन्दिर, पाठशाला तथा अन्य ऐसे ही धार्मिक कार्यों के लिए प्रति रुपया कुछ पैसे काट लेता है। शाहीद्वि कमीशन का मत है कि इस प्रकार किसान की पैदावार के मूल्य का १० या १२ प्रतिशत काट लिया जाता है। जब तक किसान को इस भयंकर लूट से नहीं बचाया जावेगा तब तक उसकी निर्धनता दूर नहीं हो सकती।

इसी उद्देश्य से भिन्न भिन्न प्रान्तों में क्रय-विक्रय समितियाँ स्थापित की गई हैं। परन्तु अभी तक इन समितियों की संख्या बहुत कम है और न यही कहा जा सकता है कि वे बहुत सफल हुई हैं। इनमें बम्बई प्रान्त की कपास और गुड़, बंगाल की जूट और धान तथा बिहार और संयुक्त प्रांत की गन्ना बेचने वाली समितियाँ अधिक सफल हुई हैं। बम्बई के गुजरात और कर्नाटक प्रदेशों में कपास, गुड़, धान, तम्बाकू, मिर्च तथा प्याज बेचने के लिए सहकारी विक्रय समितियाँ स्थापित की गई हैं, किन्तु इनमें कपास बेचने वाली समितियाँ ही संख्या में अधिक तथा महत्वपूर्ण हैं। एक समिति चार या पाँच गाँव की पैदावार को बेचती है। समिति के सदस्य उन्हें एक सा अञ्छा बीज देती है। फसल कटने पर सदस्य अपनी कपास समिति को दे देते हैं। समिति उन्हें काम चलाने के लिए कुछ रुपया पेशगी दे देती है, और फसल को इकट्ठी करके अपने गोदाम में रखती है। समिति के कार्यकर्ता बाजार का अध्ययन करते रहते हैं और बम्बई तथा अन्य बाजारों में कपास को ऊँचे दामों पर बेच देते हैं। किसान फसल काटते ही उसे बेच देता है क्योंकि उसे रुपये की तुरन्त आवश्यकता होती है, परन्तु समिति

कर सकती है इस कारण उसे पैदावार का अच्छा मूल्य मिलता है। गुजरात की समितियों ने एक संध कायम किया है जो कि इन समितियों को देखभाल करता है।

बङ्गाल में जूट समितियों ने अपनी एक होल-सेल सोसायटी बनाई है। यह होल सेल सोसायटी एक विशेषज्ञ नौकर रखती है जो कि बाजार भाव का अध्ययन करता है और होल-सेल सोसायटी से सम्बन्धित समितियों को सलाह लेता है।

संयुक्त प्रान्त और बिहार में गन्ना बेचने वाली समितियाँ अधिक संख्या में स्थापित हो गई हैं। इन समितियों का मुख्य कार्य यह है कि कृषि-विभाग के परामर्श के अनुसार गन्ने की खेती की उन्नति करना तथा मिलों से समझौता करके उनको सदस्यों की पैदावार बेच देना। गन्ने का मूल्य तो सरकार निश्चय करती है, इस कारण कीमत के तय करने में कोई अड़चन नहीं होती। अभी थोड़ा समय हुआ संयुक्त प्रान्त में विशेष कर इटावा तथा पश्चिमी जिलों में बहुत बड़ी संख्या में भी समितियाँ स्थापित हो गई हैं। ये समितियाँ सदस्यों का भी इकट्ठा करके बेचती हैं।

इनके अतिरिक्त पंजाब में कुछ सहकारी कमीशन शाप (दुकान) स्थापित की गई हैं जो सदस्यों और गैर सदस्यों की पैदावार को बेचती हैं। इनके अतिरिक्त पंजाब में क्रय-विक्रय समितियाँ भी स्थापित की गई हैं जो अधिक सफल नहीं हुईं। मद्रास, मध्यप्रान्त, बिहार-उड़ीसा तथा संयुक्तप्रान्त में भी क्रय-विक्रय समितियाँ हैं किन्तु ये अधिक सफल नहीं हैं।

विक्रय समितियों का संगठन

विक्रय समितियाँ परिमितदायित्व (Limited Liability) वाली होती हैं। प्रत्येक सदस्य को एक हिस्सा खरीदना होता है। किन्तु विक्रय समितियाँ तभी सफल होती हैं जब कि उनके सदस्य अधिक हों। इसी कारण विक्रय समितियाँ तीन चार गाँवों की पैदावार बेचती हैं। छोटी समितियों के सदस्य वे ही हो सकते हैं जो कि फसल स्वयं उत्पन्न करते हों। जो लोग

कि कुत्र बेचना नहीं चाहते उन्हें सदस्य नहीं बनाया जाता। सदस्यों की जनरल मीटिंग एक मैनेजिंग कमेटी का चुनाव करती है। यही मैनेजिंग कमेटी समिति का कार्य संचालन करती है। इस कारण यह आवश्यक हो जाता है कि मैनेजिंग कमेटी में वे ही लोग रखे जावें जो व्यापार से परिचित हों। इन समितियों को अधिक राशि में वस्तुओं को बेचने से ही लाभ हो सकता है। इसलिये जितने भी अधिक सदस्य हों अच्छा है। प्रत्येक सदस्य केवल समिति के द्वारा ही अपनी फल बेच सकता है स्वतंत्र रूप से नहीं। इस नियम का कड़ाई के साथ पालन होना चाहिये, नहीं तो उस गाँव के व्यापारी समिति को भग करने के लिये सदस्यों का उनकी पैदावार अधिक मूल्य देकर उन्हें फोड़ें लगे।

फल कटने पर सदस्य अपनी पैदावार समिति में जमा कर देना है। समिति उसे काम चलाने के लिये अनुमानतः आधा मूल्य उसी समय दे देती है और शेष पैदावार के बिग जाने पर चुकाती है। समिति इकट्ठी वस्तु को बाजार में यथा समय अच्छे दामों पर बचती है। समिति लाभ का २५ प्रतिशत नियमानुसार रक्षित कोष में जमा करती है, शेष सदस्यों में उनकी पैदावार के अनुपात में बाँट देती है। इन समितियों को व्यापारियों से प्रतिद्वन्द्वता बननी पड़ती है। इस कारण अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए इन्हें होलसेल सोसायटी* बना लेनी चाहिये जिससे वे अधिक राशि में पैदावार को बेच कर व्यापारियों की प्रतिद्वन्द्वता में टिक सके। यह हाल सेल सोसायटी समितियों को व्यापारिक परामर्श देनी रहेगी।

क्रय-विक्रय समितियों के सामने निम्नलिखित कठिनाईयाँ उपस्थित होती हैं। (१) छुट्टी होने पर वे व्यापारियों की प्रतिद्वन्द्वता में टिक नहीं सकती। (२) इन समितियों में व्यक्तियों को सदस्य बनाने में यह खतरा है कि व्यापारी अपने आदमियों को उनका सदस्य बनाकर समिति को भग करने का प्रयत्न करते हैं। अस्तु केवल साख सहकारी समितियाँ ही उसकी सदस्य

*होल सेल सोसायटी-याँक विक्री करने वाली समिति जिससे गाँव की समितियाँ सम्बन्धित होती हैं।

बनाई जावे, किन्तु यह नियम रक्खा जाव कि ठीक साब समिति के सदस्य नहीं है उनकी पेशवार को भी समिति कमीशन पर वेचेगी (३) इन समितियों के सामने पूँजी की समस्या भी खड़ी होती है। समिति की निजी पूँजी बहुत कम होती है और सेन्ट्रल सहकारी बैंक पूँजी के बराबर ही श्रृंखला देते हैं। किसान कुछ सरकारी पेशगी चाहता है अतएव पूँजी की कमी रहती है।

कृष विकास समितियों को और प्रकार तथा जनता दोनों को ही ध्यान देना चाहिये क्योंकि बिना उनके यथेष्ट सहयोग में स्थापित नये किसान को दलालों तथा व्यापारियों को लूट में नहीं बचाया जा सकता। और जब तक उसे अपनी पैदावार का उचित मूल्य नहीं मिलता तब तक उनकी आर्थिक स्थिति नहीं सुधर सकती।

भूमि की चकबंदी करने वाली समितियाँ

(Consolidation of Land Holdings Societies)

यह तो पहले ही लिखा जा चुका है कि हिन्दोस्तान में किसानों के पास जो भी भूमि है वह छोटे छोटे खेतों में बँटी हुई है और यह खेत एक दूसरे से दूर हैं। बिखरे हुये छोटे-छोटे खेतों पर अच्छी तरह से खेती नहीं हो सकती क्योंकि किसान का दैन बिल्वे हुए खेतों पर खेती करने से बहुत सा समय, शक्ति, श्रम, तथा पूँजी नष्ट होती है। यदि सब खेत एक ही स्थान पर हों तो किसान कम खर्च में अधिक पैदावार उत्पन्न कर सकता है। अर्थशास्त्रियों का कहना है कि जब तक बिखरे हुये खेतों की समस्या को हल नहीं किया जाता तब तक खेती का सुधार हो ही नहीं सकता। भारत में सबसे पहले पंजाब प्रान्त में सहकारीता विभाग ने चकबंदी सहकारी समितियाँ स्थापित करके बिखरे हुये खेतों की समस्या को हल करने का सफल प्रयत्न किया। अब हम चकबंदी सहकारी समितियों के सम्बन्ध में विस्तृत रूप से लिखते हैं।

खेती की चकबंदी करने का सिद्धान्त यह है कि गाँव में जितने भी खेतों के मालिक हैं उन सबके खेतों को इस तरह अदल बदल दिया जावे कि

हर एक को अपने सब खेतों के बराबर ही जगह एक चक्र में या दो या तीन चक्रों में मिल जावे ।

चक्रबन्दी समिति की स्थापना

किसी गाँव में चक्रबन्दी समिति के स्थापित करने के पहले सहकारिता विभाग के कर्मचारी गाँव में जाकर किसानों को बिखरे हुये खेतों से हाने वाली हानियाँ और चक्रबन्दी के लाभ समझाते हैं । यदि सहकारिता विभाग का कर्मचारी प्रचार करने के बाद यह समझता है कि उस गाँव के लोग चक्रबन्दी कराने के लिये राज़ी हैं तो वह एक सभा करता है और गाँव वालों को बतलाता है कि चक्रबन्दी किस प्रकार की जावेगी । यदि सब गाँव वाले तैयार होते हैं तो समिति बना ली जाती है और पंचायत चुन ली जाती है । समिति का सदस्य जमींदार या मौसूरी किसान हो सकता है ।

समिति के सदस्यों को निम्नलिखित बातें स्वीकार करनी पड़ती हैं :—

१—खेतों की चक्रबन्दी करने के लिये बिखरे हुये खेतों का नया बटवारा होना जरूरी है ।

२—यदि नये बटवारे को दो तिहाई सदस्य स्वीकार कर लेंगे तो वह बटवारा सब को स्वीकार करना होगा ।

३—नये बटवारे के अनुसार वह अपने खेतों को सदा के लिये छोड़ देगा ।

४—यदि किसी प्रकार का झगड़ा खड़ा होगा तो पंच नियुक्त कर दिये जायेंगे और उनका फैसला सबको मानना होगा ।

चक्रबन्दी करने में भी कठिनायियाँ पड़ती हैं । सर्व प्रथम सहकारिता विभाग का कर्मचारी गाँव में कितनी प्रकार की भूमि है यह निश्चित करता है । नये बटवारे में जमीन की भिन्न भिन्न उपजाऊ शक्ति का ध्यान रखना पड़ता है । युक्तियों में किसानों का हिस्सा निर्धारित किया जाता है और पैड़ों (यदि खेतों पर हों) का मूल्य निश्चित करने के बाद नये बटवारे का नक्शा बनाया जाता है । यह नक्शा सब सदस्यों के सामने रखा जाता है । यदि सब सदस्य नये बटवारे को मान लेते हैं तब तो वह लागू हो जाता है, नहीं तो फिर से नया नक्शा तैयार किया जाता है । इस प्रकार कभी-कभी

तीन चार बार नक़शे तैयार करने पड़ते हैं फिर भी सारा परिश्रम केवल एक किसान के हठ से नष्ट हो जाता है ।

यद्यपि नियम २ के अनुसार यदि दो तिहाई सदस्य नये बटवारे को मान लें तो बाकी को उसे मानना पड़ता है, परन्तु इस नियम को काम में नहीं लाया जाता और किसी को भी अपना खेा छोड़ने पर विवश नहीं किया जाता । ऐसा करने से काम बहुत धीरे होता है । पंजाब में इस नियम को कड़ाई के साथ काम में लाने लगे हैं । जब नये बटवारे को सब लोग मान लेते हैं तो उन्हें नये खन दे दिये जाते हैं और उन खेतों की रजिस्ट्री करा दी जाती है ।

किन्तु चक्रबन्दी करने में बहुत सी कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं । जिस योजना में सब किसानों का राजी करना जरूरी हो उसका सफल होना संदेहजनक हो जाता है । बुढ़े किसान अपने बाप-दादों की जमीन छोड़ना ही नहीं चाहते, हर एक किसान को अपनी जमीन अधिक उपजाऊ मालूम होती है । जिस किसी के पास एक या दो खेत हैं उसे चक्रबन्दी से कोई लाभ नहीं दिखाई देता । मौरुपी काश्तकार यह समझता है कि यदि उसने अपना खेत बदल लिया तो उसके सारे हक छिन जावेंगे । गाँव का पटवारी भी चक्रबन्दी का विरोध करता है क्योंकि वह समझता है कि चक्रबन्दी हो जाने से उसकी आमदनी कम हो जावेगी । इन कठिनाइयों के रहते हुये भी यदि कार्यकर्ता धैर्य तथा सहानुभूति से कार्य करे तो वह किसानों को राजी कर सकता है ।

चक्रबन्दी आन्दोलन का प्रारम्भ पंजाब प्रान्त में ही हुआ और वहीं वह सब से अधिक सफल हुआ है । अनुमान किया जाता है कि बिभाजन के पूर्व प्रतिवर्ष दो लाख एकड़ भूमि की पंजाब में चक्रबन्दी हो गई थी । संयुक्त-प्रान्त के सहारनपुर तथा विजनौर जिलों में चक्रबन्दी समितियाँ स्थापित की गई हैं जो कि सफलता पूर्वक चक्रबन्दी का काम कर रही हैं किन्तु इनकी संख्या अधिक नहीं है । देशी राज्यों में बड़ोदा और काश्मीर में चक्रबन्दी समितियाँ सफलतापूर्वक कार्य कर रही हैं ।

कुछ विद्वानों का कहना है कि बिखरे हुए खेतों की समस्या ऐसी विकट है

कि वेवल रहकारी चक्रबन्दी समितियों से ही वह हल न होगी, क्योंकि समितियों के द्वारा कार्य बहुत धीरे होता है। अतएव उनकी राय में सरकार एक कानून बनाकर बखरे हुये खेतों की चक्रबन्दा कर दे। मध्यप्रान्त, पूर्वी यज्जाव संयुक्तप्रान्त में इस आशय का एक कानून बनाया गया है।

राहकारी कृषि सामंत्तयां

[Co-operative Farming Societies]

चक्रबन्दी के पश्चात् भी खेतों का क्षेत्र इतना बढ़ा नहीं होगा कि बड़ी मात्रा की खेती की जा सके अथवा उच्च कृषि साधनों का उपयोग किया जाय। इसके अतिरिक्त श्रमार्थियों का खेतों के क्षेत्र में बसाने तथा देश की भाजन सम्बन्धी सभी पूर्ण करने के लिये अधिक भूमि में खेती करने की आवश्यकता है। संयुक्त प्रान्त का सरकार इस समय तराई, गंगा खादर और बुन्देलखण्ड के प्रदेशों में ट्रैक्टरों द्वारा भूमि तैयार करके सहकारी ढंग पर खेती करने के लिये किसानों का जमीन दे रही है। प्रत्येक किसान सहकारी कृषि सामंत्तयां का सदस्य होता है। सामंति उसने लिये बीज, औजार आदि का संबंध करता है तथा उसकी अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति भी करती है। किसान को अपना माल की बिक्री में गाँव की बजारों में ही करना पड़ता है। रासत किसानों का फसल-भाजना भी निश्चय करती है। गंगा खादर में प्रत्येक परिवार का दस दस एकड़ भूमि और बैल खेती करने के लिये पेशगा रुपया दिये गये हैं। प्रदर्शन और बाज के सरकारी फार्म खोले जा रहे हैं।

अन्य प्रान्तों में भी सहकारी खेतों के प्रयोग हो रहे हैं। कुछ विद्वानों का कथन है कि इसके रयान पर रूढ़ी ढंग पर कृषि व्यवस्था हानी चाहिये उनके अनुसार सहकारी खेती अगस्त सिद्ध होगी। कम से कम उन क्षेत्रों में जहाँ खेती हो रही है इसकी अप्रफलता रहेगी। दरअसल सहकारी खेती का प्रयोग होना चाहिये। तभी सफलता का पता चलेगा।

रहन-सहन सुधार समितियाँ

Better Living Societies

बेटर लिविंग सोसायटियाँ (Better Living Societies) सर्व

प्रथम पंजाब में स्थापित की गईं और क्रमशः वे अन्य प्रान्तों में स्थापित होती जा रही हैं ।

रहन-रहन सुधार समितियों का प्रधान उद्देश्य गांवों में प्रचलित बुरी रस्मों को बन्द करना, सामाजिक तथा धार्मिक कार्यों के लिये कर्ज़ लेकर पिजुल खर्च करने की आदत को रोकना, गाँव में सफाई रखना, खेतीबारी को उन्नत बनाने के उपायों का प्रचार करना, कुओं की मरम्मत करवाना, गाँव की गलियों को ठीक करना, खद के गड़हे बनवाना, ट्रेड दार्यों को गाँव में रखना, घरों में हवा तथा रोशनी के लिये खिड़की तथा रोशनदान लगाने का प्रचार करना, तथा जेवर पर व्यय न करने के लिये गाँव वालों का समझाना है ।

इन समितियों का संगठन बहुत सहल है । सदस्यों को हिस्सा नहीं खरीदना पड़ता और न समिति की कोई हिस्सा पूँजी [Share Capital] ही हाती है । प्रत्येक गाँव का रहने वाला जो कि समिति के सिद्धान्त और नियमों का पालन करने को तैयार हो वह समिति का सदस्य बन सकता है । सदस्य का केवल नाम मात्र की प्रवेश फीस देनी हाती है । सदस्यों से कोई चढ़ा भी नहीं लिया जाता । साधारण सभा [General Meeting] जिसमें सब सदस्य होते हैं कुछ उपनियम बनाती है जिसका पालन प्रत्येक सदस्य के लिये अनिवार्य हाता है । उदाहरण के लिये समिति यह निश्चय कर देगी कि शार्दा, मृत्यु तथा अन्य धार्मिक कार्यों पर अधिक से अधिक एक सदस्य कितना रुपया खर्च कर सकता है । जो भी सदस्य इस नियम की अपहेलना करेगा उसे दंड स्वरूप जुर्माना देना होगा । प्रतिवर्ष गाँव के सुधार के लिये समिति एक वार्षिक योजना स्वीकार करती है और उसके सम्बन्ध में नियमादि बना देती है । जो भी सदस्य उन नियमों का पालन नहीं करता उनको दण्ड दिया जाता है । एक वर्ष गाँव की सफाई का प्रोग्राम बनाया जाता है, सदस्यों को अपनी खाद गड़हों में रखने के लिये कहा जाता है, दूसरे वर्ष घरों में रोशनदान इत्यादि लगाने का प्रचार किया जाता है । रहन-रहन सुधार समितियाँ [Better Living Societies] वास्तव में ग्राम सुधार कार्य को करती हैं । इनके द्वारा ग्रामसुधार कार्य अधिक संगठित तथा सुचारु रूप से चल सकता है ।

पंजाब और संयुक्तप्रान्त में ये समितियाँ अधिक सफल हुई हैं और संख्या में अधिक हैं। पंजाब के सहकारिता विभाग के रजिस्ट्रार का कथन है कि जिन गाँवों में ये समितियाँ स्थापित हो गई हैं वहाँ के रहने वालों को उनके द्वारा हज़ारों रुपये की बचत होती है। जो भी इन समितियों के सदस्य होते हैं वे नियमानुसार इस प्रकार अपव्यय कर ही नहीं सकते, साथ ही वे अन्य किसी भी गाँव वाले के विवाहान्तसव में सम्मिलित नहीं हो सकते जहाँ इस प्रकार अपव्यय किया जावे। इस प्रकार समिति का प्रभाव गैर-सदस्यों पर भी पड़ता है। पंजाब तथा संयुक्त प्रान्त में ये समितियाँ गाँव की सफाई करवाती हैं, गलियों को साफ तथा एक सा करवाती हैं तथा गाँव वालों को हवा तथा रोशनी का महत्व बतलाकर मकानों में खिड़की और रोशनदान लगवाती है। पंजाब में ये समितियाँ ज़ेवर बनवाने का भी विरोध करती हैं क्योंकि इससे रुपये का नुकसान तो होता ही है, साथ ही चोरों का भी भय रहता है। संयुक्त प्रान्त तथा पंजाब दोनों ही में ये समितियाँ सदस्यों को खाद गड़हों में रखने के लिए विवश करती हैं जिसे कि गाँव गंदा न हो और खाद उत्तम तैयार हो। पंजाब में एक समिति ने गोबर के कडे न बनाने और सारे गोबर की खाद बनाने का निश्चय किया है। पंजाब में तीन सौ से ऊपर रहन-सहन सुधार समितियाँ किसी न किसी रूप में ग्राम-सुधार कार्य कर रही हैं।

संयुक्त प्रान्त में रहन-सहन सुधार समितियों की संख्या पंजाब से बहुत अधिक है और साथ ही वे पंजाब से अधिक क्रिया-शील भी हैं। ऊपर लिखे हुए कार्यों के अतिरिक्त वे कहीं कहीं अस्पताल चलाती हैं, पौधों के लिए राखि पाठशालायें खोलती हैं, ट्रेंड दाइयाँ रखती हैं, अन्ध्रा बीज खरीद कर बेचती हैं, और कुयें बनवाती हैं। संयुक्त प्रान्त में रहन-सहन सुधार समितियाँ प्रान्त के पूर्वीय भाग में अधिक हैं। संयुक्त प्रान्तीय सहकारिता विभाग ने परतापगढ़ तथा मसौधा में (फैजाबाद) रहन सहन सुधार समितियों (परतापगढ़ में १५० के लगभग तथा मसौधा ७० के लगभग समितियाँ हैं जो ग्राम सुधार कार्य करती हैं) के द्वारा संगठित रूप में ग्राम सुधार कार्य किया है और उनमें उसे सफलता भी मिली है।

यदि देखा जावे तो रहन-सहन सुधार समिति अत्यन्त उपयोगी संस्था है और ग्राम-सुधार कार्य में इसका बहुत उपयोग हो सकता है।

उपभोक्ता सहकारी भंडार •

(Consumers Co-operative Stores)

मनुष्य समाज का प्रत्येक सदस्य उपभोक्ता है। प्रत्येक मनुष्य को अपनी आवश्यकताओं को पूरा करना पड़ता है, इस कारण प्रत्येक मनुष्य को कुछ न कुछ वस्तुओं का उपभोग करना होता है। यदि देखा जावे तो सम्पत्ति का उत्पादन करने वालों तथा उसको उपभोग करने वालों का घनिष्ट-सम्बन्ध है। एक दूसरे पर निर्भर है, किन्तु उत्पादन करने वालों के बीच में इतने दलाल (middle-men) हैं कि वे दूसरे से बहुत दूर पड़ जाते हैं। व्यापारी (दलाल) वस्तुओं के उत्पन्न करने वालों का उनका जो मूल्य देते हैं उससे बहुत अधिक मूल्य उपभोक्ताओं से वसूल करते हैं। यही नहीं कि वस्तुओं का मूल्य अधिक देना पड़ता है, बल्कि वस्तुओं में मिलावट भी की जाती है। निधन उपभोक्ताओं जैसे किसान और मजदूर को ये व्यापारी (अर्थात् दूकानदार) खूब ही ठगते हैं। विशेषतः आर्थोगिक केन्द्रों में काम करने वाले मजदूर किसी बनिये से ही अपनी सामग्री उधार खरीदते हैं और वेतन मिलने पर दाम चुका देते हैं। बनिये इन्हें खूब लूटते हैं। उन्हें दूकान में जो सब से रही वस्तु होती है उसे अधिक मूल्य पर देते हैं। सहकारी भंडार* इन दलालों (व्यापारियों) को अपने स्थान से हटा कर उपभोक्ताओं को उचित मूल्य पर अच्छी चीज देने में सफल हुए हैं।

संसार को सहकारी स्टोर्स जैसी उपयोगी संस्था की देने का श्रेय इंग्लैंड के राकडेल नामक स्थान के अट्टाइस बुनकरों को है। सन् १८४४ ईसवी में राकडेल के उन अट्टाइस फालालेन बुनने वालों ने जो कि अत्यन्त निधन थे, एक दूकान खोली। उन २८ जुलाहों (बुनकारों) में एक हिस्से का मूल्य एक पौंड रक्खा। २ पैसे प्रति सप्ताह किश्त लेकर दो वर्षों में २८ पौंड पूंजी इकट्ठी की, और आरम्भ में केवल पाँच वस्तुओं (मक्खन, शक्कर, आँट

*सहकारी-भंडार :—ऐसी दूकान जिसको बहुत से सदस्यों ने अपनी आवश्यक वस्तुओं को उचित मूल्य पर प्राप्त करने के लिये स्थापित किया हो।

का आटा गेहूँ का आटा तथा मोमवत्ती) को बेचने का प्रबन्ध किया । स्टोर्स सौदा उधार नहीं देता था, किन्तु वस्तुएँ शुद्ध तथा तैल में पूरी होती थीं । प्रत्येक सदस्य का एक वोट था । लाभ खरीदारी के अनुपात में बाँटा जाता था । उदाहरण के लिये एक सदस्य ने वर्ष में पचास पौंड की चीजें और दूसरे ने सौ पौंड की खरीदी तो दूसरे को दुगुना लाभ मिलता था । सदस्यों को उत्साहित किया जाता था कि वे अपना लाभ का हिस्सा स्टोर्स में जमा करा दें । इस प्रकार स्टोर्स की पूंजी बढ़ती गई । सदस्यों को उस जमा किये हुये रुपये पर सूद मिलता था ।

राकडेल स्टोर्स सफल हो गया, क्रमशः स्टोर्स सब वस्तुएँ सदस्यों को बेचने लगा । राकडेल स्टोर्स की इस आश्चर्यजनक सफलता को देख कर इंग्लैंड में शीघ्र ही बहुत से स्टोर्स खुल गये ।

इन स्टोर्स की सफलता देखकर फुटकर विक्रेता (दुकानदार) चौंके और उन्होंने उनका विरोध करना शुरू किया । उन्होंने मिल कर थोक व्यापारियों पर ज़ोर डाला कि वे स्टोर्स को अधिक मूल्य पर वस्तुएँ दे । अब सहकारी स्टोर्स के सामने एक कठिन समस्या उपस्थित हुई । किन्तु उन्होंने आपस में मिलकर होल-सेल सोसायटी स्थापित करली । होल-सेल सोसायटी सीधे कारखानों से वस्तुएँ मोल लेकर स्टोर्स को थोक मूल्य पर बेचती हैं । इस प्रकार स्टोर्स ने थोक व्यापारियों के लाभ को भी छीन लिया । प्रत्येक स्टोर्स इस होल-सेल-सोसायटी का सदस्य होता है । सोसायटी का वार्षिक लाभ स्टोर्स में अपनी खरीदार के अनुपात में बाँट दिया जाता है । अन्त में होल-सेल सोसायटी ने उन वस्तुओं को जिनको स्टोर्स खरीदते थे स्वयं ही कारखाने खड़े करके बनाना आरम्भ कर दिया । बूट, साबुन, कपड़ा धोने का साबुन, मोजे, बर्नियाइन, कपड़ा, फर्नीचर, सिगरेट, लोहे, टिन की वस्तुएँ छापेखाने, तेल, आटा, मक्खन, मोमवत्ती तथा अन्य आवश्यक वस्तुएँ बनाने के कारखाने खोले गये । सोसायटी ने अनाज, तरकारी तथा फल उत्पन्न करने के लिये फार्म खोले । आसाम में चाय के बाग़ मोल लिये । कहने का तात्पर्य यह है कि वह प्रत्येक वस्तु को स्वयं उत्पन्न करने लगी । इस प्रकार उपभोक्ताओं ने स्टोर्स को स्थापित कर के फुटकर दुकानदारी, थोक व्यापारियों तथा कारखाने के लाभ को भी छीन लिया ।

सहकारी स्टोर्स (भंडार) के मुख्य-नियम

(१) सहकारी स्टोर्स परिमित दायित्व (Limited liability) वाली संस्था होती हैं।

(२) प्रत्येक सदस्य को स्टोर्स के हिस्से खरीदने होते हैं, किन्तु वोट देने का अधिकार हिस्से के हिसाब से नहीं होता है। प्रत्येक सदस्य को केवल एक वोट देने का ही अधिकार होता है।

(३) प्रत्येक सदस्य को उन वस्तुएँ को जो स्टोर बेचता है स्टोर से ही खरीदनी पड़ती हैं।

(४) स्टोर उधार नहीं बेचता और बाजार भाव पर ही शुद्ध और अच्छी वस्तुएँ देता है। भाव में कमी नहीं करता।

(५) एक चौथाई लाभ रक्षित कोष में जमा किया जाता है और शेष सदस्यों में उनकी खरीदारी के अनुपात में बाँट लिया जाता है।

(६) सदस्यों की सभा जनरल मीटिंग कहलाती है। स्टोर की नीति को वही निर्धारित करती है और उनका प्रबन्ध करने के लिये एक प्रबन्ध कारिणी समिति (Managing Committee) चुन देती है। प्रबन्ध कारिणी समिति स्टोर का प्रबन्ध करती है।

भारतवर्ष में उपभोक्ता स्टोर (भंडार)

भारतवर्ष में अभी तक उपभोक्ता स्टोर्स असफल हो रहे हैं। यदि कहीं कहीं थोड़े से स्टोर्स सफल दृष्टिगोचर होते हैं तो आन्दोलन सफल नहीं कहा जा सकता। अधिकतर कालेजों और रेलवे के स्टोर सफल हुये हैं। इन स्टोर्स को दुकानदारों से प्रतिस्पर्धा नहीं करनी पड़ती तथा उन्हें बहुत सी अन्य सुविधाएँ प्राप्त होती हैं।

भारतवर्ष में प्रथम योरोपीय महायुद्ध के समय बहुत से स्टोर्स खोले गए। क्योंकि उस समय भोज्य पदार्थों का नियन्त्रण सरकार ने अपने हाथ में ले लिया था और सब वस्तुओं का मूल्य बहुत बढ़ गया था। किन्तु युद्ध के उपरान्त सहकारी नियन्त्रण हट गया और कुछ समय के बाद वस्तुओं का मूल्य भी घट गया। तब स्टोर्स की संख्या घटने लगी। बहुत से स्टोर्स बंद

हो गये और बहुतें का दिवाला निकल गया। १९३६ के उपरान्त युद्ध के कारण फिर हजारों की संख्या में स्टोर खुल गये हैं किन्तु कंट्रोलों के समाप्त हो जाने पर उनकी क्या दशा होगी यह कह सकना कठिन है। मदरास में एक होल-सेल सोसायटी भी बन गई है।

भारतवर्ष में स्टोर्स की असफलता के मुख्य कारण

यह तो सर्व विदित है कि धनी व्यक्ति तो स्टोर्स की ओर आकर्षित नहीं होते क्योंकि यदि उन्हें अपनी वस्तुओं की खरीदारी पर वर्ष के अन्त में कुछ लाभ मिलता है तो वह उनके लिये कोई अधिक बचत नहीं होती। इंग्लैंड में स्टोर्स आन्दोलन ने अधिकतर मजदूरों और निचले मध्यवर्ग के लोगों को आकर्षित किया है। भारतवर्ष में कारखानों के मजदूर अशिक्षित और निर्धन हैं इस कारण संगठन के महत्व को नहीं समझते। वे अधिकतर दूकानदारों के श्रुणी हैं। साथ ही वे स्थायी रूप से कारखानों में काम नहीं करते कुछ वर्षों के बाद वे अपने गाँवों की चले जाते हैं। इस कारण वे स्टोर्स के हिस्से लेकर उसके सदस्य नहीं बनना चाहते।

रहा मध्यवर्ग, वह भी स्टोर्स की ओर आकर्षित नहीं होता क्योंकि व्यापारिक तथा औद्योगिक केन्द्रों में प्रत्येक वस्तु की इतनी अधिक दूकानें होती हैं कि थोक और फुटकर मूल्य में अधिक अन्तर नहीं होता, प्रत्येक दूकानदार महीने के अन्त में मूल्य लेता है और परचूनी वाले घर पर ही सामान पहुँचा देते हैं यह सुविधाएँ स्टोर्स नहीं दे सकता।

भारतवर्ष में सहकारी स्टोर्स के साथ पूँजी की भी कठिनाई होती है। सदस्यों के लिए हुए हिस्सों से इतनी पूँजी इकट्ठी नहीं होती कि काम चल जावे और सैण्ड्रल तथा डिस्ट्रिक्ट बैंक उन्हें ऋण नहीं देते। एक कमी और है और जिसके कारण भारतवर्ष में स्टोर्स आन्दोलन पनप नहीं सका। वह है होल-सेल-सोसायटी की कमी। स्टोर्स थोक व्यापारियों से माल खरीदते हैं थोक व्यापारी उनसे मूल्य अधिक लेते हैं इस कारण स्टोर्स को अधिक लाभ नहीं हो सकता। यदि होल-सेल-सोसायटी स्थापित हो जावे तो थोक व्यापारियों का लाभ भी सदस्यों के लिये सुरक्षित किया जा सकता है।

ऊपर लिखे कारणों से स्टोर्स आन्दोलन भारतवर्ष में न पैदा सका, अब हम उन कारणों को लिखते हैं जिनसे वे थोड़े-से स्टोर्स जो कि खोलें गए थे असफल हो गये !

स्टोर्स की असफलता का मुख्य कारण यह है कि सदस्य स्टोर-आन्दोलन के मुख्य सिद्धान्त को भूल जाते हैं। वे समझते हैं कि स्टोर्स सस्ती चीजें बेचने के लिए खोला गया है। इसका फल यह होता है कि जब बाजार भाव सस्ता हो जाता है तो स्टोर्स की दशा खराब हो जाती है, और सदस्य स्टोर्स से चीजें न खरीद कर दूकानदार से खरीदने लगते हैं। स्टोर असफल हो जाता है।

सिद्धान्त तो यह है कि वस्तुएँ बाजार भाव पर बेची जायें किन्तु चीजें अच्छी हों और तौल में पूरी हों। असफलता का दूसरा मुख्य कारण है सौदा उधार देना। स्टोर को सौदा उधार देने के कारण थोक व्यापारियों से माल उधार लेना पड़ता है।

असफलता का तीसरा मुख्य कारण प्रबन्ध का ठीक न होना और व्यय का अधिक होना है। सदस्यों द्वारा निर्वाचित प्रबन्ध कारिणी समिति तथा सदस्य स्टोर के कार्य में दिलचस्पी नहीं लेते और न अपना समय ही देते हैं। फल यह होता है कि वैतनिक मैनेजर तथा सेल्टमेन ही स्टोर के कर्तव्य बर्ता वन जाते हैं।

१९३६ के उपरान्त महायुद्ध के कारण खाने पीने की चीजों का दाम जब बहुत बढ़ गया और कहीं कहीं तो उन वस्तुओं का मिलना भी कठिन हो गया तब सहकारी स्टोर्स स्थापित करने की ओर लोगों का ध्यान गया। इसी कारण पिछले दो तीन वर्षों में सैकड़ों की संख्या में उपभोक्ता स्टोर्स प्रत्येक प्रान्त में स्थापित हो गए हैं और होते जा रहे हैं। यह कहना कठिन है कि नियंत्रण के हटने पर जब सब चीजें आसानी से मिलने लगेंगी तब भी ये स्टोर्स जीवित रहेंगे या टूट जावेंगे।

मदरास और बम्बई प्रान्तों में इन स्टोरों की होल-सेल युनियनें भी स्थापित हो गई हैं जो कि अपने सम्बन्धित स्टोरों के लिए थोक माल खरीदती हैं और स्टोरों को बेच देती हैं।

मदरास का ट्रिपलीकेन स्टोर

भारतवर्ष में केवल ट्रिपलीकेन स्टोर ने आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त की है। यह स्टोर १ अप्रैल १९०४ का खोला गया। आरम्भ में केवल आठ आठ रुपये के दो कर्मचारी रखे गए। स्टोर के जन्मदाताओं ने स्टोर की देखभाल में बहुत समय देना शुरू किया। जहाँ तक हुआ व्यय कम किया गया। स्टोर सफल हुआ। आज स्टोर की बीस शाखाएँ काम कर रही हैं। ६ के पास अपनी निजी इमारतें हैं। स्टोर वर्ष में ग्यारह या बारह लाख रुपये की वातुएँ बेचता है। स्टोर की चुकाई हुई पूँजी एक लाख रुपए से अधिक है और रक्षित कोष (Reserve Fund) डेढ़ लाख रुपए के लगभग है।

मदरास और मैसूर में स्टोर कुछ सफल हुए हैं। बंगलौर का स्टोर भी एक अत्यन्त सफल संस्था है, परन्तु वह ट्रिपलीकेन स्टोर से जुड़ा है। भारत-वर्ष में स्टोर्स की संख्या बहुत कम है। सयुक्तप्रान्त में नए स्टोर्स खुल रहे हैं। भारतवर्ष के अधिकतर स्टोर्स असफल हैं।

महायुद्ध और स्टोर

द्वितीय महायुद्ध के समय भी कंट्रोल के कारण तथा आवश्यक वस्तुओं के न मिलने के कारण बहुत बड़ी संख्या में सहकारी उपभोक्ता स्टोर्स खोले गये थे। अभी यह कद सकना बहुत कठिन है कि जब यह कंट्रोल इत्यादि टूट जावेंगे तब ये स्टोर्स व्यापारियों की हाँड़ में टिक सकेंगे या नहीं। कम से कम इस समय तो प्रांतीय सरकार की नीति राशन तथा कंट्रोल की वस्तुओं का वितरण उपभोक्ता स्टोर्स के द्वारा कराने की है। शहर और गाँव में स्थान स्थान पर ये स्टोर खोले जा रहे हैं। सन् १९४२ के आरंभ में जब कंट्रोल हटाया गया था, सरकार को विश्वास दिलाया गया था कि व्यापारी गण अब धोखा धड़ी और बेइमानी नहीं करेंगे। परन्तु सरकार को धोखा हुआ और अब सरकार व्यापारियों के हित-अहित का ध्यान छोड़ कर सहकारी स्टोर्स की व्यवस्था कर रही है। यू० पी० में कई हजार सहकारी स्टोर्स स्थापित किये जा चुके हैं परन्तु उनकी सबसे बड़ी कमजोरी है सहकारी शिक्षा का अभाव तथा कम प्रचार है।

अभ्यास के प्रश्न,

१—गैर साख कृषि सहकारी समितियों की क्यों स्थापित किया गया ? उनकी आवश्यकता क्यों पड़ी ?

२—केवल साख कृषि सहकारी समिति से ही किसान की सारी समस्याएँ क्यों हल नहीं हो सकती ?

३—गाँव वालों को गाँव के बाज़ारों से चीज़ें खरीदने में क्या हानि होती है ? यदि वे क्रय-समिति बना लें तो उनको क्या लाभ होगा ?

४—यदि तुमसे कहा जावे कि तुम अपने गाँव में एक क्रय-समिति बनाओ तो तुम उसका संगठन किस प्रकार करोगे ?

५—क्रय-समिति अपने सदस्यों की आवश्यकताओं को किस प्रकार पूरा करती है ?

६—गाँव के महाजन, बाहर से आने वाले व्यापारियों के एजेंट तथा मंडी में अपनी पैदावार बेचने से किसान की क्या हानि होती है ?

७—इस स्थिति में जिसमें कि किसान आजकल है वह अपनी पैदावार का उचित मूल्य क्यों नहीं पा सकता ?

८—विक्रय-समितियाँ क्या कार्य करती हैं ? किसानों को विक्रय समिति के सदस्य बनने से क्या लाभ होता है ?

९—विक्रय-समिति का संगठन किस प्रकार होता है और वह किस प्रकार सदस्यों की पैदावार को बेचती है ?

१०—विक्रय समिति को सफलतापूर्वक चलाने में कौन कौन सी कठिनाइयाँ पड़ती हैं ?

११—चकबन्दी समितियाँ किस प्रकार गाँव के बिखरे हुए खेतों की चकबन्दी करती हैं ?

१२—चकबन्दी समिति के स्थापित होने तथा उसके सफलतापूर्वक चकबन्दी करने में क्या क्या अड़चने आती हैं ? क्या इनके स्थान पर सहकारी कृषि समितियाँ स्थापित की जाय ?

१३—रहन-सहन-सुधार-समितियों का क्या उद्देश्य है और वे कौन कौन से कार्य करती हैं ?

१४—रहन-सहन-मुधार-समितियाँ कहाँ कहाँ सफलतापूर्वक कार्य कर रही हैं ?

१५—इंग्लैंड में उपभोक्ता-स्टोर आन्दोलन का विवरण लिखिये ।

१६—उपभोक्ता स्टोर जिन नियमों के अनुसार काम करता है उनको बतलाइये ।

१७—भारतवर्ष में उपभोक्ता स्टोर आन्दोलन क्यों असफल रहा ?

१८—उपभोक्ता-स्टोर से क्या लाभ है ? यदि तुम्हारे स्कूल में विद्यार्थी उपभोक्ता स्टोर खोलना चाहें तो तुम उसके लिये कौन से नियम पसन्द करोगे ?

१९—निम्नांकित पियों सहकारी समिति व्यवस्था और कार्य प्रणाली का वर्णन कीजिये ।

(i) उपभोक्ता स्टोर (१९४८)

(ii) रहन-सहन-मुधार-समिति । (१९४६)

(iii) सहकारी कृषि-समिति ।

२०—तुम्हारे प्रान्त में कौन कौन सी अकृषि सहकारी समितियाँ चालू हैं ? वह किस प्रकार से ग्रामीणों की हालत सुधारने में सहायता करती हैं ? (१९४४)

२१—उपभोक्ता स्टोर या विक्री समिति के सिद्धान्त समझाइए । (१९४४)

२२—औद्योगिक केन्द्रों में सहकारी उपभोक्ता स्टोरों की क्या आवश्यकता है । आपके प्रान्त में ऐसे स्टोर क्यों सफल नहीं हुए हैं ? (१९४३)

इकतीसवाँ अध्याय

सहकारी समितियों के यूनियन

(Union of Co-operative Societies)

सहकारिता आन्दोलन सर्व-साधारण का आन्दोलन है। उसे बाहरी सहायता पर निर्भर न रह कर स्वावलम्बी बनाना चाहिये। साख समितियों को डिपाजिट आकर्षित करके कायशील पूँजी स्वयं इकट्ठी करनी चाहिये। परन्तु भारतवर्ष में जब साख समितियाँ डिपाजिट आकर्षित करने में असफल रहीं तो सैन्ट्रल बैंक अथवा बैंकिंग यूनियन की स्थापना करनी पड़ी। सहकारी समितियों की देखभाल साधारणतः उनकी पंचायत को करनी चाहिये। किन्तु शिक्षा के कारण जब पंचायतें अपना कार्य सुचारु रूप से न कर सकीं तो सुपरवाइजिंग यूनियन की स्थापना की गई जो अपने से सम्बन्धित समितियों की देखभाल करती हैं। किन्तु आय व्यय-निरीक्षण तथा सहकारिता के सिद्धान्तों की शिक्षा का कार्य तो सहकारी समितियों की सम्मिलित यूनियन ही कर सकती हैं।

भारतवर्ष में प्रत्येक प्रान्त में प्रान्तीय सहकारी यूनियन अथवा प्रान्तीय सहकारी इंस्टिट्यूट की स्थापना हो चुकी है। इन प्रान्तीय संस्थाओं का मुख्य कार्य-प्रचार करना, समितियों का संगठन, साहित्य प्रकाशन, समितियों की देखभाल, तथा उत्तका निरीक्षण करना है।

भारतवर्ष में दो प्रकार की यूनियन गारंटी यूनियन, तथा सुपरवाइजिंग यूनियन अधिक संख्या में स्थापित की गई हैं अतएव हम उनके विषय में विस्तारपूर्वक लिखते हैं।

गारंटी यूनियन (Guarantee union)

गारंटी यूनियन सैन्ट्रल बैंक द्वारा साख समितियों को दिये हुए ऋण की गारंटी देती है। तीस या चलीस सहकारी साख समितियाँ मिलकर एक गारंटी यूनियन बनाती हैं। जो भी साख समिति गारंटी यूनियन सदस्य बनती है वह अपनी साधारण सभा में निश्चय करती है कि

गारंटी यूनियन से सम्बन्धित कोई समिति अपना ऋण नहीं चुका पावेगी तो समिति एक निश्चित रकम तक उस दिवालिया समिति के ऋण को चुकाने की गारंटी देती है। इस प्रकार यूनियन से सम्बन्धित प्रत्येक समिति एक निश्चित रकम की गारंटी देती है। यह सब मिला कर यूनियन की गारंटी होती है, और यूनियन साख समितियों के ऋण की गारंटी सैन्ट्रल बैंक अथवा बैंकिंग यूनियन को देती है।

गारंटी यूनियन का जन्म बर्मा में हुआ। तद्उपरान्त बम्बई, संयुक्त-प्रान्त, मध्य-प्रान्त, बरार, बंगाल, बिहार और उड़ीसा में भी इनका प्रयोग किया गया, किन्तु वे असफल हुईं, इस कारण वे क्रमशः टूट गईं, और आगे फिर प्रान्तों में इस प्रकार की यूनियन स्थापित ही नहीं की गईं। अन्य प्रान्तों में देशी राज्यों ने भी फिर इन्हें नहीं अपनाया। यह यूनियन बस्तुतः बेकार थी, क्योंकि कृषि सहकारी साख समितियाँ अपरिमित दायित्व वाली होती हैं, फिर गारंटी यूनियन की आवश्यकता ही कहाँ रहती है। अपने जन्म-स्थान बर्मा के अतिरिक्त और कहीं भी अधिक दिनों यह गारंटी यूनियन नहीं रही। विद्वानों का मत है कि बर्मा में सहकारिता आन्दोलन की असफलता में इन यूनियनों का बहुत हाथ है।

सुपरवाइजिंग यूनियन

सुपरवाइजिंग यूनियन के लिए निम्नलिखित कार्यों की आवश्यकता होती है :- कृषि सहकारी समितियों की देखभाल करना, उनको उन्नति का मार्ग दिखलाना, अपने क्षेत्र में नवीन समितियों का संगठन करना, तथा उनकी उन्नति करना, अपने से सम्बन्धित समितियों की पूँजी की आवश्यकता का पता लगाना, तथा उनके सदस्यों की हैसियत का लेखा तैयार करके उनकी साख निर्धारित करना, समितियों को उनके कार्य-संचालन के विषय में उचित परामर्श देना, समिति के सदस्यों तथा पंचों को सहकारिता की शिक्षा देने का प्रबन्ध कराना, समितियों को यदि आवश्यकता हो तो क्रय-विक्रय में सहायता देना और सैन्ट्रल बैंक से उनका सम्बन्ध स्थापित करना।

सुपरवाइजिंग यूनियन से सम्बन्धित समितियाँ अपने प्रतिनिधियों को यूनियन की साधारण सभा में भेजती हैं, यूनियन की साधारण सभा एक

कार्यकारिणी समिति का निर्वाचन करती है। यह कार्यकारिणी समिति ही यूनियन का सारा प्रबन्ध करती है, और सम्बन्धित समितियों की देख-भाल के लिए एक सुपरवाइजर नियुक्त करती है। प्रत्येक समिति अपनी पूँजी के अनुसार यूनियन को चन्दा देता है। कृषि सहकारी समितियों को सफलतापूर्वक चलााने के लिए सुपरवाइजिंग यूनियन की बहुत आवश्यकता है।

एक यूनियन एक ताल्लुके अथवा एक तहसील से बड़े क्षेत्र में कार्य नहीं करती। २० से ४० समितियाँ एक यूनियन से सम्बन्धित रहती हैं। मद्रास प्रान्त में चार सौ के लगभग यूनियन सफलतापूर्वक कार्य करती हैं। बिहार और उड़ीसा में दो प्रकार की यूनियन हैं, एक तो आय-व्यय-निरीक्षण करती हैं दूसरी देख-भाल करती हैं। बम्बई में भी ये समितियाँ अधिक संख्या में हैं और सफलतापूर्वक कार्य कर रही हैं। यहाँ यह प्रयत्न किया जा रहा है कि प्रान्त में कोई कृषि सहकारी साख समिति ऐसी न रहे जो किसी न किसी यूनियन से सम्बन्धित न हो। पंजाब और सयुक्तप्रान्त में यूनियन नहीं हैं वहाँ समितियों की देख-भाल का कार्य प्रान्तीय सहकारी यूनियन अथवा प्रान्तीय सहकारी इंस्टिट्यूट करती है। प्रत्येक प्रान्त में यह सुपरवाइजिंग यूनियन प्रान्तीय सहकारी यूनियन अथवा इंस्टिट्यूट से सम्बन्धित होती हैं। प्रान्तीय यूनियन इनका संगठन और देख-भाल करती है।

प्रान्तीय सहकारी यूनियन (Provincial co-operative union)

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि प्रत्येक प्रान्त में एक सहकारी यूनियन या इंस्टिट्यूट है। पहले प्रान्तीय सहकारी यूनियन नहीं थीं। उस समय यह अनुभव हुआ कि सारे प्रान्त में सहकारी आन्दोलन की उन्नति करने के लिए कोई संस्था होनी चाहिए। प्रान्त भर के गैर सरकारी सहकारी कार्यकर्त्ता आपस में मिल कर विभिन्न समस्याओं पर परामर्श और विचार नहीं कर पाते थे। न प्रांतीय सहकारी विभाग के अतिरिक्त कोई उस आन्दोलन के सम्बन्ध में लिखित प्रचार करता था। सरकारी प्रचार कार्य को संदेह की दृष्टि से देखा जाता था। फिर सरकारी विभाग काम भी नग्न प्रायः करते थे। “दिखावट अधिक काम कम।” सहकारी शिक्षा का भी सरकारी ढंग से प्रबन्ध नहीं हो पाता था। अतः यह सोचा गया कि इन सब कार्य के लिए एक प्रान्तीय गैर सरकारी सहकारी व्यवस्था की जाय। अतः प्रान्तीय

सहकारी यूनियन बनाई गईं । यह प्रांतीय यूनियन गैर सरकारी व्यक्तियों को जो कि इस आन्दोलन में सहानुभूति रखते हैं एक सूत्र में संगठित करती हैं । एक प्रकार से सहकारिता आन्दोलन का यह प्रान्त में नेतृत्व करती हैं । मुख्य कार्य ये हैं ।

(१) सहकारिता आन्दोलन की समस्याओं पर प्रकाश डालना । इसके लिए प्रतिवर्ष यह एक सम्मेलन करती हैं जिसमें प्रान्त के कार्यकर्ता भाग लेते हैं, और इस आन्दोलन के सम्बन्ध में अपने विचार प्रगट करते हैं ।

(२) पुस्तकें तथा पत्र निकाल कर तथा अन्य प्रकार से प्रचार कार्य करना ।

(३) सहकारी शिक्षा का प्रबन्ध करना, इसके लिये ये कक्षाएँ तथा स्कूल खोलती हैं जिनमें सहकारिता की शिक्षा का प्रबन्ध किया जाता है ।

(४) सहकारिता विभाग के रजिस्ट्रार* तथा प्रांतीय सरकार को सहकारिता सम्बन्धी मामलों में राय देती हैं ।

(५) कहीं प्रांतीय यूनियन सहकारी समितियों के निरीक्षण, सङ्गठन तथा आय-व्यय-निरीक्षण का कार्य भी करती हैं ।

अभ्यास के प्रश्न

१—गारंटी यूनियन क्या कार्य करती है ? यह यूनियन असफल क्यों हुई ?

२—सुपरवाइजिंग यूनियन के कार्यों का उल्लेख कीजिये ?

३—सुपरवाइजिंग यूनियन की क्या आवश्यकता है ?

४—प्रांतीय सहकारी यूनियन के मुख्य कार्य क्या हैं ?

५—प्रांतीय सहकारी यूनियन की प्रान्त में सहकारिता आन्दोलन की उन्नति करने के लिए क्यों आवश्यकता हुई ।

*प्रांतीय सरकार की ओर से नियुक्त कर्मचारी जो प्रान्त में सहकारिता आन्दोलन को चलाता है ।

बत्तीसवाँ अध्याय

सैन्ट्रल सहकारी बैंक .

Co-operative Central Banks and Banking Unions

आरम्भ में जब भारतवर्ष में सहकारी साख-समितियाँ स्थापित की गईं तब यह आशा की जाती थी कि ग्रामीण जनता उन समितियों में रुपये जमा करेगी और समितियों के पास अपने सदस्यों को ऋण देने के लिए डिपॉजिट द्वारा यथेष्ट पूँजी आजावेगी। इस कारण सन् १९०४ के सह-कारिता कानून के अनुसार केवल नगर तथा ग्राम्य साख समितियों की स्थापना का विधान किया गया। किन्तु यह आशा कि गाँवों के रहने वाले इन साख समितियों में रुपया जमा करेंगे पूरी नहीं हुई। इसके दो मुख्य कारण हैं, प्रथम किसान अधिकांश में निर्धन तथा ऋणी हैं, द्वितीय वे बैंकों में अपनी बचत का रुपया जमा करने के अग्रयस्त नहीं हैं। विभाग के रजिस्ट्रार—सरकार अथवा धनी व्यक्तियों से ऋण लेकर समितियों के लिए रुपये का प्रबन्ध करते थे। किन्तु इस प्रकार अधिक दिनों तक काम नहीं चल सकता था।

अस्तु इस बात की आवश्यकता प्रतीत हुई कि ऐसे सहकारी बैंक खोले जावें जो कि सहकारी साख समितियों के लिए धन इकट्ठा करें। सन् १९१२ में दूसरा सहकारिता कानून पास हो गया और उनके अनुसार सैन्ट्रल बैंक खोलने की सुविधा हो गयी। अतएव सन् १९१२ के उपरान्त सहकारी सैन्ट्रल बैंक खोले गये।

सहकारी सैन्ट्रल बैंक दो प्रकार के होते हैं। ऐसे सैन्ट्रल बैंक जिनके सदस्य केवल सहकारी सैन्ट्रल समितियाँ ही हो सकती हैं। दूसरे प्रकार के सहकारी बैंक वे हैं जिनके सदस्य व्यक्ति तथा सहकारी समितियाँ दोनों ही होते हैं।

पहले प्रकार के सैन्ट्रल बैंक जिसके सदस्य केवल सहकारी समितियाँ हो सकती हैं सहकारी बैंकिंग यूनियन कहलाते हैं। वास्तव में बैंकिंग यूनियन ही आदर्श सहकारी सैन्ट्रल बैंक हैं। क्योंकि उससे सम्बन्धित सहकारी समितियाँ ही सैन्ट्रल बैंक की नीति को निर्धारित करती हैं और बैंक का

प्रबन्ध भी उन्हीं समितियों के हाथ में रहता है। भागवतपुर में बैंकिंग यूनियन संख्या में अधिक नहीं हैं, सैन्ट्रल बैंक ही संख्या में अधिक हैं।

सैन्ट्रल बैंक का क्षेत्र प्रत्येक प्रांत में भिन्न होता है। उस क्षेत्र की समस्त सहकारी साख समिति उन सैन्ट्रल बैंक से सम्बन्धित रहती हैं। कहीं कहीं एक जिले में केवल एक ही सैन्ट्रल बैंक होता है, ऐसी दशा में उसे जिला सहकारी बैंक कहते हैं। उदाहरण के लिए “वरेली डिस्ट्रिक्ट-कोऑपरेटिव बैंक”। उत्तर भारत के प्रान्तों में अधिकतर एक तहसील के लिए एक सैन्ट्रल बैंक होता है।

साधारण सभा (General Meeting)

सैन्ट्रल बैंक अथवा बैंकिंग यूनियन के हिस्सेदारों की सभा को जनरल मीटिंग या साधारण सभा कहते हैं। साधारण सभा के सदस्यों को केवल एक वोट देने का अधिकार होता है। साधारण सभा ही बॉर्ड-आफ-डायरेक्टर्स (Board of Directors) का चुनाव करती है।

बॉर्ड-आफ-डायरेक्टर्स

बॉर्ड-आफ-डायरेक्टर्स बैंक का प्रबन्ध करता है। डायरेक्टर्स की संख्या अधिक होने के कारण बॉर्ड-आफ-डायरेक्टर्स अपने सदस्यों में से कुछ कमेटीयों बना देता है जो बैंक का काम चलाती हैं।

बैंक का दैनिक कार्य अवैधानिक मन्त्री, चेयरमैन अथवा मैनेजिंग डायरेक्टर मैनेजर की सलाह से करता है। डायरेक्टर्स को फीस अथवा वेतन कुछ नहीं मिलता। संयुक्त प्रान्त आगरा व अवध तथा उत्तर के अन्य प्रान्तों में अधिकतर बैंक का चेयरमैन, डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट अथवा कोई अन्य सरकारी कर्मचारी होता है। किन्तु अधिकांश प्रान्तों में चेयरमैन गैर सरकारी ही होता है सैन्ट्रल बैंकों में भी बॉर्ड-आफ-डायरेक्टर्स में सहकारी साख समितियों के प्रतिनिधि ही अधिक संख्या में होते हैं।

कार्यशील पूँजी (Working Capital)

सैन्ट्रल बैंक अथवा बैंकिंग यूनियन की कार्यशील पूँजी (Working Capital) हिस्सा पूँजी (Share Capital) रक्षितकोष (Reserve Fund) डिपॉजिट तथा ऋण (Loan) के द्वारा प्राप्त होती है।

साधारणतया सैन्ट्रल बैंक तथा बैंकिंग यूनियन के हिस्सों का मूल्य ५० रु० से लेकर १०० रु० तक होता है। सहकारी साख समितियों अपने ऋण के अनुपात से हिस्से लेती हैं। सहकारी कानून के अनुसार सैन्ट्रल बैंक तथा बैंकिंग यूनियन अपने वार्षिक लाभ का २५ प्रतिशत लाभ रक्षित कोष (Reserve Fund) में जमा करती हैं। हिस्सा पूँजी (Share Capital) तथा रक्षित कोष (Reserve Fund) बैंक की निजी पूँजी होती है। डिपॉजिट तथा ऋण ली हुई होती है।

किन्तु सदस्यों तथा गैर सदस्यों की डिपॉजिट ही बैंक की कार्यशील पूँजी का बड़ा भाग होती है। सैन्ट्रल बैंक तथा बैंकिंग यूनियन दो प्रकार की डिपॉजिट लेती है मुदती (Fixed) तथा सेविंग्स। किसी किसी प्रान्त में चालू खाता* (Current Account) भी रखा जाता है, किन्तु चालू खाते में जोखिम अधिक है। इस कारण अधिकांश बैंक उसे नहीं रखते। डिपॉजिट के अतिरिक्त आवश्यकता पड़ने पर सैन्ट्रल बैंक ऋण भी लेते हैं। अधिकतर सैन्ट्रल बैंक तथा बैंकिंग यूनियन प्रान्तीय सहकारी बैंक से ऋण लेते हैं। संयुक्त-प्रान्त में रजिस्ट्रार की अनुमति से वे एक दूसरे को ऋण दे सकते हैं।

सैन्ट्रल बैंक अधिकतर अपने से सम्बन्धित सहकारी साख समितियों तथा गैर साख समितियों को ही ऋण देते हैं। किसी किसी प्रान्त तथा देशी राज्य में व्यक्तियों को भी ऋण दिया जाता है, परन्तु अब यह रिवाज बन्द किया जा रहा है।

अपरिमित दायित्व (Unlimited liability) वाली साख समितियों को सैन्ट्रल बैंक प्रो-नोट अथवा बाँड पर ही ऋण दे देते हैं। अपरिमित दायित्व होने के कारण उनका प्रो-नोट ही यथेष्ट जमान (security) है। सहकारी समितियों को प्रो-नोट के अतिरिक्त कुछ सम्पत्ति भी गिरवी रखनी होती है।

यह जानने के लिए कि प्रत्येक सहकारी साख समिति को अधिक से

*चालू खाता में जमा करने वाला जब भी चाहे चेक द्वारा रुपया निकाल सकता है।

अधिक कितना ऋण देना उचित होगा, सैन्ट्रल बैंक अथवा बैंकिंग यूनियन अपने से सम्बन्धित साख समितियों की हैसियत के अनुसार उन साख समितियों की अधिकतम साख (Maximum credit) निश्चय कर देती है। उससे अधिक ऋण साख समिति को नहीं दिया जाता।

सैन्ट्रल बैंक अधिकतर एक दो वर्षों के लिए ऋण देते हैं। कहीं कहीं अब भी पुराने कर्ज को अदा करने अथवा भूमि में सुधार करने के लिए पाँच से दस वर्ष तक के लिए ऋण दिया जाता है। किन्तु अब अधिक समय के लिए ऋण देने का कार्य केवल भूमि बंधक बैंक (Land Mortgage Banks) ही सफलतापूर्वक कर रहे हैं।

जब कि सैन्ट्रल बैंक अथवा बैंकिंग यूनियन के पास आवश्यकता से अधिक धन हो जाता है तो वे प्रांतीय बैंकों में जमा कर देते हैं सैन्ट्रल बैंक तथा यूनियन वार्षिक लाभ का २५ प्रतिशत रक्षित कोष (Reserve Fund) में जमा करके, शेष हिस्सेदारों में बाँट देते हैं। किन्तु इन बैंक के उपनियमों में अधिक से अधिक लाभ की दर भी निश्चित कर दी जाती है जिससे अधिक लाभ हिस्सेदारों को नहीं बाँटा जा सकता है।

सैन्ट्रल बैंक तथा बैंकिंग यूनियन अपने से सम्बन्धित साख समितियों की देखभाल करने के अतिरिक्त उन पर अपना नियन्त्रण भी रखते हैं। इस कार्य के लिए बैंक कुछ कर्मचारी रखता है। ये कर्मचारी (सुपरवाइजर) ऋण के प्रार्थनापत्रों की जाँच करते हैं, साख समितियों के सदस्यों की हैसियत का लेखा तैयार करते हैं और समितियों को अपने सदस्यों से रुपया वसूल करने में भी सहायक होते हैं। किसी किसी प्रान्त में वे कर्मचारी समितियों का हिसाब भी रखते हैं। जहाँ नवीन सहकारी समितियों को स्थापित करने के लिए विशेष कर्मचारी नहीं रक्खे जाते वहाँ ये नवीन सहकारी समितियों को स्थापित करते हैं; और प्रचार कार्य करते हैं। किन्तु अब इनमें से बहुत गा कार्य प्रान्तीय इस्टिब्लिशमेंट करने लगी है। कुछ प्रान्तों में सहकारी समितियों की देखभाल का कार्य सुपरवाइजिंग यूनियन को दे दिया गया है।

व की जाँच रजिस्ट्रार द्वारा नियुक्त आडिटर करते
[के पास जाती है। सैन्ट्रल बैंक अथवा

यूनियन का निरीक्षण रजिस्ट्रार तथा उसके आधीनस्थ कर्मचारी करते हैं। प्रत्येक बैंक वार्षिक बैलेंस शीट (लेनो देनी का लेखा) तैयार करके उसको आडिटर की रिपोर्ट के साथ रजिस्ट्रार तथा हिस्सेदारों के पास भेजता है।

सैन्ट्रल बैंक तथा बैंकिंग यूनियन का दायित्व परिमित (Limited liability) होता है।

अभ्यास के प्रश्न

१—सहकारी सैन्ट्रल बैंक स्थापित करने की भारतवर्ष में क्यों जरूरत पड़ी ?

२—सैन्ट्रल बैंक कितने प्रकार के होते हैं और उनमें क्या भेद हैं ?

३—सैन्ट्रल बैंक का प्रबन्ध कौन कैसे करता है ?

४—सैन्ट्रल बैंक की कार्यशील पूंजी कैसे इकट्ठी होती है ?

५—सैन्ट्रल बैंक का मुख्य कार्य क्या है ? कृपि सात्र सहकारी समितियों को वे किस प्रकार सहायता पहुँचाते हैं ?

६—सैन्ट्रल बैंक का सहकारिता आन्दोलन में क्या स्थान है ?

७—सैन्ट्रल बैंक अथवा बैंकिंग यूनियन का संगठन किस प्रकार से होता है ?

८—सैन्ट्रल बैंक की व्यवस्था और कार्य प्रणाली का वर्णन कीजिए।
१९४४ और १९४६।

तेतीसवाँ अध्याय

प्रान्तीय सहकारी बैंक

(Provincial Co-operative Bank)

जैसे जैस देश में सहकारिता आन्दोलन फैलता गया वैसे वैसे एक ऐसी संस्था की आवश्यकता का अनुभव होने लगा जो कि सैन्ट्रल बैंक का आपस में सम्बन्ध स्थापित कर सके। सन् १९१५ में मैकलेगन कांआपरेटिव कमेटी ने प्रत्येक प्रान्त में प्रान्तीय सहकारी बैंक स्थापित करने की आवश्यकता बतलाई। अतएव सभी बड़े बड़े प्रान्तों में प्रान्तीय सहकारी बैंक हो गये।

‘प्रान्तीय बैंकों की स्थापना के पूर्व रजिस्ट्रार प्रान्तीय बैंक का कार्य करता था। यदि किसी सैन्ट्रल बैंक को पूँजी की अधिक आवश्यकता होती तो रजिस्ट्रार प्रत्येक सैन्ट्रल बैंक को एक गश्ती चिट्ठी लिख देता और जिन सैन्ट्रल बैंकों के पास आवश्यकता से अधिक पूँजी होती थी उनसे ऋण दिलवाने का प्रबन्ध कर देता था।

प्रान्तीय सहकारी बैंक सैन्ट्रल बैंकों की अतिरिक्त पूँजी को जमा करते हैं और जिन सैन्ट्रल बैंकों को पूँजी की आवश्यकता होती है उन्हें ऋण देते हैं। इसके अतिरिक्त द्रव्य बाजार (Money market) तथा सहकारी साख आन्दोलन के बीच सम्बन्ध स्थापित करने के लिये भी प्रान्तीय बैंकों की आवश्यकता प्रतीत हुई।

भारतवर्ष में १२ प्रान्तीय बैंक हैं; ८ भारत में तथा ४ देशी राज्यों में। भारत में उड़ीसा के अतिरिक्त सभी प्रान्तों में प्रान्तीय सहकारी बैंक हैं। १९४५ के जनवरी में संयुक्तप्रान्त में भी प्रान्तीय बैंक स्थापित हो गया। पाकिस्तान में ३ प्रान्तीय बैंक हैं। वहाँ सीमाप्रान्त में कोई नहीं है।

प्रान्तीय सहकारी बैंक परिमित दायित्व (Limited liability) वाले होते हैं। अधिकतर प्रान्तीय बैंक मिश्रित ढंग के हैं, अर्थात् उनके सदस्य व्यक्ति, सहकारी समितियाँ तथा सैन्ट्रल बैंक सभी होते हैं। किन्तु पंजाब और बङ्गाल के प्रान्तीय बैंकों में व्यक्ति हिस्सेदार नहीं हो सकते। केवल सहकारी समितियाँ तथा सैन्ट्रल बैंक ही हिस्सेदार हो सकते हैं।

यह तो पूर्व ही कहा जा चुका है कि प्रान्तीय बैंक सैन्ट्रल बैंकों के अभिभावक का कार्य करते हैं। सहकारी साख आन्दोलन का द्रव्य बाजार (Money market) से निकट सम्बन्ध स्थापित हो जावे इसके लिए यह आवश्यक है कि सहकारी सैन्ट्रल बैंक अन्य बाहरी बैंकों से प्रान्तीय बैंक के द्वारा काम करें। इसके अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि प्रान्तीय सहकारी बैंक सैन्ट्रल बैंकों तथा बैंकिंग यूनियनों को आपस में एक दूसरे से ऋण न लेने दें। क्योंकि इससे प्रान्तीय बैंक सैन्ट्रल बैंकों का अनुशासन ठीक प्रकार प्रान्तीय बैंकों को सहकारी साख समितियों से सीधा चाहिये। सहकारी साख समितियों का प्रबन्ध सैन्ट्रल बैंक से होना चाहिये और सैन्ट्रल बैंकों का सम्बन्ध

प्रान्तीय बैङ्क अपनी कार्यशील पूँजी के लिये सहकारी साख्त समितियों, सैन्लट्र बैंकों, और जनता की डिपॉजिट पर निर्भर रहते हैं। जब प्रान्तीय बैङ्क सर्व-साधारण से डिपॉजिट स्वीकार करते हैं तब उन्हें जमा करने वालों को माँगने पर, देने के लिये नकद रुपया रखना पड़ता है। कुछ प्रान्तीय सरकारों ने नियम बनाकर कम से कम नकद रुपया कितना रखना चाहिये यह निश्चित कर दिया है। जितने दिनों के लिये प्रान्तीय बैङ्कों की डिपॉजिट मिलती हैं उससे अधिक के लिये वे ऋण नहीं देते। प्रत्येक प्रान्त में प्रांतीय बैङ्कों ने अधिक से अधिक समय निश्चित कर दिया है। जससे अधिक के लिये वे डिपॉजिट स्वीकार नहीं करते। अधिकांश प्रान्तीय बैंक चालू खाता (Current account) भी रखते हैं, केवल पंजाब प्रांतीय बैंक चालू खाता नहीं रखता। प्रान्तीय बैंक डिपॉजिट लेने के अतिरिक्त साधारण बैंकिंग कार्य भी करते हैं। वम्बई, मद्रास तथा पंजाब प्रान्तीय बैंकों ने लम्बे समय के लिये डिबेंचर (Debenture) भी बेचे हैं। अन्य बैंकों की भाँति प्रान्तीय बैंकों के सामने भी कार्यशील पूँजी (Working Capital) की अधिकता तथा कमी की समस्या उपस्थित होती रहती है। अतएव प्रान्तीय बैंक एक दूसरे को ऋण देते हैं और आवश्यकता पड़ने पर थाड़े समय के लिये कुछ अधिक सूद देकर डिपॉजिट बढ़ाने का प्रयत्न करते हैं।

नियमानुसार इन प्रान्तीय बैंकों का आय-व्यय-निरीक्षण रजिस्ट्रार के द्वारा होना चाहिये, परन्तु किसी प्रांत में रजिस्ट्रार ने पेशेवर आडिटरो के द्वारा प्रांतीय बैंकों के हिसाब की जाँच करवाने की आज्ञा दे दी है। प्रांतीय बैंक अपनी वार्षिक बैलेंस शीट तैयार करते हैं। कुछ समय हुआ जब कि “अखिल भारतवर्षीय प्रान्तीय सहकारी बैंक एसोसियेशन” (The All India Provincial Co-operative Banks Association) नामक संस्था को जन्म दिया गया है। इस एसोसियेशन का मुख्य कार्य यह है कि वह प्रत्येक प्रान्ती बैंक की कार्यशील पूँजी की अधिकता तथा कमी के आँकड़ों को जमा करती है और सब प्रान्तीय बैंकों को न्याय भेज देती है। एसोसियेशन की बैठक दो वर्ष में एक बार जिसमें सहकारिता आन्दोलन सम्बन्धी प्रश्नों पर विचार होता है

प्रान्तीय बैंकों-को सरकार का ध्यान किसी विशेष बात की ओर आकर्षित करना होता है तो एसोसियेशन ही सरकार से उस सम्बन्ध में बातचीत करती है ।

जब से भारतवर्ष में रिजर्व बैंक* खुल गया है तब से प्रान्तीय सहकारी बैंकों का सम्बन्ध रिजर्व बैंक के कृषि साख विभाग (Agricultural Credit Department) से स्थापित हो गया है । इससे पूर्व प्रान्तीय सहकारी बैंकों का सम्बन्ध इम्पीरियल बैंक से था । आवश्यकता पड़ने पर प्रान्तीय बैंक रिजर्व बैंक से ऋण लेते हैं ।

अभ्यास के प्रश्न

- १—प्रान्तीय सहकारी बैंक क्या क्या कार्य करता है ?
- २—प्रान्तीय बैंकों की आवश्यकता क्यों पड़ी ?
- ३—प्रान्तीय बैंक अपने से सम्बन्धित सेन्ट्रल बैंक को किस तरह सहायता पहुँचाता है ?
- ४—प्रान्तीय बैंकों का संगठन किस प्रकार का है और वे अपनी कार्य शील पूँजी किस प्रकार इकट्ठा करते हैं ?

— — — — —

*रिजर्व-बैंक:—यह भारत सरकार की बैंक है । इसका मुख्य कार्य सरकारी लेने-देने के काम को करना, मुद्रा (currency) को चलाना, अन्य बैंक का बैंकर बनना, तथा रुपये के विनिमय की दर को स्थिर रखना है । यह बैंक द्रव्य बाजार (money market) पर नियंत्रण रखता है और दूसरे बैंकों को समय पर ऋण देता है ।

चौतीसवाँ अध्याय

सहकारिता आन्दोलन की दशा

भारतवर्ष में सहकारिता आन्दोलन का आरम्भ हुये ४० वर्ष से ऊपर समय हो गया किन्तु हमारे गाँवों की दशा में कोई विशेष सुधार हुआ हो ऐसा नहीं दिखाई देता। इसका कारण यह है कि सहकारिता आन्दोलन अभी कमजोर है। यह तो इसी से ज्ञात हो जाता है कि प्रतिवर्ष बहुत सी सहकारी समितियाँ दिवालिया हो जाती हैं और बहुतों की दशा अच्छी नहीं है।

चालीस वर्षों में इस आन्दोलन को देश में एक मजबूत आन्दोलन बन जाना चाहिये था, समितियों की उन्नति होनी चाहिये थी, गाँव वालों को दूसरी तरह की सहकारी समितियों की माँग करनी चाहिए थी, महाजन को सहकारी साख समितियों से डरना चाहिये था, समिति के सदस्यों की गरीबी कम होनी चाहिये थी, लेकिन ऐसा कुछ हुआ हो यह दिखलाई नहीं देता इससे ही यह जाना जा सकता है कि इस आन्दोलन की हालत अच्छी नहीं है।

सहकारी समितियों की असफलता के नीचे लिखे मुख्य कारण हैं—

(१) किसान का कर्ज से दबा होना। जब तक किसान का कर्ज से छुटकारा नहीं होता तब तक वह अपनी उन्नति के किसी भी काम में दिलचस्पी नहीं रख सकता।

(२) गाँव वालों का अशिक्षित होना। समिति का काम करने के लिए शिक्षित होना जरूरी है। इसका फल यह होता है कि समिति का कर्ता-धर्ता वैतनिक मंत्री हो जाता है दूसरे सदस्य उसकी ओर से उदासीन जाते हैं। गाँव और शहर दोनों जगह सहकारी सिद्धान्तों की शिक्षा प्रचार किया जाना चाहिए।

(३) सहकारी समितियों और सहकारिता आन्दोलन पर सरकारी देख भाल बहुत ज्यादा है। सहकारिता विभाग का रजिस्ट्रार ही इस आन्दोलन का सर्वेसर्वा है। इसका फल यह होता है कि अशिक्षित किसान यह सम-

भता है कि वह सरकारी बैंक है और हमें कर्ज देने के लिए खोले गए हैं। सहकारिता की यह भावना कि हम मिल कर स्वयं अपने पैरो पर खड़े हों इससे नष्ट हो जाती है।

(४) सहकारिता आन्दोलन की एक कमजोरी यह भी रही है कि अभी तक सहकारी साख समितियों की ओर अधिक ध्यान दिया गया और गैर साख-समितियों की स्थापना की ओर कम ध्यान दिया गया। किसान को केवल साख की ही जरूरत नहीं है वरन् उसको इस बात की भी जरूरत है कि उसकी पैदावार का उसे उचित मूल्य मिले और उसके काम में आने वाली चीजें भी उसे उचित मूल्य में मिलें। हर्ष की बात है कि सहकारिता विभाग का इस ओर ध्यान गया है और गैर साख समितियों अधिक संख्या में स्थापित की जा रही है।

(५) आन्दोलन की कमजोरी का एक यह भी कारण है कि सहकारिता विभाग के इन्स्पेक्टर* और आर्गनाइजर† सहकारिता के सिद्धान्तों को बिना अच्छी तरह से सदस्यों को समझाये जल्दी में समितियों का संगठन कर देते हैं। इन कर्मचारियों का तबादला होता रहता है। अतएव यदि ऐसी कमजोर समितियाँ बाद को टूट जावें तो उन पर दोष नहीं आता। इसलिए अपने ऊँचे अफसरों को प्रसन्न करने के लिए वे जल्दी में बहुत सी समितियों का संगठन कर देते हैं।

(६) कहीं कहीं पञ्चायतदार या सरपञ्च बेईमान होते हैं और वे समिति के रुपये से स्वयं लाभ उठाते हैं।

(७) कहीं कहीं महाजन अपने आदमियों को समिति का सदस्य बना कर उसे हथियाने का प्रयत्न करता है और कहीं कहीं कोई प्रभावशाली आदमी समिति को हथियता होता है।

(८) साख समितियों से ऋण मिलने में कभी कभी बहुत देर लगी जाती है। साथ ही जब किसान साख समितियों से कर्ज लेता है तो यह बात

*यह सहकारी समितियों की देखभाल के लिए जिले में एक होता है
†यह समितियों का संगठन करते हैं और जिले में कई होते हैं।

छिपी नहीं रहती । भारतीय किसान यह नहीं चाहता कि लोग जाने कि वह कर्जदार है ।

(६) सहकारी आन्दोलन तभी किमी देश में सफल हो सकता है जब कि किसानों को निस्वार्थभाव से सेवा करने के लिए लोग इस आन्दोलन में आवें । लेकिन भारतवर्ष के जो भी गैरसरकारी लोग इसमें आये वह अधिकतर सरकार को प्रसन्न करने के लिए आये । देश में किसानों की सेवा करने की जिन्हें लगन है वे इस आन्दोलन से दूर रहे हैं ।

ऊपर दिये हुये दाष से यह न समझ लेना चाहिए कि सहकारिता आन्दोलन से कोई लाभ ही नहीं हुआ । यह ठीक है कि अभी यह कमजोर है फिर भी सहकारी समितियों से देश को बहुत लाभ हुआ है ।

जहाँ साख समितियाँ हैं वहाँ महाजन ने भी सूद की दर घटा दी है, किसानों में कम खर्ची की आदत पड़ रही है, बैकिंग के सिद्धान्तों की जानकारी बढ़ रही है, लड़ाई भगड़े कम हुए हैं, किसानों की फसलों को बेचने और उचित मूल्य दिलाने का प्रबन्ध किया गया है, अच्छे बीज का प्रचार किया गया है ।